


ग्रंथमाला नंबर ५ मो.

श्रीमद् विजयानंदसूरि विरचित

श्री अज्ञानतिमिरभास्कर.

(आवृत्ति बीजी)

छपावी प्रसिद्ध कर्ता.

श्री जैन आत्मानंद सभा

भावनगर.

वीर संवत २४३२ विक्रम संवत १९६२ आत्म संवत ११

मूल्य अढी रुपीया




वि. वि. प्रेस—भावनगर.

भावनगर

धी " विद्या विजय " प्रिन्टिंग प्रेसमां

शाह पुरुषोत्तमदास गीगाभाइए

मुद्रांकित कर्युं.

(शार्दूलविक्रीडित.)

जेणे श्रीधन वावियुं प्रणयथी श्रीज्ञानना क्षेत्रमां,
ग्रंथोद्धार कर्यो सहर्ष हृदये प्रीति धरी नेत्रमां;
आनंदे गुरु भक्तिभाव धरतां आराधी सत्कर्मने,
धर्मानंद नगीनदास जगमां पामो धरी धर्मने. ॥ १ ॥

जेणे श्री उपधानना वहननी माला धरी अंगमां,
एवा चंदनबाइ जे सदनमां रहेछे सदा रंगमां;
न्यायोपार्जित वित्तना नियमथी जे शुद्धपाम्या मति,
ते नीतिज्ञ नगीनदास जगमां श्रीधर्म पामो अति. २

अमे छीए,

श्री आत्मानंद सभाना

अंगभूत श्रमणोपासको.



श्री

अर्पण पत्रिका.

श्रीमान् श्रावकगुणालंकृत, स्वधर्मनिष्ठ, देवगुरु ज्ञक्त,
श्री पाटण निवासी,

शेठ नगीनदास झवेरचंद.

आप श्रावक धर्मना पूर्ण संपादक छो. देवगुरुनी ज्ञक्ति रूप ज्ञागीरथीमां सदा स्नान करनारा गे, आर्हत वाणीना नपासक गे, शुद्ध गुरुना नपदेशथी व्यापारनी प्रवृत्तिमां सदाचारथी वर्त्तनारा गे अने व्यापारनी प्रवृत्तिमां प्रवीण ग्तां धर्मनी धुराने धारण करवानो नत्साह राखो गे. ए आदि अनेक सद्गुणोने संपादन करवाना चिन्हरूप एवा ज्ञान क्षेत्रने पुष्टि आपवाने आपे आ ग्रंथने पूर्ण आश्रय आप्यो गे, एथी करीने ज्ञारतवर्षनी जैन प्रजाना महोपकारी श्री विजयानंद सूरिना पांमित्य ज्ञरेला लेखने प्रसार करवाना तेमना शिष्य परिवारना नत्तम नपदेशने मान आपी खरेखरी गुरु ज्ञक्ति दर्शावी गे; ते आपनी नज्वल प्रवृत्ति जोइ अमे आ ग्रंथ आपने अर्पण करीए गीए अने गुरु ज्ञक्तियुक्त हृदयथी असाधारण पूज्य ज्ञाव पूर्वक ते गुरुनुं स्मरण करी नीचेनुं आशीर्वादात्मक पद्य नच्चारिए गीए:—



न्यायाम्भोनिधि श्रीमद्विजयानन्दसूरि.

(आत्मारामजी महाराज.)

प्रस्तावना.

परोपकार रसिक महात्माओना लेखोनी महत्ता कइंक अ-
पूर्व होय छे. ते अगाध भंडारना भोक्ता थवानो आधार तेना अ-
भ्यासीना अधिकार उपर रहे छे. उत्तम लेखनुं स्वारस्य अने
माहात्म्य आश्चर्य जनक छे. ते पुनः पुनः आदर पूर्वक अभ्यासथी
ज प्रकट थइ सुख शांति आपे छे. आत्मरुचि अने स्वशक्ति अनु-
सार समर्थ विद्वानना योग्य विषयनो अने तेना लेखोनो स्वीकार
करी तेनुं आदर पूर्वक श्रवण, पठन अने मनन करवुं, ए अंते
महा फलदायी थाय छे.

समर्थ जैन दर्शन जणावे छे के, " आ जगतमां अनादि
कालथीज मिथ्यात्व छे. " आ शास्त्रीय लेख खरेखरो छे, अेम
आपणे मानवुं जोइए अने तेम मानवानुं कारण पण आपणने
प्रत्यक्ष विगेरे प्रमाणोथी सिद्ध थाय छे. ए अनादि कालथी संपर्क
पामेला मिथ्यात्वनुं कारण शुं छे ? अेवो विचार करतां आपणने
भान थशे के, अेनुं खरेखरुं कारण अज्ञान छे. अज्ञान अने मि-
थ्यात्व ए कार्य कारण रुपे ग्रथित थइने रहेलुं छे. तेमनो एकी
भाव पामेलो अेवो संबंध छे के, ज्यां अज्ञान त्यां मिथ्यात्व अने
ज्यां मिथ्यात्व त्यां अज्ञान—आद्विपुटी परस्पर एक बीजानी आ-
धार भूत थइ रहेली छे.

आवा मिथ्यात्वना कारण रुप अज्ञानने दूर करवानी खास
जरुर छे. ए अज्ञान आपणा आनंदमय अने सुखमय एवा धार्मि-
क जीवननुं विरोधी छे. शिवपद रूप परम श्रेयनी शोध करवामां
ए अज्ञान अंतराय रूप थाय छे. इतर धर्मना तत्वज्ञोअे पोताना
विविध मतोथी आ जगत् ईश्वरकृत छे अने पुण्य पापनी उत्पत्ति

ईश्वरकृत मानी ईश्वरमां विषमताना अने बीजा दोष प्रगटाव्या छे. वली तेमना तरफथी तेनो खुलासो धर्म अधर्म अथवा शुभ अशुभ कर्मने वचमां आणी ईश्वरने मात्र कर्म फलदाता कही करवामां आपी तेमां पण अन्योन्याश्रय दोष आपवामां आव्यो छे. ए अज्ञानथी कोइए स्कंध अने तृष्णामांथी पापनो समुद्भव मान्यो छे. वली बीजाओए सारुं अने खोटुं एवुं परस्पर विरुद्ध एक द्वंद्वज स्वीकार्युं छे. आवी अनेक कपोल कल्पनाओ ए अज्ञानना प्रभावथी प्रगटेली छे. खरेखरी वस्तुगति उपर विश्वास न लावी अश्रद्धा अने शंकामां आंदोलित थवाय, ए बधुं ज्ञानना अभावरूप जे अज्ञान, वस्तुगतिने यथार्थ न अनुभववा रूप अज्ञान अने ते अज्ञान जन्य जे मिथ्यात्व तेनुं ज परिणाम छे एम कहेवामां कांइ पण बाध नथी. वली अज्ञान एज पापनुं मूल छे. पाप करवानी वृत्ति अज्ञान जन्य छे. ते वस्तुगतिना ज्ञाननी न्यूनताथीथाय छे.

ज्यां प्रकाश छे, त्यां अंधकार संभवतोज नथी. प्रकाश न होय त्यांज अंधकारनो प्रवेश छे. प्रकाशमां सर्वदा निर्भयता, निःशंकता अने विशालता रहेली छे. अप्रकाशमांज भय, शंका तथा संकोच वसे छे. आथी ए अज्ञानरुप अंधकारने नाश करवा आ महान् लेखके पोतानो लेख विस्तार्यो छे अने ए लेखनुं " अज्ञानतिमिर भास्कर " एवुं सार्थक नाम आपेलुं छे. आथी करीने ए महोपकारी महाशये पोतानुं गुरुत्व पण कृतार्थ करेलुं छे. ते विषे कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरि पोताना योगशास्त्रमां नीचे प्रमाणे लखे छे—

यद्वत्सहस्रकिरणः प्रकाशको निचिततिमिरमग्नस्य ।
तद्वद्गुरुरत्र भवेदज्ञानध्वांतपतितस्य ॥ १ ॥

" जेम घाटा अंधकारमां मग्न थयेलाने सूर्य प्रकाश कर्त्ता छे, तेम आ संसारमां अज्ञानरुपी अंधकारमां पमेलाने गुरु प्रकाश कर्त्ता छे.

आवा यथार्थ गुरुपणाने धारण करनारा परम उपकारी पूज्यपाद गुरु श्री विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) ए भारत वर्षनी जैन प्रजानो ते अज्ञानरुप अंधकारथी उद्धार करवाने माटे आ लेख लखेलो छे. ते महाशयना लेख प्रथमथीज प्रशंसनीय थता आवे छे. आर्हत धर्मना तत्वोनी जे भावना तेमना मगजमा जन्म पामेली, ते लेख रुपे बाहेर आवतांज आखी दुनियाना पंडितो, ज्ञानीओ, शोधको, शास्त्रज्ञो, धर्मगुरुओ, लेखको अने सामान्य लोको उपर जे असर करे छे, तेज तेनी ससारता अने उपयोगिता दर्शाववाने पूर्ण छे. मिथ्यात्वजनित अज्ञानताने लइने अन्यमति भारतवासिओए सनातन जैन धर्म उपर जेजे आक्षेप कर्या छे अने करे छे तथा वेदादिग्रंथोना स्वकपोल कल्पित अर्थ करी जे जे लेख द्वारा प्रयत्नो कर्या छे ते न्याय अने युक्ति पूर्वक ते ते ग्रंथोनुं मथन करी आ ग्रंथमां स्पष्ट रीते दर्शाववामां आव्युं छे. अने जैन दर्शननी क्रिया तथा प्रवर्त्तन सर्व रीते अबाधित अने निर्दोष छे, एवुं जगतना सर्व धार्मिकोनी दृष्टिए सिद्ध करी आपेल छे.

आर्हत धर्मनी भावना जुनामां जुनी छतां तेने इतर वादीओ नवी अने कल्पित ठरावी जनसमूहआगल मुकवानो यत्न करता आव्याछे नेकरेछे, ते बधुं लक्ष्यमां लइ आ प्रवीण ग्रंथकारे ए भावनानी आवश्यकताने आखा विश्वनी प्रवृत्तिथी सिद्ध करवाना यत्न उपरांत ए भावना पोते शुं छे ? तेनुं सारी रीते आ ग्रंथमां सूचन करवामां आव्युं छे अने ते साथे इतर वादीओना धर्मनी भावनानुं रहस्य

खुल्लुं करी जैन धर्मना तत्त्व स्वरूपने सर्वोपरि सिद्ध करवामां आ-
व्युं छे. ग्रंथना पूर्व भागमां आस्तिक अने नास्तिक मतना विचार,
जैन धर्मनी प्रबलताथी वैदिक हिंसानो पराभव, वेदना विभाग,
वेदज्ञ ऋषिओना मांसाहारनुं प्रतिपादन, वैदिक यज्ञ कर्मनो विछेद,
वैदिक हिंसा विषे विवध मत, शांकर भाष्य रचवानो हेतु, अने
शंकराचार्यनो वाम मार्ग इत्यादि घणा विषयोनुं स्पष्टीकरण करी,
तेमज वेद, स्मृति, उपनीषद् अने पुराणादि शास्त्रोमां दर्शावेल
यज्ञ विगेरेनुं स्वरुप वर्णवी अने मिथ्यात्व भरेली तद्गत
अज्ञानता दर्शावी सारुं विवेचन करनार आ विश्वासलायक
ग्रंथ तो अर्वाचीन जैन ग्रंथोमां एकज छे, एम कहेवामां
कांइपण अतिशयोक्ति नथी. वली बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, जै-
मिनेय आदि दर्शनवालाओ मुक्तिना स्वरूपने केवी रीते कथन
करे छे? तथा ईश्वरमां सर्वज्ञपणानी सिद्धि करवा तेओ केवी
युक्तिओ दर्शावे छे? तेनुं यथार्थ भान करावी ग्रंथकारे घणुं पां-
डित्य भरेलुं विवेचन करेलुं छे, जे वांचवाथी जैन बंधुओने भा-
रतवर्षमां प्रसरेला गाढ मिथ्यात्वनुं स्वरूप जणाइ पोताना शुद्ध
ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप सनातन धर्मनी उपर सारी दृढता
उत्पन्न थाय तेम छे.

ग्रंथना बीजा भागमां साधु अने श्रावकनी धर्म योग्यता
दर्शाववा माटे एकवीश गुणोनुं विस्तारथी वर्णन, भावश्रावकना
षट्द्वार संबंधी सत्यावीश भेद अने तेमना सत्तर गुणोनुं स्वरूप
विवेचन सहित आपवामां आव्युं छे. ते साथे स्याद्वाद सिद्धांतना
ग्रंथोमां आत्मानुं स्वरूप जणाववा माटे जे जे लखवामां आव्युं
छे, ते जाणवुं घणुं दुर्घट होवाथी तत्त्वजिज्ञासुओ तेनुं स्वरूप
यथार्थ जाणी शकता नथी, तेथी तेमने सुगम रीते जाणवा माटे

बहिरात्मा, अंतरात्मा अने परमात्मा ए त्रण प्रकारना आत्मानुं स्वरूप शास्त्रीय प्रमाणो साथे आ ग्रंथमां घणुं संक्षेपमां आपवामां आव्युं छे.

कोइपण निष्पक्षपाती तत्वजिज्ञासु पुरुष आ ग्रंथनुं स्वरूप आद्यंत अवलोकशे तो तेना जाणवामां आवशे के, एक जैनना समर्थ विद्वाने भारतवर्षनी जैन प्रजानो भारे उपकार कीधो छे. ते साथे आवा विद्वच्छिरोमणि महाशय पुरुष सांप्रत काले विद्यमान नथी, तेने माटे तेने अतुल खेद प्राप्त थशे. स्वर्गवासी ग्रंथकारे भारतनी जैन प्रजानो महान् उपकार करी जैनोनी प्राचीन स्थितिनुं स्मरण कराव्युं छे. एक समये जैन प्राचीन विद्यानो बहु उत्कर्ष हतो अने कुमारपाल जेवा परम धार्मिक उदार महाराजाना आश्रय नीचे जैन विद्याने बहु सारां उत्तेजन अने पोषण मळयां करतां. तेवो काल जो फरीथी आवे अने आवा लेखको विद्यमान होय तो जैन प्रजा पाछी पोताना पूर्व उत्कर्षना शिखर उपर सत्वर आरूढ थाय, तेमां कांइपण आश्चर्य नथी.

छेवटे अमारे आनंद सहित जणाववुं पडे छे के, स्वर्गवासी पूज्यपाद श्री आत्मारामजी महाराजना हृदयमां जे अनगार धर्मनी साथे परोपकार पणानी पवित्र छाया पडी हती, ते छायाना घणा अंशो तेमना परमपूज्य शिष्य वर्गना हृदयोमां उतर्या छे पोताना गुरुनुं यथाशक्ति अनुकरण करवाने ते शिष्यवर्ग त्रिकरण शुद्धिथी प्रवर्ते छे. महात्माओने पोतानी धार्मिकता अने विद्या साथे जे एकता होय छे, अने जे स्वार्पण तथा अर्हंताभाव होय छे, ते तेमना शिष्यवर्गमां प्रत्यक्ष मूर्त्तिमान् जोवामां आवे छे. तेउ परम सात्विक होइ सर्वने तेवांज देखे छे अने तेवांज करवाने इच्छे छे. जैन सिद्धांतनी जेम तेमने गुरु सिद्धांतनी उपर

अनन्य प्रेम छे, अने तेमनुं जीवन गुरु भक्तिमय छे. आवा केट-लाएक शिष्य वर्गना गुणोने लइने ते स्वर्गवासी पूज्यपादना ले-खनी आवृत्ति करवानो आ समय आव्यो छे. अने तेमना उपदेश द्वारा लोकोमां तेनो प्रसार करवानी पण उत्तम तक मली छे.

आ ग्रंथ प्रथम आ शहेरना रहेनार मरहुम गुरुराजना परम भक्तोनी बनेली श्री जैन हितेच्छु सभाए बहार पाडेलो हतो जेनी एक पण कोपी हालमां नहीं मलवाथी मरहुम गुरुराजना परिवार मंडलनी आज्ञा थवाथी अने ते सभाना आगेवान सभासदोनी परवानगीथी आ बीजी आवृत्ति सुधारा साथे अमोए बहार पाडेली छे.

आ बीजी आवृत्तिमां जुदा जुदा विषयोना भाग पाडी अने जे जे वैदिक प्रमाणो अर्थ रहित हतां तेमना अर्थ दर्शावी ग्रंथना स्वरूपने शोभाव्युं छे. ते साथे वाचकोने सुगमता थवा-ने विषयोनी अनुक्रमणिका पण आपी छे.

आ ग्रंथ आद्यंत तपासी आपवामां एक विद्वान् मुनि महाराजाए जे श्रम लीधो छे तेने माटे आ सभा अंतःकर-णथी आभार माने छे.

ग्रंथनी शुद्धता अने निर्दोषता करवामां सावधानी राख्या छतां कदि कोइ स्थले दृष्टिदोषथी के प्रमादथी स्खलना थइ होय तो तेने माटे मिथ्या दुष्कृत छे.

संवत १९६२.
ज्येष्ठ कृष्ण ८.

श्री आत्मानंद सभा.

विषयानुक्रमणिका.

प्रथम खंड.

द्वितीय खंड.

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता.



त्रेवीश उदयका यंत्र.

उदय २३	सर्वाचार्य संख्या	युग प्रधान	उदयवर्ष प्रमाण संख्या.	मास	दिन	प्रहर	घटिका	पल	अक्षर
१	सूरिकोटि ७०	२०	६१७	१०	२७	७	७	७	१
२	सूरिकोटि ३०	२३	१३८० ६०	१०	२९	७	७	७	२
३	कोटिलक्ष १०	९८	१५००	११	२०	७	७	७	३
४	कोटिलक्ष १०	७८	१५४५	८	२९	७	७	७	४
५	कोटिलक्ष १०	७५	१९००	३	२९	७	७	७	५
६	कोटिलक्ष १०	८९	१९५० १९५०	९	२२	७	७	७	६
७	कोटिलक्ष १०	१००	१७७०	७	२७	७	७	७	७
८	कोटिलक्ष ५	८७	१०१०	१०	१५	७	७	७	८
९	कोटिसहस्र १०	९५	८८०	९	१८	७	७	७	९
१०	कोटिसहस्र १०	८७	८५०	२	१२	७	७	७	१०
११	कोटिसहस्र १०	७६	८००	३	१४	७	७	७	११
१२	कोटिसहस्र १०	७८	४४५	४	१९	७	७	७	१२
१३	कोटिसहस्र १०	९४	५५०	७	२२	७	७	७	१३
१४	कोटिसहस्र ५	१०८	५९२	५	२५	७	७	७	१४
१५	कोटिशत १०	१०३	९६५	६	२९	७	७	७	१५
१६	कोटिशत १०	१०७	७१०	९	२०	७	७	७	१६
१७	कोटिशत १०	१०४	६५५	६	२४	७	७	७	१७
१८	कोटिशत १०	११५	४९०	९	२	७	७	७	१८
१९	कोटिशत १०	१३३	३५९	१	१७	७	७	७	१९
२०	कोटिशत १	१००	४०८	४	७	७	७	७	२०
२१	कोटिशत १	९५	५७०	३	९	७	७	७	२१
२२	कोटिशत १	९९	५९०	५	५	७	७	७	२२
२३	कोटिशत १	४० २००४ सर्व	४४०	११	१७	७	७	७	२३

२३ उदयोंके आद्य अरु अंत युग प्रधानो का यंत्र·

	आद्यसूरि नामानि उदयस्य·	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान काल·	सर्वायु		तेवीसउदयोंके अंतके युगप्रधानोंके नाम·	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान काल	सर्वायु
१	सुधर्म	५०	४२	८	१००	१	दुर्वलिकापुष्पमित्र	१७	३०	१३	६०
२	वयर	९	११६	३	१२८	२	अरहमित्र	२०	१६	२५	६१
३	पाडिवय	९	८२	९	१००	३	वैशारव	२५	१०	१९	५४
४	हरिस्सह	९	६०	१३	८२	४	सत्कीर्त्ति	१६	२२	१८	५६
५	नंदिमित्र	१३	३०	२४	६७	५	थावरसुत	१३	२०	१७	५०
६	सूरसेन	१३	४०	१०	६३	६	रहसुत	१३	२८	१३	५४
७	रविमित्र	१३	४०	१०	६३	७	जयमंगल	१५	२०	१३	४८
८	श्रीप्रभ	१३	४२	८	६३	८	सिद्धार्थ	१५	२०	१३	४८
९	मणिरति	१३	४२	८	६३	९	ईशान	१५	३०	१०	५५
१०	यशोमित्र	१४	४१	८	६३	१०	रथमित्र	२२	१० २०	८	४० ५०
११	धणसिंह	१४	४०	१०	६४	११	भरणिमित्र	१०	२०	२०	५०
१२	सत्यमित्र	१४	४०	१२	६६	१२	दृढमित्र	१४	१५	२६	५५
१३	धम्मिल्ल	२०	३०	१२	६२	१३	संगतिमित्र	१२	१५	२२	४९
१४	विजयानंद	१२	३०	१४	५६	१४	श्रीधरसुत	१८	१०	१८	४६
१५	सुमंगल	१२	२०	२४	५६	१५	मागधसुत	१३	११	९	३३
१६	जयदेव	१२	२०	१८	५०	१६	अमरसुत	१५	२४	१३	५२
१७	धर्मसिंह	१२	२०	१८	५०	१७	रेवतिमित्र	२२	१९	१८	५९
१८	सुरदिन्न	१७	२७	१०	५४	१८	कीर्तिमित्र	२०	१०	१०	४०
१९	वैशारव	१०	२०	२०	५०	१९	सिंहमित्र	२०	१४	६	४०
२०	कौडिन्न	१०	२१	१९	५०	२०	फल्गुमित्र	१३	१०	७	३०
२१	माथुर	१०	२५	१५	५०	२१	कल्याणमित्र	८	१६	१४	३८
२२	वणिपुत्त	१०	२०	१७	४७	२२	देवमित्र	१२	१२	१२	३६
२३	श्रीदत्त	१०	१५	२५	५०	२३	दुप्पसहसूरि	१२	४	४	२०

प्रथम अरु द्वितीय उदयका युगप्रधानोका यंत्र.

	प्रथमोदय युगप्रधान २०	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान	सर्वायुः	मास	दिन
१	सुधर्म	५०	४२	८	१००	३	३
२	जंबू	१६	२०	४४	८०	५	५
३	प्रभव	३०	४४	११	८५	२	२
४	शय्यंभव	२८	११	२३	६२	३	३
५	यशोभद्र	२२	१४	५०	८६	४	४
६	संभूति-विजय	४२	४०	८	९०	५	५
७	भद्रबाहु	४५	१७	१४	७६	७	७
८	स्थूलभद्र	३०	२४	४५	९९	५	५
९	महागिरि	३०	४०	३०	१००	५	५
१०	सुहस्ति	३०	२४	४६	१००	६	६
११	गुणसुंदर सूरि	२४	३२	४४	१००	२	२
१२	कालिकाचार्य	२०	३५	४१	९६	१	१
१३	स्कंदिल	१२ २२	५८ ४८	३८ ३६	१०८ १०६	५	५
१४	रेवंतमित्र	१४	४८	३६	९८	५	५
१५	धर्मसूरि	१८ १४	४० ४४	४४	१०२	५	५
१६	भद्रगुप्त	२१	४५	३९	१०५	४	४
१७	श्रीगुप्त	३५	५०	१५	१००	७	७
१८	वज्रस्वामी	८	४४	३६	८८	७	७
१९	आर्यरक्षित	२२	४०	१३	७५	७	७
२०	दुर्वलिका पुष्पमित्र	१७	३०	१३	६०	७	७

२	द्वितीयोदय युगप्रधान २३	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान	सर्वायुः	मास	दिन
१	वयर	९	११६	३	१२८	३	३
२	नागहस्ति	१९	२८	६९	११६	५	५
३	रेवतमित्र	२०	३०	५९	१०९	२	२
४	सिंहसूरि	१८	२०	७८	११६	३	३
५	नागार्जुन	१४	१९	७८	१११	५	५
६	भूतिदिन्न	१८	२२	७९	११९	४	४
७	कालिकाचार्य	१२	६०	११	८३	७	७
८	सत्यमित्र	१०	३०	७	४७	५	५
९	हारिल	२७	३१	५४	११२	५	५
१०	जिनभद्र गणिक्षमा०	१४	३०	६०	१०४	६	६
११	उमास्वाति वाचक	२०	१५	७५	११०	२	२
१२	पुष्पमित्र	८	३०	६०	९८	०	०
१३	संभूति	१०	१९	४९	७८	२	२
१४	संभूतिगुप्त	१०	३०	६०	१००	५	५
१५	धर्मरक्षित	१५	२०	४०	७५	४	४
१६	ज्येष्ठांगगणि	१२	१८	७१	१०१	३	३
१७	फल्गुमित्र	१४	१३	४९	७६	७	७
१८	धर्मघोष	८	१५	७८	१०१	७	७
१९	विनयमित्र	१०	१९	८६	११५	७	७
२०	शीलमित्र	११	२०	७९	११०	७	७
२१	रेवंतसूरि	९	१६	७८	१०३	०	०
२२	सुमिणमित्र	१२	१८	७८	१०८	०	०
२३	अरिहदिन्न	२०	१६	४५	८१	०	०

॥ श्री ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

अज्ञानतिमिरभास्कर.

स्रग्धरावृत्तम् ।

अर्हंतो विश्ववंद्या विबुधपरिवृढैः सेव्यमानांह्रिपद्माः
सिद्धा लोकांतभागे परमसुखघनाः सिद्धिसौधे निषण्णाः।
पंचाचारप्रगल्भाः सुगुणगणधराः शास्त्रदाः पाठकाश्च
सद्धर्मध्यानलीनाः प्रवरमुनिवराः शश्वदेते श्रिये स्युः ॥ १ ॥

अनुष्टुप्वृत्तम् ।

तत्वज्ञाने मनुष्याणामवगाहनसिद्धये ।
भाषायां क्रियते ग्रंथो बोधपादपबीजकः ॥ २ ॥
अज्ञानतिमिरौघेन व्याप्तं हि निखिलं जगत् ।
तन्निरासाय ग्रंथोयं द्वितीयो भास्करो भुवि ॥ ३ ॥

विदित होके इस समयमें इस आर्य खंडमे बहुतसें मत मतांतर प्रचलित हो रहेहै. एक जैनमतके शिवाय जितने हिंदुओ के मतवाले है वे सर्व वेदको मानते है क्योंकि ब्राह्मण लोगोंके बनाये वाडेसें कोईभी बाहिर नही निकल सकता है. यद्यपि गौतम, कपिल, पतंजलि, कणाद, कवीर, नानकसाहिब, दाउजी, गरीबदास प्रमुख मताध्यक्षोंनें वेदोंसें अलग अपने मतके पुस्तक संस्कृत प्राकृत भाषामें बनाये है तोभी तिनकी संप्रदायवाले दस वीसादि वर्षतक अपने मतके पुस्तको वांचकर इधर उधर फिर फिराके अंतमें फिर वेदोंहिका शरण लेलेते है. जैसे नानकसाहिबके पंथके उदासी साधु इसकालमें वेदांतिक हो गये है तथा गुरुगोविंद-

सिंहके पंथके बहुते निर्मले साधुओ गुरुका वेष कछकरद चकरी केश प्रमुख छोडके धातुरंगे वस्त्र कमंडलु प्रमुख वेष अन्यमतके साधुयोंका चिन्ह धारण करते है, और अपने गुरुका ग्रंथ छोडके वेदांत मानते है. ऐसेंही दादुपंथी निश्चलदास दादुजीका बनाया ग्रंथ छोडके वैदांतिक बन गया. और दादुजीके चेले सुंदरदासनें सांख्य मत माना है. तथा गरीबदासीयभी अद्वैत ब्रह्मवादी परमहंस बने फिरतेहै. यह तो हम जानते है कि जिसकों अपने घरमें टुकडा खानेकों नही मिलता वोही दुसरे घर मांगने जाता है, परंतु अपने घरके मालिककी हजों होतीहै. इस लिखनेका प्रयोजन तो इतनाही है कि वैदांतियोंके पुस्तकतो उनोंके गुरुयोंके समयमेंभी विद्यमान थे तो फिर नविन पुस्तक बनानेकी क्या जरुरथी. विचारे क्या करे, जे कर वेदोंको न मानेतो ब्राह्मण लोग झटपट उनकों नास्तिकमती बनादेवें. फिरतो उनकी महिमाभक्ति बंध हो जावे क्योंकिं वेदोंके असल मालिक ब्राह्मण है. जे करतो ब्राह्मणोंके अनुयायी रहें और ब्राह्मणोंकी किसी आजीविकाका भंग न करे तबतो ठीक बने रहेंगे, नहींतो ब्राह्मण बल पाकर उन साधुयोंकों राजाओंके राज्यसें बाहिर निकलवा देवें बौधमतवत्. और उनके बनायें पुस्तकोंकों पानिमें गलवा देवें जैसे दक्षिणमें तुकाराम साधुके पुस्तक रामेश्वरभट्टनें भीमानदीमें डुबवादीए क्योंकि तुकाराम साधु भक्तिमार्गका उपदेशक था. उसके बनाए पुस्तकोंमें यज्ञोंकी और ब्राह्मणोंकी निंदा लिखी है. इसी वास्ते जो कोई बाबा भक्त नवीन पंथ निकालता है, वोतो अपने हठसें अपनें निकाले मतका पूरा निर्वाह करता है, परंतु उसके चेलोंकी दाल ब्राह्मण नही गलने देते है. इसी वास्ते जो नवीन पंथ निकलता है वो अंतमे वेद और ब्राह्मणोंकी चरणशरण जा गिरता है. ये अंग्रेजी राज्यही का माहात्म्य है जो वैरागी भंडारा करके वैरागीयोंकों जिमावें और

सिख लोग गुरुके सिखांको जिमावे,अखाम्हेके साधु मंदिरोंके साधुयोंकों जिमावेहैं और ब्राह्मण बिचारे खाली बैठे मुख उपरसें मक्षीयां उम्हावे; जब सर्वमतांवाले अंतमें वेदस्मृति पुराणादिकोंकों मानते हैं. तो फिर नवीन ग्रंथ बनाना और पंथ निकालनेका क्या प्रयोजन है. यहतो नवीन पुस्तक और पंथ निकालनेंसें हिंदुस्तानीयोंका फजीता करणा है, क्योंकि बहुत पंथोंके न्यारे न्यारे पुस्तक देखके लोकोंकी धर्मसें श्रद्धा ज्रष्ट हो जाती है. वे कहते है—हम किसको सच्चा और किसको जूठा माने. यहज्नी बात याद रखनी चाहिये कि जब ब्राह्मणोंका जोर हुआथा तब वेदोंके न माननेंसें बौधमत वालोंके बच्चोंसे लेकर वृद्धतक हिमालयसें लेकर सेतुबंधरामेश्वर तक कतल करवाये. ये बात माधवाचार्य अपने बनाये शंकरदिग्विजयमें लिखता है. "आसेतोरातुषाराद्रिबौद्धानां वृद्धबालकान् न हंति यः स हंतव्यो ज्नृत्य इत्यवशं नृपैः ॥" "सेतुबंधरामेश्वरसें हिमालयपर्यंत बौद्ध लोकोका आ बालवृद्धकुं जे पुरुष मारता नहीं है, सो पुरुष राजा लोकोकुं हंतव्य है." हम धन्य वाद देते है, अंग्रेजी राजको जिनके राजतेजसें सिंह बकरी एक घाट पानी पीते हैं. मकदुर नही किसी मतवालेका जो किसी धर्मवालेकों गर्म आंखसें देख शके.

आस्तिक और नास्तिक मतका विचार.

एक और बात बहुत आश्चर्यकी है कि हमने कितनेक पुस्तकोंमें तथा ब्राह्मणोंके मुखसें सुना है कि जैनमत नास्तिक है. यह कहना और लिखना सत्यहै वा असत्य है ? हमारी समजमेंतो यह कहना और लिखना जूठ है. क्योंकि जो कोई नरक, स्वर्ग, पापपुण्य ईश्वरकों तथा पूर्वोत्तर ज्नवानुयायी अविनाशी आत्माकों नही मानते है वे नास्तिक है तथा जिस शास्त्रमें जीवहिंसा, मांसज्नक्षण, मदिरापान, परस्त्रीगमन करनेंसे पुण्य, धर्म, स्वर्ग मोक्षका फल लिखा है तिन शास्त्रोंके

बनाने और माननेवाले नास्तिक है. जैनमतमेंतो उपर लिखे नास्तिक मतके लक्षणोंमेंसें एकभी नही है तो फेर जैनमतकों नास्तिक कहना जूठ है. साहिब तुम नही जानते नास्तिक उसकों कहते है, जो वेदोकों न माने. जैन बौध वेदोकों नही मानते है, इस वास्ते नास्तिक कहे जाते है. यह कहना मूर्खोंका है, अप्रमाणिक होनेसें. क्योंकि किसी मूर्खनें सुवर्णको पीतल कह दीया तो क्या सुवर्ण पीतल हो जावेगा? ऐसेतो सर्व मतांवाले कह देवेंगे हमारे मतके शास्त्रकों जो न माने सो नास्तिक है, जैनी, करानी, मुसलमान ये सर्व कह देवेगे हमारे द्वादशांग, अंजील, कुरानको जो न माने वो नास्तिक है. तथा कुरानी, मुसलमान, यहुदी प्रमुख सर्व नास्तिक ठहरे क्योंकि वे वेदको नहीं मानते है. इस वास्ते न्यायसंपन्न पुरुषोंकों विचार करना चाहिये जो मांस मदिराके खाने पीने वाले और ठगबाजीसें लोगोंका ठगने वाले, दुराचारी, ब्रह्मवर्जित, लोगोंका मरण चिंतनेवाले, छल दंभसें लोगोंकी चडी हामीयोंके फोडने वाले, असत्यभाषी, व्रतप्रत्याख्यानसें रहित, महालोभी, स्वार्थतत्पर, लोगोंकों भ्रम अंध कूपमें गेरनेवाले, दयादान परोपकारवर्जित, अभिमानी, सत्साधुयोंके द्वेषी मत्सरी, परगुण असहनशील, अज्ञान, मूढ पंथके चलाने वाला, परवस्तुके अभिलाषी, परस्त्रीगामी, हठकदाग्रही, सत्शास्त्रके वैरी इत्यादि अनेक अवगुण करके संयुक्त जो है वे प्रत्यक्ष राक्षस और नास्तिक है और जो दयादानवान्, मद्य मांसके त्यागी, परमेश्वरकी भक्तिपूजा करनेवाले, करुणार्द्रहृदय, संसारके विषयभोगोंसें उदासीन अष्टादश दूषणकरी रहित ऐसे परम ईश्वरके उपासक इत्यादि अनेक शुभगुणालंकृत होवें वे आस्तिक है. अब बुद्धिमान आपही विचार लेंगे आस्तिक कौन है और नास्तिक कौन है. अपने बोर मिठे औरोंके खट्टे यहतो सर्वमतांवाले कहते है. परंतु य-

अर्थ सच्चे मोक्षमार्गका निर्णय करना बहुत कठिन है. क्योंकि जो जो मतग्राही है वे सर्व अपने अपने ग्रहण करे मतोंकों सच्चे मानते है. उनकों किसीमतके शास्त्रका स्वाद नही और जो प्रेक्षावान है और सत्यके ग्राहक है उनही वास्ते यह ग्रंथ है. क्योंकि पक्षपात करि रहितही पुरुषोको शुद्ध धर्मकी प्राप्ति होती है.

इस ग्रंथका प्रयोजन.

इस ग्रंथके लिखनेकातो प्रयोजन इतनाही है कि वर्त्तमान समयमें इस आर्यखंडमें हिंडुयोंके जो मत चल रहे हें तिनमेंसें जैन बौध वर्जके सर्व मतांवाले वेदोंकों सच्चा शास्त्र मानते है. परंतु वेदोंमें क्या लिखा है और किसकिस प्रकारके कैसे कैसे देवतायोंकी भक्ति पूजा यज्ञादिक लिखे है और वेद किसके बनाये है और किस समयमें बने है यह बात बहुत लोक नही जानते तिनकों पूर्वोक्त सर्व मालुम हो जावेगा और जैनीयोंका क्या मत है यहभी मालुम हो जावेगा. वेदके पुस्तक वर्त्तमान संस्कृत भाषासें कुछक विलक्षण संस्कृतमें है. इस वास्ते पौराणिक पंडितोंसे वेदांका यथार्थ अर्थ नही होता है. सायनाचार्यादि जो भाष्यकार हो गये है तिनके करे भाष्य जब हाथमें लेकर बांचीएतो वेदांका अर्थ प्रतीत होते है.

वेद विरुद्ध मतोंका प्रदर्शन.

वेदके प्रत्येक वाक्यकी मंत्र ऐसी संज्ञा है. वेद बहुत कालके बने हुए है परंतु कपिल, गौतम, पतंजलि, कणादादिकोंनें जो वेदांको छोडके नवीन सूत्र बनाये है तिसका कारणतो ऐसा मालुम होता है कि वेदकी प्रक्रिया अछी नहीं लगी होगी नहींतो वेदोंसे विरुद्ध कथन वे अपने ग्रंथोमें क्यों लिखते. क्योंकि वेदोमेंतो यज्ञादिक कर्मसें स्वर्गप्राप्ति लिखी है. और उपनिषद् भागमें अद्वैतब्रह्मके जाननेसें मुक्ति कही है, और प्रज्ञानानंदब्रह्मका स्वरूप लीखा है, और सांख्यमत वाले यज्ञादिकोंकों नहीं मानते है. मानना तो दुर रहा यज्ञमें पशुवधकों ब-

हुत बुरा काम कहते है और प्रकृति पुरुषवादि होनेसें अद्वैतके विरोधी है. और गौतम अपने सूत्रोंमें मुक्तिका होना ऐसें लिखता है, तथाच गौतमका प्रथम सूत्र ॥

" प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वान्नासछलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः " ॥ १ ॥ " प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंमा, हेत्वान्नास, छल, जाति, निग्रह अने स्थान,—ए सोलांपदार्थका तत्वज्ञानसें मोक्षकी प्राप्ति होती है. "

इस सूत्रका तात्पर्यार्थ यह है कि सोला पदार्थके जाननेसें मुक्ति होती है. मुक्तिमें आत्मा ज्ञानसें शून्य हो जाता है और दंतकथामें यह न्नी सुननेमें आया है की गौतमनें न्यायसूत्र वेदोंहिके खंडन करने वास्ते रचे है.

वेदमें गौतमादि मतोका खंडन.

और नपनिषद्की न्नाष्य टीकामें कपिल, गौतमादिके मतोंका खंमनन्नी लिखा है. इस्सें यह सिद्ध हुआकि कपिल, गौतमादिकोंको वेदोंकी प्रक्रिया अछी नही लगी. तब नलोंने विलक्षण प्रक्रिया रची.

वेद परत्वे ब्राह्मणोकी भिन्न भिन्न संज्ञा.

हाल जो ब्राह्मण वेदपाठ मुखसें पढते है वे वेदीया कहे जाते है. और जो यज्ञादिक जानते है तिनको श्रोत्रिय कहते है. और जो गृहस्थके घरमें नपनयन, विवाह इत्यादि संस्कार करते है तिनको याज्ञिक अथवा शुक्ल कहते है. जो श्रोताग्निकी सेवा करते हैं तिनको अग्निहोत्री कहते है. और जिनने यज्ञ करा होवे तिसको दीक्षित कहते है. एक शास्त्रके पढे शास्त्री और सर्व शास्त्रोंके पढेको पंमित कहते है, इत्यादि अनेक तरेंके ब्राह्मणोंके नाम है. वेदमें मुख्यधर्म यज्ञका करणा बतलाया

है. वेद मंत्रका विनियोग यज्ञार्थ होता है. और प्राचिन कालमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंनें अनेक तरेकें यज्ञ करेथे तब देव तुष्टमान होकर मनमाना वर देते थे.

वेदमें देवताकी संतुष्टि.

यह कथन गीतामें लिखा है: ॥ " सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोस्तिष्टकामधुक् ॥ देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः । परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं ॥ यज्ञाशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः " ॥

अर्थ—पूर्वे ब्रह्मानें यज्ञका अधिकारी ब्राह्मणादि प्रजाकुं यज्ञ करनेकी क्रिया बताइ और कहाकी. यज्ञक्रिया तुम करो जो तुम वांछोगे सो तुमको मीलेगा. आ यज्ञोवडे तुम देवोकी वृद्धि करो. पीछे यज्ञ करनेसें ओ देवताओ तुमारी वृद्धि करे. ओ रीतिसें परस्पर वृद्धि करनेवाला तुमे ओर देवता उभय इष्ट वस्तु संपादन करोंगा. यज्ञ करनेसें वर्षा होवे, कर्मोसें यज्ञ होवे वेदोसें कर्म होवे ओर वेद अक्षर ब्रह्म परमात्मासें उत्पन्न भया है.

इसतरें मनुष्यकों उपदेश कहा. इस कालमें अनेक स्वछंदाचारी स्वकपोलकल्पित पंथ चलाने वाले स्वकपोलकल्पित अर्थ बनाके वेदिकी हिंसा छिपाने वास्ते मनमानी कल्पना करके मूर्ख जनोंकों भ्रम अंधकूपमें गेरते है. उनका जो यह कहते है कि वेदोंमें हिंसाका उपदेश नहीं, सो जूठ है.

वेदमें हिंसाका उपदेश है.

क्योंकी भागवतमें लीखा है कि प्राचिनवर्हि राजाने बहुत यज्ञ करके बहुत जिवोंकी हिंसा करी. पिछली वेर नारदजीनें उपदेश देके हिंसकयज्ञ छोडवाया प्राचीन भरत राजाने ५५ पंचावन अश्वमेध यज्ञ करे. रामचंद्र पांडवाने अश्वमेध

करा, ज्ञारतादि ग्रंथोमें लिखा है. तथा जेपुरमें राजा सवाई जयसिंहने अश्वमेध करा, ए दंतकथा प्रसिद्ध है. तथा ज्ञरुचमें बलिराजाने दश अश्वमेध यज्ञ करे उस जगें अब लोग स्नान करते है तिसको दश अश्वमेध क्षेत्र कहते है. इसी तरें उत्कंठ महादेवके पास जाबालि ऋषिने यज्ञ कराथा तिस जगाका नाम खैरनाथ कहते है, और तिस जगासें ज्ञस्म निकलती है. इसी तरें हिंडुस्तानमें हजारों जगें यज्ञ हुए है. ए वैदिकी हिंसा क्योंकर छिप शक्ति है ? वैदिक यज्ञमें बहुत हिंसा करनी पमती है, इसवातमें कुछज्ञी शंका नही.

जैन धर्मकी प्रबलतासें वेदकी हिंसा हठ गइ.

जिस जिस कालमें जैन धर्मकी प्रबलता होती रही है तिस तिस कालमें वैदिक हिंसा बंद होती गई है और जो जो स्मृति वगैरे शास्त्रोंमें जो कहीं कहीं दयाका विशेष कथन है सो सो दयाधर्मकी प्रबलतासें ऋषियोंनेज्ञी जगतानुसार दयाधर्महीकी महिमा लिखी है. वास्तवमें तो ऋषियोंका यज्ञ याजन करना हि धर्मथा. इस कालसें २४०० सो वर्ष पहिलां जब जैन दयाधर्मीयोंका जोर बढा तब वैदिकधर्म बहुत लुप्त हो गयाथा. केवल काशी, कनोज, कुरुक्षेत्र, काश्मिरादि स्थानोमें किंचित्‌मात्र वैदिकधर्म रह गयाथा बाकी सर्वजगें जैन जैन बौधधर्महीं फैल रहाथा. पीछे फेर ब्राह्मणोंनें कमर बांधके राजायोंकी मदतसें बौधोंको मारपीटके इस देशसें निकालदिया परंतु जैन धर्मको ब्राह्मण दूर न कर सके. और देशोंकी अपेक्षा मारवाम, गुजरात, मेवाम, मालवा, दिल्ली, जैपुरके जिल्लेमें अबज्ञी जैनमतके माननेवाले लोग बहुत है. इसवास्ते इन देशोमें ब्राह्मणज्ञी दयाधर्ममें चलतेहै. यज्ञज्ञी नहीं करतेहै. और देशोमें अबज्ञी यज्ञ होतेहै और श्रोत्रिय ब्राह्मणज्ञी बहुत है.

वेदोंका विभाग.

वेद जमूमूलमें एक नहीथा अनेक ऋषियो पास अनेक मंत्र थे. वे सर्व मंत्र व्यासजीने एकठे करे

तिनोंके चार नाम रख्खे. जोनसे वेद रूप वाक्यथे तिनकों जुदे निकालके तिनमें अनेक देवतायोंकी प्रार्थना है. तिसका नाम ऋग्वेद रख्खा. इस वेदमें जिन देवतायोंकी प्रार्थना है वे देवता पुराणके रामकृष्णादि देवतायोंसे जुदे है. इस वेदमें अग्नि, वायु, सूर्य, रुद्र, विष्णु, इंद्र, वरुण, सोम, नक्त, पुषा इत्यादि देवते गिणे है.

वेदकी भिन्न भिन्न संज्ञा. इनकी प्रार्थना वेदमंत्रसें करीहै. जो गायन करनेके मंत्र थे तिसका नाम सामवेद रख्खा. और जिसमें यज्ञ क्रिया बतलाइ है तिसका नाम यजुर्वेद रख्खा. यजमान अर्थात् यज्ञ करनेवाला, पुरोहित अर्थात् मददगार, और चौथा वेद अथर्वण, इसमें अरिष्टशांति इत्यादि लिखाहै. चारवेद अर्थात् संहिता और ब्राह्मण ये वेदहै.

वेदोकी उत्पत्तिका विविध विचार. कोई इनकों अनादि कहता है. कोई कहताहै ब्रह्माके मुखसें प्रगट हुए अर्थात् ब्रह्मका मुख ब्राह्मण, ये वेद है तिनमेंसें वेद निकलेहै. जिस जिस कालमें दयाधर्मीयोंका अधिक जोर होता रहा तिस तिस कालमें उपनिषद् भाग ऋषि बनाते रहे उनमें निर्वृत्ति मार्गकी प्रसंशा लिखी और वैदिक यज्ञकी निंदा, तथाच मुंडकोपनीषत् "इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयंते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्टे सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं चाविशन्ति" ॥ १० ॥

उपनीषद्. भाष्यं ॥ इष्टा पूर्त्तम् इष्टं यागादि श्रौतं कर्म पूर्त्तं वापीकूपतडागादि स्मार्त्तं । इत्यादि । भावार्थः—" इष्टापूर्त्त ए शब्दका अर्थ असाहै. यागादि श्रौत कर्म कुं इष्ट कहेतेहै. वापी, कुआ और तलाव बनाना ओ पूर्त्त कहेतेहै. जो कोइ मूढ लोको ए इष्टापूर्त्त—यज्ञादिक वैदिक कर्मकोही अच्छा जानता है, दुसरा श्रेय-कल्याण नहीं जानता है, सो स्वर्गमें सुकृत कर्मका फल भोग के

अति हीन लोक अर्थात् नरक तिर्यंच गतिको प्राप्त होताहै " १०

ऋषियोंका मांसाहार. प्राचीन कालमें जे ब्राह्मणथे तिनकों ऋषि कहते थे. कितनेकका नाम महर्षि, देवर्षि, राजर्षि, गांदर्षि ऐसे ऐसे जूदे जूदे नामथे, ये सर्व ऋषि अनेक प्रकारके जानवरोंका मांस खातेथे, ये बात इनके बनाये ग्रंथोसें मालुम होतीहै. वर्त्तमानमें म्लेच्छ यवन प्रमुख मांस खातेहै, परंतु पूर्वले ऋषि इनसेंजी अधिक मांसाहारी थे, क्योंकि इसकालमें हाल फ्रान्स देशमें घोमेके मांस खानेका प्रचार हो गयाहै परंतु अश्वमेध यज्ञकुं ऋषि हजारों वर्षसें करते आयेहै.

वैदिक यज्ञकर्मका विच्छेद. इस्सें यह मालुम होता है कि ऋषिमंमलमें घोमे खानेका बहुत प्रचार था. जब श्रीमहावीरजगवंत हुआ और जनोंने गौतमादि अग्निहोत्रि दीक्षित याज्ञिकादि ४४०० चौत्तालीसो ब्राह्मणोकों दीक्षा मध्यपापा नगरीमें दीनी. पीछे गौतमादि मुनियोंनें तथा बौद्धोंने दयाधर्मका अधिक प्रचार करा और सात्विकमार्गकी वृद्धि जइ, तब कर्मकांम अर्थात् वैदिक यज्ञधर्म छिप गया. बहुत ब्राह्मण जैन वा बौद्धमत धारी होगये, तब कितनेक ब्राह्मणोंनें वैदिक हिंसाके छिपाने वास्ते कितनीक मिथ्या कल्पना बनाके खमी करी. कोइक जगें लिख दीया " वैदिकी हिंसा हिंसा न जवति, " अर्थ—वेदनें जो हिंसा कहीहै सो हिंसा नहींहै. जागवत स्कंध ११ अध्याय ५ श्लोक ११. " यद्घ्राणजक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालजनं न हिंसा." टीका " देवतोद्देशेन यत्पशुहननं तदालंजनं " जावार्थ—मदिराका आघ्राण करनां सो मदिराका जक्षण है. देवताकुं उद्देशी जे पशुकी हिंसा वो आलजन बोलताहै.

वेदकी हिंसामें विविध मत. कोइ कहते हैं पूर्वले ऋषि जानवरोंकों मारके फिर जीता कर देतेथे. उनकों यह सामर्थ्यथा,

हमकों नही, इस वास्ते हमकों जीवहिंसा न करनी चाहिये. कोइ कहतेहै वेदमें हिंसा नहीं, जो हिंसाका अर्थ करतेहै तिनकी नूल है. कोइ कहतेहैं मनुष्यकों मांस खानेकी इच्छा होवे तो यज्ञ करके खावे इस वास्ते ये विधि नहीं, संकोच है. कोइ कहतेहै वैदिकी हिंसा पूर्वले जुगोंके वास्ते थी, कलिके वास्तें नहीं. अब शोच विचारके देखीये तो पूर्वोक्त सर्व कल्पनामेंसें एकनी सच्ची नहीं. क्योंकि पूर्वलें ऋषि जीव मारके फिर जीता कर देतेथे इस कहनेमें कोइनी प्रमाण नहीं १. जो कहतेहै वेदमें हिंसा नहीं तिनोंने वेद पढेही नहीं है २. वेदवचनमें जो संकोच कहतेहै सोनी जूठ है क्योंकि अनुस्तरणी इत्यादि अनुष्ठानोंमें मांसतो नहीं खातेहै तो फेर गौ प्रमुखकी हिंसा किस वास्ते लिखीहै. जो काम्य कामके बास्ते हिंसा है सोनी ईश्वरोक्त बचन नहीं. पांचमा विकल्पनी मिथ्याहै क्योंकि जीस युगमें हिंसा होतीथी तिसकों कलि कहना चाहिये कि जिस युगमें महादयाका प्रकाश हुआ तिसका नाम कलि कहना चाहिये? यह बमा आश्चर्य है. इस बास्ते पूर्वोक्त सर्वकल्पना मिथ्याहै. सच्ची वाततो यह है कि जबसें जैन बौद्धनें हिंसाकी बहुत निंदा करी और जगतमें दयाधर्मकी प्रबलता हुइ तबसें ब्राह्मणोंनें हिंसकशास्त्रोंके छिपाने वास्ते अनेक कल्पित युक्तियां लिखी.

शांकर भाष्य की रचनाका हेतु. जब बौद्ध ब्राह्मणोंनें कतल करवाए और जैनमत थोमे देशोंमें रह गयाथा तब संवत् ६०० वा ७०० के लगनग शंकरस्वामी हुए, तिनोंने विचारा कि जैनबौद्धमत मानके लोगोंको वैदिक धर्म अर्थात् यज्ञयागमें गौवध प्रमुख जीव हिंसा करनी बहुत मुशकिल है. वैदिक धर्म उपर निश्चय लाना कठिन है. इस लिये समयानुसार ऐसे नाष्य बनाए, और ग्रंथ रचे कि जिन पर सबका चित्त आजावे.

दयाधर्मका प्रचारसें हिंसाका प्रतिबंध.

और जैनबौद्धमतसें वैदिक होना बहुत बुरा न लगे. तात्पर्य कि घोडे, आदमी, गौ, बलद, भैंस, बकरी, भेडादिकके होमनेकी जगें घृत, दूध, पायस और पिष्टपशु चढाने लगे, और शंकर स्वामीके चेलोंनें गवाही देदी, जो कुछ पहिले पुस्तकोंमें लिखाहै वे सत्ययुगादि युगांके वास्ते था, अब कलिकालके लीये नयाही धर्म रचा गयाहै. कुछ नवीनोमें पुराणे पुस्तक मिलाए गए. कुछक पुरानोमें नवीन सामिल कियेगये ग्रंथभी शंकरस्वामीके समयमें पुराणोंके नामसें बहुतरें नयेनये बनगये. परं शंकरस्वामी जवान ही मरगए, ३२ वर्ष जीवके.

शंकरस्वामी शाक्त वाममार्गी था.

आगमप्रकाश ग्रंथका करनेंवाला लिखता है कि शंकरस्वामी असलमें शाक्त अर्थात् वाममार्गी था. क्योंकि आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयमें लिखाहै कि शंकरस्वामीने श्रीचक्रकी स्थापना करी, और श्रीचक्र वाममार्गीयांका मुख्यदेव है. शंकरविजयके ६५ में अध्यायमें श्रीचक्रकी बहुत तारीफ लिखीहै. और शंकरस्वामीनें श्रीचक्रकी स्थापना करी. शृंगेरी, द्वारिका वगेरे ठिकाने इनके मठमें श्रीचक्रकी स्थापना है.

पूर्वपक्ष । शंकरस्वामीतो ब्रह्माद्वैत वादी थे उनकों शाक्त लिखना ठीक नहीं.

उत्तर—वामीभीतो अपनेकों ब्रह्म और शिवरुप मानते है. तथाच, रुद्रयामले शांकरी पद्धतौ । " प्रज्ञानं ब्रह्म अहंब्रह्मास्मि तत्त्वमसि अयमात्मा ब्रह्म पंचमपात्रं पिबेत्." । भावार्थ " प्रज्ञान ब्रह्म है, में ब्रह्म हुं, ते ब्रह्म तुम हो, आ आत्मा ब्रह्म है अेम बोलते पंचमपात्रका पान करनां " तथा मनुटीकाकार, कुलकभट्ट तंत्रशास्त्रकोंभी श्रुतिरूप कहता है । " वैदिकी तांत्रिकीचैव द्विविधा श्रुतिः कीर्तिता " ॥ श्रुति दो प्रकारकी है, वैदिकी और तांत्रिकी

इस वास्ते वामन्नी अद्वैत वादी है. तथा पद्मपुराणमें पाखंडोत्पत्तिके दो अध्याय है तिनमें शिवजीने कहाहै यह वाममार्ग मैंनें लोगांके भ्रष्ट करने वास्ते बनायाहै.

वाममार्ग वास्ते शिवका अभिप्राय.

कदापि यह बचन वैष्णव लोकोंने लिखा होगा तोन्नी इस्सें यह मालुम पडता है कि श्री महावीरजीसें पीछे यह मत चला होवेगा. नहीं तो इनके लाखों ग्रंथ कैसे बन जाते. वाममार्गके चलां पीछे फिर कुमारिलन्नट्टने पूर्व मीमांसा वैदिक यज्ञ करनेका मत चलाया, तिसमें कितनेक कर्म जिनमें बहुत हिंसाथी तिनकों काम्यकर्म ठहराके रद करा. कितनेक रखलीये, लिखदियाकि इनके करनेंसें मोक्ष होती है.

अद्वैतमतकी स्थापना.

यह पंथ कितनेक दिन चला पीछे शंकरस्वामीनें अद्वैतपंथ चलाया. वेदांत मत और कौलमत बहुत हिस्सोंसें मिल जाता है. क्योंकि कौलमतको राजयोग कहते है, पतंजलिके शास्त्रकों हठयोग कहते है, वेदांतको ज्ञानयोग कहते है, और गीताके मतकों कर्मयोग कहते है. इन चारो योगोमें अंतर इतना है कि राजयोगमें न्नोग न्नोगके मोक्ष होनेकी इच्छा करते है. हठयोगमें देह दंड, समाधि वगैरेंसें मोक्षकी इच्छा और ज्ञानयोगमें वैराग्यसें मोक्ष, कर्मयोगसें वर्णाश्रमके धर्म करणेंसें मोक्ष.

पाखंडमत वास्ते शिवका अवतार.

पद्मपुराणमें ऐसी कथा है कि पाखंडमतकी वृद्धि करने वास्ते शिवजी अवतार लेंगें. इस कथासें कोई कहता है कि यह कथा वाममतसें संबंध रखती है. और कितनेक वैष्णव कहतेहै के शंकराचार्यसें संबंध रखतीहै. क्योंकि शंकरस्वामीनें आत्माकों ब्रह्म कहा यह बडा पाखंड करा.

शंकराचार्य वास्ते मध्वमतका अभिप्राय.

ऐसें मध्व संप्रदायके वैष्णव कहते है, तथा कौल, शाक्त, वाम, अघोरी, औघड और परमहंस संन्या-

सी ए सर्व एक मत वाले है. शंकरस्वामीके पीछे संवत ११७५ में रामानुज उत्पन्न हुए. उनोंने कहाकि शंकरका मत अयौक्तिक और बड़ा कठिन है.

शंकरस्वामी पीछे भिन्न भिन्न मतोंकी उत्पत्ति.

भूतनाथ महादेव और काली करालीकी पूजाका क्या यह दिन है? सीतारामकों भजो और सहिजसें तरो. रामानुजका मत लोगोंकों अछा लगा. तब त्रिपुंड्रकी जगें तिलक लगाना शरु कीया, लेकिन जलदही संवत १५३५ में वल्लभाचार्यनें जन्म लीया और राधा कृष्णका रास विलास ऐसा दिखलायाकि उसनें बहुतोंका मन लुभाया.

वल्लभाचार्यका भक्तिमार्ग.

विशेष करके स्त्रीयोंकी भक्ति इसपर अधिक भई. इस कारण उसकी उन्नति बहुत जलद होगई. इनके विना एक भक्तिमार्ग निकला सो इसकालमें चलता है. तिनमें चार संप्रदायके गृहस्थ, त्यागी, वैरागी साधु इत्यादिकोंको गिणतेहै. हरदास पुराणिक, रामदासि वारकरी ये सर्व भक्ति मार्गवाले जीवहिंसाको बहुत बुरा जानतेहै. दक्षिण देशमें के स्थानोमें जीवहिंसा भक्तिमार्गवालोंके सबबसें दूर हुईहै.

वैदिकी हिंसा का अस्वीकार

उधर संवत ६०० से उपरांत जैनमार्गकी वृद्धि आमराजा ग्वालियरका, वनराज राजा पट्टनका, सिद्धराज कुमारपाल पट्टनके राजे इत्यादि राजायोंनें तथा विमलचंद, उदयन, वाग्भट, अंबड, बाहड, वस्तुपाल तेजपाल, साचासुलतान प्रमुख राजायोंके मंत्रीयोंने तथा आबु, झांझण, पेथड, भीम जगडु, धनादि शेठोनें जैन मतकी वृद्धि बहुत करी, तथा और अनेक पंथ निकले परं वैदिकी हिंसा किसीनेंभी कबुल नहीं करी. इन पूर्वोक्त जैन, वैष्णव, भक्तिवालोंनें हिंसा बहुत जगासें हटादी तोभी कितनेक देशोंमें वैदिकी हिंसा चलती है.

मांसाहारी ब्राह्मण.

सारस्वत, मैथिल, कान्यकुब्ज, गौड, उत्कल ये पांच गौड ब्राह्मण है. इनकी बस्ती करांची, लाहोर पिशावरमें लेके कलकत्ते तक सर्व हिंदुस्तानमें ये सर्व मद्यमांसका आहार नित्य करतेहै. तिनमें दिल्लयादिके आसपासके देशोमें जो गौड ब्राह्मण मांस नहीं खाते है तिसका कारण यहहै, दिल्लीके गिरदन वाहमें बहुतसी बस्ती अग्रवाल बनियोंकी है. अग्रवाल आधे जैनी और आधे वैष्णव है. गौड इनके पुरोहित है. जेकर गौड मांस खावेंतो जैनी वैष्णव अग्रवाल उनकों घरमें न चढने देवें. इस वास्ते इन देशोमें वैदिक यज्ञ नहीं होता है.

यज्ञमें मांस भक्षण.

अग्रवालोंके कुलमें मांस मदिरेका निषेध है, और द्राविड, तैलिंग, कर्णाट, महाराष्ट्र इन चारों देशोमें यज्ञ करती वखत मांस खातेहै परंतु नित्य नहीं खाते है, और गुजरात मारवाडके ब्राह्मण किसी कारणसेंभी मांस नही खाते है. और दक्षिणमें जो वैश्नव संप्रदायके ब्राह्मण है वो आटेका बकरा बना करके यज्ञमें होमके खातेहै.

पशुहोमका प्रचार.

इसीतरं बडोदरेमें करनाली क्षेत्रमें यज्ञ करा है. तथा पूना, सतारा, काशी इत्यादि क्षेत्रोमें बहुत यज्ञ होते है, तिनमें कोइ यज्ञमें चार कोइमें आठ कोइमें पच्चीस इतने पशु होमनेमें आतेहै. और इन जानवरोंको शस्त्रसें नहीं मारतेहै क्योंकि तिनका रुधिर बाहिर नहीं गिरने देतेहै. इस वास्ते गला घोंटके मारते है. यह काम बहुत निर्दय क्रूर हृदयवालोंका है परंतु वेदाज्ञा समझते है इस्से करते है. जिस जगे जैनी गुजराती मारवाडी गाममें होवे है तिस गाममें अग्निहोत्रि यज्ञ करें तो कोई उनको सौदा माल देते नहीं, दामसेंभी उनकों माल नही देते है. एसा नियम करते है. तिस्सें अग्निहोत्रियोंको बहुत हरकत होती

है. तिस वास्ते अहमदनगर जील्लेमें बहुत गामोंमें जैनीयोंकी बहुत वस्ती है, इस वास्ते तिहां यज्ञ नहीं होते है. इसी तरे मुंबईमें गुजराती, मारवाम्नी जैनी और वैष्णवकी वस्ती बहुत है इसवास्ते आजतक मुंबईमें यज्ञ नहीं हुआ और जिस जगें ब्राह्मणोंका बहुत जोर है तहां अबन्नी यज्ञ होतेहै.

पुनामें वाजपेय यज्ञ.

सन १७७२ इस्वीमें पुनामें वाजपेय यज्ञ हुवा था, तिसमें २४ चोवीस बकरे होमे थे. और बमे बमे नामावर गृहस्थ वैदिये, ब्राह्मण, शास्त्री पंमित एकठे हुए थे. धर्मशास्त्रमें लिखा है, यज्ञ करनेंसे देश और न्नूमि पवित्र होतें है. और कोनसें देशमें यज्ञ करना, किस देशमें न करना, तिसका विवरा लिखा है. तिनमें गंगा, यमुनाका कांठा सबसें श्रेष्ट लिखा है. पूर्व कालमें तिस जगे बहुत यज्ञ हुवे है. तिस वास्ते तिन देशांको पुण्यन्नूमि कहते है. इस लिखनेंसें यह सिद्ध हुआ कि वेदाज्ञासें असंख्य पशु यज्ञमें होमके ब्राह्मण खा गए.

एकही शास्त्र सो आधा सच्चा और आधा जूठा होही नही सकता है.

फेर अपने आपकोंतो ईश्वरके आम्नीये और जैनी दयाधर्मीयोंकों नास्तिक कहते हुए लज्जा क्यों नहिं करते है? तथा कोइ कहते हैं वेदमें जो निर्हिंसक कथन हम मान लेंगे और हिंसा प्रतिपादक श्रुतियोंकों छोड देंगे यहन्नी कथन मिथ्या है. एकही शास्त्र सो आधा सच्चा और आधा जूठा यह होही नहीं सकता है. ईश्वरके कहे शास्त्रमें यह क्योंकर हो सकता है कि अन्नप्राशन, मौंजिबंधन, लग्न, अंत्येष्टि, श्राद्धतर्पण, श्रावणी इत्यादिक कर्म तो अछे, शेष सर्व यज्ञादिक जूठ है. यहतो सर्व सात्विक धर्मकाही प्रन्नाव है, जो कितनेक लोक जीवदयाधर्मकों जान गये है, अब वो समय फिर आता मालुम नहीं होता; जो सर्व लोग वैदिक हिंसा फिर करने लग जावे. एसातो मालुम होता है कि जेकर अंग्रेजोंका

राज रहा और सर्व लोग विद्या पढते रहे तो शेष रही सही बी वैदिक हिंसा बंद हो जावेगी.

कर्मकांड ब्राह्मणोकी आजीविका है. जबसें कर्मकांम जक्त देशोंसें उठ गयाहै, तबसें ब्राह्मण लोग बहुत दुःखी हो गये हैं; क्योंकि ब्राह्मण लोगोंकि आजीविका विशेष करके कर्मकांडसेंही होती थी, क्योंकि कोई पुरुष शांतिक पौष्टिक इष्टापूर्तादि करे तो ब्राह्मणकों पैसा मिले सो कर्म लोगोंके जीमें उठता जाता है, क्योंकि बहुते अंग्रेजी फारसी पढने वालेतो ब्राह्मणोंका कहना जूठा मानते है और ब्रह्मसमाजी और दयानंदसरस्वती वगैरे तो ब्राह्मणोंके कर्मकांडकी आजीविकाकी बेमी मोवनेकों फिरतेहै. क्योंकि ब्राह्मणोंने स्वार्थतत्पर होके लोगोंकों ऐसे भ्रमजालमें गेरा है कि लोगोंकों सच्च जूठकी कुछ खबर नहीं पमती है. जैनोकों जो ब्राह्मण नास्तिक कहतेहै तिसका सच्चा कारण तो यह है, जिस बखत जैन बौद्धोंके धर्मकी प्रबलता जई तिस वखत ब्राह्मण जो इनके विरोधी थे सो इनके साथ लमनें और इनको नास्तिक कहने लगे, क्योंकि इनके कर्मकांमके नष्ट होनेसें इनकी आजीविका बंद हो गईथी. चाहो कोई पंथ निकले परंतु ब्राह्मणोकी आजीविका जंग न करे. तबतो ब्राह्मण उस पंथ वालेकों कुछ नहीं कहतेहै और द्वेषजी नहीं करतेहै.

संन्यासका प्रचार. प्राचिन कालमें जब अद्वैत मत अर्थात् ज्ञानपंथ निकला तब लोग संन्यासी होने लगे, तब ब्राह्मणोंने तिनके साथ मिलके ऐसि मर्यादा बांधीकि प्रथम कर्म करके पीछेसें सर्व संन्यास लेवे, इस बास्ते अद्वैत वादीयोंके साथ ब्राह्मणोंका झगडा नहीं हुआ. जब जक्ति मार्ग निकला तिनोंने कर्मकांडकी निंदा करी तिनके साथ ब्राह्मणोंका वैर आज तक चला जाता है; परंतु जब ब्राह्मणोंका कर्मकांड ढीला पमा तब ब्राह्म-

णोंनें एक और युक्ति आजीविकाकी निकाली सो यह है.

तीर्थोंका माहात्म्य सो टंकशाल है.

नदी, गाम, तलाव, पर्वत, भूमि इत्यादिक जो वेदोंमें नहीं है तिनके माहात्म्य लिखने लगे, तिनकी कथा जैसी जैसी पुरानी होती गइ तैसी तैसी प्रमाणिक होती गई. और फलभी देने लगी. इसी तरें काशी, प्रयाग, गया, गोदावरी, पुष्कर, जगन्नाथ, श्रीनाथ इत्यादिक हजारों माहात्म्य लिखे, यह टंकशाल अबभी जारी है. पंढरी माहात्म्यकों बनायें लिखें साठ ६० वर्ष हुयेहै; डाकोरके माहात्म्य लिखेंकों १४ चौदह वर्ष हुयेहैं, पावकाचल पावागढका माहात्म्य, सिद्धपुरका माहात्म्य दोनों थोडेही वर्षोंसें लिखे गयेहै. इसी तरें जाति जातिका माहात्म्य लिखाहै, जैसे नागरखंड, औदिच्य प्रकाश, रैक्कपुराण इत्यादि हजारों माहात्म्य प्रसिद्ध है. इन ग्रंथोंके लिखनेवालोंनें बहुत धूर्त्तता करी है सो धूर्त्तता यह है; अब कलियुग आय गया है, लोगोंकी श्रद्धा ब्राह्मणोंके लेख उपरसें उठ जायगी. इस वास्ते लोगोंकों गाफल न रहना चाहिये और श्रद्धा न छोडनी चाहिये. छोडेंगे तो नरकमें जावेंगे. कलि बुद्धि बिगाडता है. इत्यादि बहुत धमकीयां पत्रेपत्रेमें लिखी है. इसी तरें कितनेक मास, तिथि, योग, वार इत्यादिकोंके माहात्म्य लिखे है. तिनकों व्रत पर्वणी कहते है. व्यतिपात, सोमवार, पुरुषोत्तममास, कपिलषष्ठी, महोदय करवाचौथ संकटादिके माहात्म्य लिखे. जैसे जैसे पुराणे होते जाते है तैसें तैसें अधिक माननें योग्य होते जाते है. करोडों लाखों रुपइए खरचके लोग काशी यात्रा करते है, पर्वणी और व्रत उपर दान पुण्य करते है, तिस्से माहात्म्य लिखनेवालोंका प्रयत्न करा व्यर्थ नहीं हुआ. जबतक लोगोंको अज्ञान दशाहै तबतक इस भ्रम जालसें कबी नहीं निकलेंगे.

दुसरी यह बात हैकि ब्राह्मणोंकी शौकने बहुत होगई है. लोग अखाडेके बाबांको, मंदिरोंकें साधु गुरुके शिख भाइ रामसिंहके कूके शिष्य भराईयोंकों, और अनेक मत और वेषवालोंकों जिमाते है, परंतु ब्राह्मणोंकों नही. कितनेक ब्राह्मणोंका नाम पम्मे और पोप कहने लग गए है, यह ब्राह्मणोंकों बहुत दुखदायक है. इनकी इसमें बमी हानि है.

ब्राह्मणोंकी कुटिलता.

तथा ब्राह्मणोंकों ग्रहण गिननेंकी रीति आती है, तिसकों कालपर्व ठहराके लाखों रुपक हजारों वर्षोंसें कमाते खाते है. ब्राह्मण लोग अपने काममें बमे हुश्यार है क्योंकि किसीका बाप मरजाता है, तब तिसका बेटा शय्या लोटादिक अनेक वस्तु ब्राह्मणोंकों देता है और ऐसें मनमें मानता है कि जो कुछ ब्राह्मणोंकों देउंगा सो सर्व स्वर्गमें मेरे पिताकों मिलता है. इधर दीया और उधर मरनेवालोंकों पहुंचा और तुरत जमा खरच हो जाता है.

ए ग्रंथकादुसरा प्रयोजन.

इस लिखनेका यह प्रयोजन है कि जब बहुत धूर्त्त ज्ञानी और जबरदस्त होतेहै और प्रतिपक्षी असमर्थ कमसमजवाले होते है तब कोई अपने मतलबकों छोमता नहीं. कोई सत्यमार्गी परमेश्वरका भक्तही स्वार्थत्यागी परमार्थ संपादक होता है. पाखंडी बहुत होते है इस वास्ते अबभी पाखंमी लोगोंकों उचित हैकि अपना लालच छोम देवें और लोगोंकों भ्रमजालमें न गेरे, सत्यविद्याका पठनपाठन करे, लोगोंकों अच्छी बुद्धि देवें, हिंसक और जूठ शास्त्रोंकों छोम देवें, कमा करके खावे, छल कपट न करें, सर्व जीवोंपर सामान्यबुद्धि रखे, दुःखीकों साहाय्य देवे, काली कंकाली, भैरव प्रमुख हिंसक और जूठे देवोंकों मानना छोम देवें, सत्य शील संतोषसें चले तो अबभी इस देशके लोगोंके वास्ते अच्छा है.

श्री ऋषभदेव-का विद्यादान और भरतने जैन वेद बनाया.

श्रीऋषभदेवजीनें प्रथम इस अवसर्पिणी कालमें सर्व तरेंकी विद्या प्रजाके हित वास्ते इन भारतवर्षीयोंकों सिखलाई और श्रीऋषभदेवके बडे बेटे भरतनें आदीश्वर ऋषभदेवकी स्तुतिगर्भित और गृहस्थधर्मके निरूपक चार वेद बनाके बहुत सुशील, धार्मिक श्रावकोंकों सिखलाए और कहाकि तुम इन चारों वेदोंकों पढो और प्रजाकों गृहस्थाश्रम धर्मका उपदेश करो तब वो श्रावक पूर्वोक्त काम करणेसें ब्राह्मण नामसें प्रसिद्ध हुए. आठमें तीर्थंकर चंद्रप्रभ तकतो सात्विक धर्मका उपदेश प्रजाको होता रहा, परंतु नवमें सुविधिनाथ पुष्पदंतअर्हंतके पीछे इस भरतखंडमें सात्विक धर्म लुप्त हो गयाथा; तब तिन ब्राह्मणोंनें जगतमें अंधाधुंध मचाई, और वेदोंके नामसें नवीन हिंसक श्रुतियां बनाई अपनें आपकों सर्वसें उत्तम और ईश्वरके पुत्र ठहराया. अपने स्वार्थके वास्ते अनेक पाखंड चलाये. जो कोइ इनको पाखंडसें मने करतेथे उनहीकों ब्राह्मण राक्षस और नास्तिक कहने लग गए, क्योंकि श्रीऋषभदेव आदीश्वर भगवाननें ही प्रथम सात्विक और दयाधर्मका उपदेश करा. भागवतमें लिखा है नारदजीनें कै जगें हिंसकयज्ञ छुडवाये. तिसकाभी यही तात्पर्य है कि जैनीयोंके शास्त्रमें नारदजीकों जैनधर्मी लिखा है. उनोंने जो हिंसक यज्ञ उपदेशसें बंद करे तो क्या आश्चर्य है ? और भागवतमेंभी ऋषभदेवजीकों विष्णुभगवानका अवतार लिखा है. पीछे ईश्वर जगत्कर्त्ता माननेंवालोंका मत चला. जबसें दया हिंसाका बहुत तकरार हुआ तिसके पीछेके बनें भारत, गीता, भागवतादि ग्रंथोका स्वरुपही औरतरेंका है.

बहुत लोक मनमें ब्राह्मणोंकों शांतिरुप गरीब जानते है. परंतु जिस वखत बेगुनाह बौद्धोंके बाल बच्चोंकों हिमालयसें लेके

सेतुबंध तक कतल करेथे और जैन मतके लाखों मंदिर तोड मूर्ति फोड अपनें देव पधराय दीयेथे, और लाखों अति उत्तम पुस्तकोंके भंमार जला दीयेथे; उस बखत इनकी शांति मुद्रा देखतेतो पूर्वोक्त सर्व भूल जाते. और जैन मतमें श्रेणिक, अशोकचंद्र, चेटक, उदयन, वीतभय पाटनका उदयनवत्स, उदयन कोणिकका बेटा चंडप्रद्योत, नव

जैन राजाओ-का समयमेंभी जैनीयोंकी शांति.

मल्लिक, नवलेछिक, पालक, नंद, चंद्रगुप्त, बिंदुसार, अशोक, संप्रति और वनराज कुमारपाल प्रमुख अनेक जैनराजे महावीरजीके समयमें और पीछे हुए तिनके राज्यमेंभी जैनीयोंनें किसि मत वालेके साथ जबरदस्ती नहीं करी. इस कालमेंभी सैकमों जिन मंदिरोंमें जैपुर, गिरनार, आबु, करणाट प्रमुख देशोमें ब्राह्मणोंनें अपने देव स्थापन कर छोमे है. थोमेंही वर्षोंकी बात है कि उज्जयनमें जैनीयोंनें एक मंदिर नया बनवायाथा. जब तैयार हूआ तब ब्राह्मणोंनें झटपट महादेवका लिंग पधराय दीया. इसीतरें संवत १७३१ में पालीमें जैनीयोंकी धर्मशालामें महादेवका लिंग पधराय दीया क्योंकि ब्राह्मण मनमें जानते है ये राजे हमारे धर्ममें है, इस वास्ते जैनी कहां पुकार करेंगे, इनकी कौन सुनेगा इत्यादि अनेक उपद्रव ब्राह्मणोंनें जैनीयोंको करे परंतु जब जैनी अपनी पूरी औज पर थे इनोंनें किसी अन्यमतवालेको मतकी बाबत जबरदस्ती नहीं करी, बलकि सरकारी पुस्तक इतिहासतिमिरनाशकके तीसरे खंडमें जहां राजा अशोकचंद्रके चौदह हुकुम पाली हर्फोंमे लिखे है तिनमेंसें सातवें हुकमकी नकल यहां दरज करते है. खुलासा सातमें आदेशका " चाहे जिस पाखंमका फकीर हो चाहें जहां रहे कोई उसें छेमे नहीं. सबकी कोशिश अखलाककी दुरस्तीमें है. " इस लिखनेंसें यह सिद्ध होता है कि जैन राजायोंनें किसी मतवालेके साथ

मतकी बाबत जबरदस्ती नहीं करी बलकि जैन राजायोंका राज्य प्रजाके बहुत सुधारेमें था. इतिहासतिमिरनाशकके के स्थानोमें इस बातका जिकर लिखा है. दूसरे मतवालोंकी जबरदस्ती के जगों लिखी है. हाल दिल्लीमें जो जैनीयोंकी रथयात्रा ब्राह्मण वगेरोंनें नहीं निकलने दीथी सो सरकार अंग्रेजीके हुकमसें संवत १९३५ में निकली, यह बात प्रसिद्ध है. तथा हथरस, रेवाडी, खुरजे प्रमुख शहरोंमें ब्राह्मण प्रमुख अन्यमतवालोंने जैनीयों उपर थोडी जुलमी करीथी ? यहतो अंग्रेजी राज्यकाही तेज है, जो जैनी अपनें धर्मका उत्सव करते है और सुखसें काल व्यतीत करते है. फेर ब्राह्मणों अपनें आपकों आस्तिक और जैनीयोंकों नास्तिक कहतेहै यह बडे आश्चर्यकी बात है. जैनोंके मतमें ब्राह्मणोंका पाखंड चलता नहीं इस वास्ते जैनोंकों नास्तिक कहते है.

पाराशर स्मृतिका अनादर.

यद्यपि इस कालमें जैनलोकोंमेंभी ब्राह्मणोंकी वासनासें अनेक रूढीके पाखंड चल रहेहै परंतु जैनोंके शास्त्रोंमें बहुत जगतरूढीके पाखंड नहीं है. सिवाय अपनें इष्ट अर्हतके और किसी मिथ्यादृष्टि देवकी भक्ति करनी नहीं लिखी है तथा अतीत कालमें पांचकर्म चलतेथे—

कलियुगमें हिंसाका निषेध.

" अग्निहोत्रं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकं । देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत् " ॥ १ ॥ यह कथन पाराशर ऋषिका है. अर्थः— अग्निहोत्र १ यज्ञादिकमें गायका वध २ संन्यास ३ श्राद्धमें मांस भक्षण ४ देवरसें पुत्र समुत्पन्न करना, अर्थात् देवरकों पति करना ५ यह पांचका कलियुगमें त्याग करना. इस ऋषिनें हिंसाका बहुत निषेध करा है तोभी अज्ञ जन हिंसा

करते है. प्रथम अग्निहोत्र बंद करनेसें वेदोक्त यज्ञोंकी जड काट गेरी है तोभी ब्राह्मणादि अग्निहोत्र नहीं छोडते है.

सांप्रत कालमें अग्निहोत्री बहोत है.

जैसें काशीमें बालशास्त्रीजी अग्निहोत्री सुननेमें आते है. जूनागढका दिवान गोकुलजी झाला सांख्यायनी ऋग्वेदी ब्राह्मण है, सो हालमें अग्निहोत्री हूआ है. अहमदावादका सदरअमीन भाउ मैरालनेंभी अग्निहोत्र लीना है. कुलाबाके बाबाजी दिवानजीका बेटा धुडीराजा विनायक उर्फे भाउ साहिब विवलकर ये बरसो बरस एक दो यज्ञ करके बहुत रुपइये खरचते है. ये संप्रतिकालके प्राचीनबर्हिराजा है. इनके समजाने वास्ते नारद कौन मिलेगा सो कौन जाने. गोपालराव मैराल ये गृहस्थ बडोदेमें प्रसिद्ध थे तिनका भत्रीजा नारायणराव पांडुरंग इनोंने नर्मदा नदीके कांठे बेलु नाम गाममें सात यज्ञ करे, तिनमें लाखों रुपइए खरच करे है. इसीतरें काशी प्रमुख बहुत जगें यज्ञ होते है. सिवाय गुजरात, मारवाड, दिल्ली, पंजाब के और देशोंमें यज्ञ करणेमें कोई रोकटोक नहीं है. जिस ब्राह्मणके कुलमें तीन पुरुष तक यज्ञ न हुआ होवे तिसकों दुर्ब्राह्मण कहते है. और तिसको इस बाबत प्रायश्चित करणा पडता है. यह प्रथम पाराशरका कथन नहीं माना. १

दूसरा गवालंभ. यज्ञादिकमें गायका वध करणा यह रश्म मनु और याज्ञवल्क्य तक जारीथी. पुराण और नाटक ग्रंथोमेंभी यह विधि लिखी है तिस वास्ते गौहिंसाके निषेधकों बहुत काल नहीं हुआ. अनुमानसें ऐसा मालुम होता है तथा तैतीर्य ब्राह्मणमें और शतपथ ब्राह्मणमें नीचे लिखी श्रुति है.

मधुपर्ककीउत्पत्ति.

“ गव्यान्यशूनुत्तमेहभालभते ” ॥ इन ग्रंथोके पृष्ट । १६ । ३० । वेदाज्ञासें मधुपर्क उत्पन्न हुआ. राजा

घरमें आवे, वर घरमें आवे तो उत्तमही दिन गिना जाता है, तिस अवसरमें गोवध करना लिखा है. यहभी पाराशरने बंद किया तोभी गोदान उत्सर्ग विधि चलती है. आश्वलायन सूत्रमें तथा और अन्यसूत्रोंमें जब मधुपर्ककी विधि बांचीए तो गवालंभ अर्थात् गौवधके सिवाय और कोई विधि नहीं मालुम होती है. यह गौवधभी जैन, बौद्धमतवालोंकी तकरारसें बंद हुआ मालुम होता है. २

तीसरा कलिमें संन्यासी होना बंद करा, सोभी नहीं बंद हुआ. यह पाराशरजीका नियमतो विशेष करके शंकरस्वामीने तोडा, क्योंकि शंकरस्वामीने चारोंही वरणको संन्यासी करा सो गोसांई आदिक है. और बहुत संन्यासी वाममार्गी है, मांस मदिरा खातेपीते है, बहुत पाखंड करते है, इस वास्ते बंधी करी होगी. ३

चौथा पलपैतृकं. अर्थात् श्राद्धमें पितृनिमित्त मांसका खाना; इस्से यह मालुम होता है कि आगे वैदिकमतवाले बहुत हिंसक थे, और शिकार मारके खातेथे. जिन जानवरोंको मारके लातेथे, उनका मांस होमके बाकी खा जाते थे. यह रस्म वैदिक धर्मकी प्रबलतामें थी. जब स्मृतियों बनाई गई तब पूर्वोक्त रस्म बंद कर दीनी, और विधि बांधी. विधिसें लोग मांस खाने लगे. ४

पुराणमेंभी मांस खानेकी छुट है.

जब पुराण बने तिनमेंभी विधिसें मांस खानेकी छुट है. वैष्णवमतवाले ऐसे पुराणोंको तामसी पुराण मानते है. श्राद्ध विषयमें निर्णयसिंधुमें ऐसा लिखा है. "यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वै वृषलीपतिः। श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्र कृतं यच्च निरामिषं" अर्थ–"जहां मामांकी बेटी विवाही होवे तथा शुद्रकी कन्या विवाही होवे ऐसे आदमीके घरमें ब्राह्मणनें श्राद्ध

जीमनेंकों न जानां. और जिस श्राद्धमें मांस नहीं होवे तहां किसी ब्राह्मणको श्राद्धमें जीमनेंको न जाना चाहिये." अब बुद्धिमानोंकों बिचारना चाहिये, ऐसे शास्त्रोंके बनाने और माननेंवाले अपनें आपकों आस्तिक और जैनीयोंकों नास्तिक कहते है.

वेद बनायेका भिन्न भिन्न समय.

तथा वेद मूलमें एक बखतमें बने हुए मालुम नहीं होते है, किंतु जुदे जुदे कालमें जुदे जुदे ऋषियोके जुदे जुदे बनाये हुए मंत्र है. वे सर्व एक संहितारुप देखनेमें आते है. और वेद यह जो शब्द है सो अन्यग्रंथमेंभी लगानेकी रीतिहै. जैसे गांधर्व वेद, धनुर्वेद, आयुर्वेद; भारतकोंभी पांचमा वेद कहते है.

वेद शब्द लगायकर अन्य नामभी बने है.

वेदके अक्षरोंकों मंत्र कहते है, तिनमें परमेश्वरकी तथा और देवोंकी प्रार्थना है और कितनेक मंत्र विधिके है, जिनमें यजन याजनकी विधि है. जडमें जे ऋषि थे ते क्षत्रियोंके घरमें यज्ञादिक कर्म करतेथे तिस वास्ते ये ऋषि धर्माध्यक्ष बन गये, तब तिन ऋषियोंने लोगोंके मनमे यह बात दृढा देई कि वेदोंके सिवाय कुछभी न होगा, और सर्व देवते हमारे वेदमंत्रोके तावे है,

देवविधिमें देवताका आवाहन और विसर्जन.

और वेदमंत्रसें जिस देवताका आवाहन करीये वो हाजर होता है, और जिसका विसर्जन करीये वो चला जाता है, और जो कुछ हम उनकों कहदेते है सो करदेते है, तिनके सिद्ध करने वास्ते हजारो ग्रंथ लिख गए है. सूर्य उगता है सो ब्राह्मणोंकी संध्याके प्रभावसें उगता है. यह कथन भारतमें लिखा है, जैसें जैसें लोगोंके दिल यह बात बैठती गई तैसें तैसें धर्माध्यक्ष ऋषियोंका अमल जबरदस्त होता गया. भागवतमें लिखा है "श्रीकृष्णजी कहते है, अग्नि, सूर्य, सोमादिकके कोपसें मुजको इतना डर नहीं, जितना मुजको ब्राह्मणोंके कोपका डर है." सो श्लोक यह है.

कृष्णजी ब्राह्मणोंसें डरता है.

"नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्वात्, शंके नृशं ब्रह्मकुलावमानात्" तब ऐसा लिख दिया, और जगवाननी ब्राह्मणोंसें अति मरते थे तो फेर ब्राह्मण अपने मनकी मानी क्यों न करे ? यही तो स्वछंदपणेंने हिंडुयोंका सच्चा धर्म मबोया. अबी तक परमेश्वरजी निर्नय नहीं हुआ. " आंधे चूहे (उंदर) थोथे धान जैसे गुरु तैसे यजमान " यह कहना सत्य है. हमकों बमा सोच है कि कबी हिंडुजी सूते जागेंगे, बालावस्थाकों छोमेंगे, पक्षपातके अंध कूपसें निकलेंगे, निकलेंगे सही परंतु यह खबर नहीं, कूपसें निकलके पाखंडीयोंके जालमें फसेंगे, सत् मार्गमें चलेंगे.

ऋषि शब्दका अर्थ.

ऋषि शब्दका अर्थ गाने और फिरनेवालेका होता है. परंतु रुढिसें ग्रथंकर्तायोंकों नाम ऋषि कहते है. अतीत कालमें धर्माध्यक्ष बहुत पाखंमी और कपटी थे, राजायोंकोंजी अपना गुलाम बना रखतेथे, और क्रिश्चियन् अर्थात् ईसाइ धर्मका धर्माध्यक्ष पोप करके प्रसिद्ध है, जिसकी फांसीसें यूरोप खंमके लोग अबतक नहीं छूटे है. यूरोपीयन लोगोंकों पोप पापकी माफी देता है, स्वर्ग चमनेका पत्ता देता है, और नरक जानेकाजी पत्ता देता है, तिस वास्ते बहुत जोले लोग मरती वखत इन पोपोंसें आशीर्वाद लेनें वास्ते हजारों रुपैये देते है.

पोपलोगका वर्त्तन.

सर्व लोगोंके पासतो पोप पहुंच नहीं सकता है. इसवास्ते कितनेक अपनी तर्फसें मुख्त्यार बनाके देशमें फिरने वास्ते जेजता है, जेकर पोप किसीकों न्यात बाहिर काढेतो फिर किसीकी ताकात नहीं जो उसका संग्रह कर शके. चाहो लाख फौजका स्वामि बादशाह क्यों न होवे. पोपके आगे हाथ जोमेंही छूटना होवे है. जैसा धर्माध्यक्षका जुलम अन्य देशोंमें है तैसा यहांजी है. जब यूरोपीयन बडी अकलवालोंकों पोप

नहीं भोगते है तो हिंदुस्तानी पशुयोंको ब्राह्मण कैसें भोग देवे ? इस अन्यायका मूल कारण अज्ञान है.

वेदविद्या गुप्त रखते है. क्योंकि जब धर्माध्यक्षोंकां अधिकबल होजाताहै तब वे ऐसा बंदोबस्त करते है कि कोई अन्य जन विद्या पढे नहीं, जेकर पढेतो उसकों रहस्य बताते नहीं. मनमें यह समजते है कि अपढ रहेंगेतो हमकों फाइदा है, नहींतो हमारे छिद्र काढेंगे. ऐसें जानके सर्व विद्या गुप्त रखनेकी तजवीज करते है. इसी तजवीजनें हिंदुस्तानीयोंका स्वतंत्रपणा नष्ट करा और सच्चे धर्मकी वासना नहीं लगने दीनी. और नयेनये मतोंके भ्रमजालमें गेरा और अच्छे धर्मवालोंकों नास्तिक कहवाया.

जिन वेदोंका घमंड रखते है तिन वेदोंहीनें महाहिंसक धर्म उत्पन्न करा. तथा वेदमें मदिरा पीनेकाभी मंत्र लिखा है. ऋग्वेदके ऐत्तरेय ब्राह्मणमें क्षत्रीकों राज्याभिषेक करनेंकी विधि आठमीपंचिकाके वीसमें कांडमें लिखी है सो नीचे प्रमाणे मंत्र है.

वेदमें मदिरा पीनेका मंत्र. " इत्यथास्मै सुराकंसं हस्त आदधाति स्वादिष्टया —तां पिबेत् " ८ । २० । अर्थ— राजाके हाथमें मदिरेका लोटा देना और स्वादिष्ट यह मंत्र पढके पीवे. इसीतरें अनेक राजायोंका राज्याभिषेक हुआ है तिनका नाम और तिनके गुरुयोंके नाम वेदमें लिखे है. तिनमें परिक्षितकापुत्र जन्मेजयकों राज्याभिषेक हुआ सो श्रुति नीचे लिखी है । " तुरः कावषेयो जन्मेजयं पारिक्षितमभिषिषेच." ऋग्वेद ब्राह्मण ८ । २१ । इस्सें एसा मालुम होता है जो ऋग्वेद जनमेजय के पीछे बना है.

तथा जो मंत्र नीचे लिखे जाते है तिनसें एसा सिद्ध होता हैकि वेद ईश्वरसे कहे हुए नहीं है ते मंत्र यथा । " अवीक्ष्मनों जंभयं सर्वाश्चयातुधान्यः " । यजुर्वेद रुद्री ॥ अर्थ—" हे रुद्र सर्प औ-

र पिशाच इनका नाश कर " ॥" हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय " । ऋग्वेद । अर्थ–हे सूर्य मेरे हृदयके रोगका और कमला को रोग नाशकर । " उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्यो र्मुक्षीयमामृतात्"। ऋग्वेद । अर्थ–हे त्र्यंबक मींटसें काकमीका फलकी माफक मुजकों मृत्युसें बचाव । "मेधां मे वरुणो ददातु" । यजुर्वेद. अध्याय ३२ मंत्रमें लिखा है " मुजे वरुण देवता बुद्धि देवे " । तथा वेदकी श्रुतियां परस्पर विरुद्धभी है. तिनमेंसें कुछक नीचे लिखी जाती है। गृत्समदऋषिः ऋग्वेद संहिता. अष्टक २ अध्याय ६ वर्ग १४ ऋचा ६–" दिवोदासाय नवतिं च नवेंद्रः । पुरोव्यैरच्छंवरस्य "॥ गृत्समदऋषि ऋग्वेद संहिता, अष्टक २ अध्याय ६ वर्ग १३ । "अध्वर्यवो यः शतं शंबरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः परिक्षेपो " ॥ दैवोदासी ऋषिः ऋग्वेद संहिता अष्टक २ अध्याय १ वर्ग १९ । " भिनत्पुरो नवतिमिंद्रपूरवे दिवोदासाय महिदाशुषेनृतो वज्रेणदाशुषेनृतो अतिथिग्वायेशंबरं गिरेरुग्रो अवाभरत्." अर्थ– इंद्र नामा राजा था. तिसका मित्र दिवोदास नाम करके था, तिसकी तर्फसें शंबर नामा दैत्य था, तिसके साथ इंद्र बहुत वार लड्या, तिस विषयकमें वेदमें कथा बहुत जगें आती है.

श्रुतिओंमें परस्पर विरोध.

किसी जगें वेदमें इंद्र जो है सो पर्जन्याधिपति देव है, ऐसेभी कहाहै. शंबरासुरदैत्यके निनानवे गाम इंद्रने उजाड करे ऐसें एक मंत्रमें कहा है. दुसरे मंत्रमें सो १०० गाम उजाड करेकी कथा है, और तिसरे मंत्रमें नव्वे ९० गाम उजाड करेकी कथा है, इंद्रका पराक्रम नीचे लिखे हुए मंत्रमें बहुत वर्नन करा है. तिसका प्रथम वचन लिखा है. तिसमें ऐसा लिखाहै कि इंद्रको मदिरा बहुत अच्छा लगता है इस वास्ते मदिरेकों अग्निमें गेरदेवो । गृत्समदऋषि ऋग्वेद संहिता अष्टक २ अध्याय ६ वर्ग १३ ॥ " अध्वर्यवो भरतेंद्रायसोममामत्रेभिः सिंचतामद्यमंधः" ॥ तथा इस

इंद्रने त्रिकद्रुक यज्ञमें मदिरा बहुत पिया तिसके मदसें सर्प मार गेरा ऐसें एक मंत्रमें है सो निचे लिखा है.

वेदमें सर्प, विच्छु और कुत्तेके मारने वास्ते लिखा है.

गृत्समदऋषिः अष्टक २ अध्याय २ वर्ग १५ ॥ मंत्र १ " त्रिकद्रुकेष्वपि वत्सुतस्यास्य मदे अहिमिंद्रो जघान " ॥ दुसरी जगें सांप और विछुको पथ्थरोंसें मार गेरनें विषे वेदमें लिखा है; और इस मंत्रसें सांप और विछुका जहर उतारते है ॥ अगस्तिऋषिः अष्टक २ अध्याय १ वर्ग १६ ऋच १५ ॥ " इतयकः कुंभकस्तकंभिदश्मना" अश्विन देवकी प्रार्थना कुत्तेके मारने वास्ते वेदमें लिखी है सो नीचे प्रमाणे. अगस्तिऋषिः ऋग्वेद अष्टक २ अध्याय ४ वर्ग २५ मंत्र २४ " जंभयतमभितोरायतः शुनो हतं मृधो विदधुस्तान्यश्विना " ॥ इत्यादि श्रुतियोंके लेखसें वेद ईश्वरके कहे हुए नहीं. क्योंकि ऐसी अनुचित अप्रमाणिक और बेहूदी बातां ईश्वरके कथनमें कदापि नहीं हो सक्ती है. क्या ईश्वर रुद्र और सूर्य और त्र्यंबक वरुण प्रमुखसें विनति करता है कि मेरा यह काम तुम कर देवो ? तथा

वेदमें पुरुष स्त्री और कन्याका वधकरनेका उपदेश है.

वेदमें पुरुष स्त्री कुमारी कन्याकाभी होम करना लिखा है। तैत्तरीय ब्राह्मणे ३ कांडे ४ प्रपाठके १५ अनुवाकमें " आशायैजामिम् प्रतीक्षायै कुमारीम् प्रमुदे कुमारीपुत्रम् आराध्यै दिधिषूपतिं " ॥ भाष्य–" आशायै जामिं निवृत्तरजस्कां भोगाऽयोग्यां स्त्रियं प्रतीक्षायै कुमारीं अनूढाम् कन्यामालभते प्रमुदे दुहितुः पुत्रं आराध्यै दिधिषूपतिं द्विविवाहं कृतवती स्त्री दिधीषूः तस्याः पतिं " ॥ अर्थ–आशाके वास्ते जिस स्त्रीका ऋतु धर्म जाता रहा होवे, भोग करनेके योग्य नहीं रही होवे तिसका वध करना चाहिये, और प्रतीक्षाके वास्ते कुमारी कन्याका वध करना चाहिये, प्रमुदके वास्ते बेटीके बेटेको वध करना चाहिये, आराध्यके वास्ते जिस स्त्रीने दो वार विवाह

करा होवे तिसके पति अर्थात् खसमका वध करना चाहिये. यज्ञमें ऐसे शास्त्रका उपदेशक और ऐसें यज्ञोंका कराने वाला और करनेवाला जेकर अंग्रेजी राज वर्तमानमें होवेतो कवी सरकार फांसी दीया विना न गेरे. परम कृपालु ईश्वरके मुखसें ऐसा हिंसक शब्द कदिन्नी न निकले. यह महाकालासुरकी ही महिमा है जो ऐसे हिंसक शास्त्र परमेश्वरके बनाये प्रसिद्ध होजावे और मनुष्योंकी बलि देई जावे. राजे राजके और अन्यायके अंधकार कूपमें डुब जावे, किसीकी खबर न लेवे. मुंबई सरकारे बुकनंबर ३ए ज्ञाग २ जिसमें मनुष्यवध और बालहत्या विषयक सरकारमें मुकर्दमा पेश हुआ था, तिसके संबंधवाले कागजपत्र उपे हैं. तिनमें मुंबईके गवरनर साहेब ऑनरेबल एंकनको कर्नल वाकर वडोदराके रेसीमंट साहिबनें ता० १६ मार्च १००० का रिपोर्ट करा है तिसमें कलम २०० है तिसकी ताजीकलममें पत्रे ३६ में कराना ब्राह्मणोकी मनुष्य बलि करनेकी चाल विस्तारसें लिखी है. ऐसी रीत बहुत ठिकाने हिंदुस्तानमें थी तिसके बंद करनेको सरकारनें बहुत प्रयत्न करा है. नागपुर, जबलपुर, गुमसूर परगणेमें खोम लोक है वो मनुष्यबलि करते है. ते ऐसे समजते हैकि ऐसी बलि करा विना वर्षा नहीं होवेगी, खेती नहीं पकेगी. आदमीको बांधके तिसके गिरदनबाह हजारों आदमी शस्त्र लेके तिसके अंगके टुकडे काढ लेते है. इसको मेरियां पूजा कहते है.

सतीहोनेका चाल ब्राह्मणोसें उत्पन्न भया है.

सती होनान्नी ब्राह्मणोंनेही चलाया है. तिसका दाखला—१०१६ सें १०२४ तक तिन नव वर्षोमें ६६३२ विधवा बल मरी. बमी बमी इमारते बनाते हुए कितनेही मनुष्य ब्राह्मणोंके बताने मुजब जीते गाड देतथे. वास्तुशास्त्रमेंन्नी बलि करनी लिखी है. केई पर्वतोंसें गिरके मरतेथे, हिमालयसें गलतेथे, काशी करवत लेतेथे, जलमें डूबके मर-

तेथे इत्यादि सर्व हिंसक काम ब्राह्मणोंके चलाए हुए है. भोले जीवांको बेहकाके, उनका घरबार सर्व पुण्य कराके, उनको मरणकी तरकीब बता देतेथे.

देवताकुं बलि दान करनेका प्रचार.

तथा दशहरेमें (दशरा), नवरात्रोंमें भैसें, बकरे मारे जाते है, अनेक देवी देवता भैरव आगे अनेक भैसें, बकरे मारे जाते है. तथा वामीयोंके मतमें कालीपुराणके रुधिराध्यायमें अनेक जीवांका मस्तक, मांस, रुधिर, प्रमुखकी बलि लिखी है तथा पुराण ज्योतिःशास्त्रमेंभी हिंसा लिखी है. इन सर्व हिंसाके चलाने वाले और हिंसक शास्त्रोंके बनाने वाले ब्राह्मणही है. और वामीयोंकेभी शास्त्र ब्राह्मण, संन्यासी, परमहंस नाथोंके रचे हुए है. देवीभागवत वामीयोंके मतका है, तिसकी टीका नीलकंठशास्त्री काशीके रहनेवालेनें बनाइ है, तिसमें देवीकी उपासनाकी बमी प्रशंसा लिखी है. इस वास्ते सर्व हिंसक शास्त्र और मंत्र ब्राह्मणोंनेंही रचे है.

वेदोंमेंभी मंत्रहै

तंत्र और पुराण प्रमुखोंमें जैसें मंत्र है तैसें वेदोंमेंभी है, तिनका नमूना थोमासा नीचे लिखतेहै. । ऋग्वेदका ऐत्तरेय ब्राह्मण अष्टम पंचिका खंम २८ "अथातो ब्राह्मणः परिमरो यो हवै ब्रह्मणः परिमरं वेद पर्येनं द्विषंतो भ्रातृव्याः परिसपत्ना म्रियंते—यद्यस्याद्मममूर्धा द्विषन् भवति क्षिप्रं हैवेनं स्तृणुतेस्तृणुते इत्यैत्तरेय ब्राह्मणेऽष्ठमपंचिकायाः पंचमोध्यायः । खंम १० पंचिका" ८ । "जयति हतां सेनां यद्युवा एनमुपधावेत् संग्रामं ॥ तैत्तरीयि आरण्यक ४ प्रपाठक ३७ अनुवाके ।

वेदमें मारणका प्रयोग है.

तत्सत्यं यदमुं यमस्य जंभयोः आदधामि तथाहि तत् खण्फण्मसि ३८ अनुवाके ॥ भत्तुदशि मिजावरी तव्यजे तव्यभत्तुद गिरीङ्गनुप्रवेशाय ॥ मरीचीरुपसन्तु

दयावदितः पुरस्तादुदयाति सूर्यः ॥ तावदितोऽमुन्नाशय ॥ योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः"॥ अर्थ । ब्रह्मण परिमर इस अनुष्ठानसें राजाके सर्व शत्रु मरण पाते है. इनके अंग नपर पाषाणका बखतर होवे तोन्नी सो रहनेका नहीं. इस मंत्रको जपेतो शत्रु सैन्य न्नागे और फत्ते मिले. महावीर नामक यज्ञ करके शत्रुके नाशनार्थ मंत्र पढना कि मेरा शत्रु यमकी दाढामें जाय. शमि खेजडीका झाम्ड शत्रुके बिछोने तले गाडना तिस्सें शत्रु तुरत मर जाता है. इसी तरे ऋग्वेदके आश्वलायन सूत्रमें श्येन अर्थात् बाजपक्षीका होम विधान अर्थात् शत्रुके मारनेवास्ते अनुष्ठान है तिनकों अन्निचार कर्म कहते है. सो सूत्र यह है. श्रौत सूत्र, आश्वलायन अध्याय ए कांड ७ । "श्येनाजिरान्न्यामन्निचरन् १ विघनेनान्निचरन्" ॥३२॥ ऐसे हिंसक शास्त्रोंकों परमेश्वर कथन करे कहने इस्से अधिक अज्ञानी दूसरा कौन है ? इनही हिंसक शास्त्रोंनें सर्व जगतमें हिंसाकी प्रवृत्ति करी है. जब कोई इनशास्त्रोंकों बुरा कहता है नसीको ब्राह्मण नास्तिक कहते है. कितनेक कहते है, ईश्वर मनुष्योंकों कहता तुम इस रीतिमें मेरी प्रार्थना करो. यह कहना जूठ है. क्योंकि वेदोंमें किसी जगेंन्नी नहीं लिखा है कि ईश्वर मनुष्योंकों कहता है कि तुम ऐसें प्रार्थना करो. और न किसी प्राचीन न्नाष्यकारने ऐसा अर्थ लिखा है. और जो दयानंदसरस्वतीने नवीन न्नाष्य बनाया है नसमें जो ऐसा अर्थ लिखा है कि ईश्वर मनुष्योकों कहता है कि तुम ऐसें कहो यह कहना दयानंदसरस्वतीका अप्रमाणिक है, स्वकपोलकल्पित होनेसें. क्योंकि दयानंदसरस्वती हमारे समयमें विद्यमान है*

दयानंदका पाखंड.

और नसके बनाए न्नाष्यकों काशी वगैरेके पंमित प्रमाणिक नहीं कहते है. बलिके दयानंदके लेखकों

* यह ग्रंथ लिखनेके समयमें दयानंदसरस्वती विद्यमान थे.

अर्थाभास कहते है. हां जो कितनेक लोग अंग्रेजी फारसी कीताब पढे है वे तो प्रमाणिक मानते है क्योंकी उनके मनमानी बात जो दयानंद कहते है तब वे बमे आनंदित हो जाते है. जबसें वे मदेशामें और मिशनस्कूलोंमें विद्या पढने लगतें है तबहीसें शनैः शनैः हिंदु धर्मसे घृणा करने लग जाते है. क्योंकि जब हिंदुयोंके देवतायोंका हाल सुनते है और उनकी मूर्तियोंकों देखते है तब मनमें बहुत लज्जायमान होते है, कितनेक तो इसाइ, मुसलमानादिकोंके मतकों मानने लग जाते है. और कितनेक लामजब अर्थात् किसीकोंभी सच्चा नही मानते है. और कितनेक अपनी चतुराईके घमंमसें वेदादि शास्त्रोंको छाटने लग जाते है, यथा संहिता ईश्वरोक्त है इसवास्ते प्रमाणिक है. ब्राह्मण और उपनिषद् जीवोक्त है इसवास्ते अप्रमाणिक है. कोइ वेदोंके पुराणे भाष्यादिकोंकों जूठे जानकर स्वकपोलकल्पित भाष्यादि बनाते है. कितनेक कहते है वेदादि सर्व शास्त्रोंमें जो कहना हमारे मनको अछा लगेगा सो मान लेवेंगे, शेष छोम देवेंगे. तब तो वेदादि शास्त्र क्या हुये. कूंजमोंकी तरकारी हुई, जो अछी लगी सो खरीद करली और जो मनमें माना सो अर्थ बना लिया. यह शास्त्र वेदादि परमेश्वरके बनाए क्यों कर माने जा सकते है? जिनके कितनेक हिस्से जूठे और कितनेक हिस्से सचे और मनकल्पित अर्थ सचे. क्या मनकल्पित अर्थ बनाने वालोंके किसी वखतभी न्याय बुद्धि नहीं आती जो अपनी कल्पनासें जूठे शास्त्रोंकों सच्चा करके दिखाते है? इसबातमें उनोने अपने वास्ते क्या कल्याण समजा है? ऐसेतो हरेक जूठे मतवाले अपने मतके जूठे शास्त्रोंकों मनकल्पित अर्थ बनाके सच्चे कर सक्ते है. हे परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ ! ऐसी मिथ्याबुद्धिवालोंका हमकोतो स्वप्नेमेंभी दर्शन न होवे. मन कल्पित अर्थोंमें जो शतपथादि ब्राह्मण और निरुक्त प्रमुखके प्रमाण दीये है सो-

जी जूठ है, क्योंकि जब शतपथादि ईश्वरोक्तही नहीं है तो तिन-का प्रमाण जूठा है. और शतपथ शब्दका जे कर सूधा अक्षरार्थ करीएतो सौ रस्ते ऐसा होता है. जेकर इस अर्थानुसार समजीए तो किसी धूर्तने अपने शास्त्रकी रक्षा वास्ते सौ रस्ते पर अर्थ हो सके ऐसा ग्रंथ रचा है.

शुक्ल यजुर्वेद कोने बनाया है

शतपथ शुक्ल यजुर्वेदका चौदह अध्यायरुप ब्राह्मण है और शुक्ल यजुर्वेद याज्ञवल्क्यने बनाया है. जब वेदही ईश्वरोक्त नही तो शतपथ ब्राह्मणका प्रमाण क्योंकर मान्य होवे तथा शतपथ ब्राह्मणमें ऐसा नही लिखा है कि ऋग्वेदादि-ककी अमुक अमुक श्रुतियोमें जो अग्नि, वायु, इंद्रादि शब्द है तिनका वाच्यार्थ ईश्वर है. इन शब्दांका पूर्व जाष्यकारोंने तो वा-च्यार्थ जौतिक अग्नि वाय्वादिक कहे है ऐसी जूठी कल्पनाके अर्थ कुछ आजही नवे नही कल्पन करने लगे है. किंतु अतीतकालमें जब मीमांसाके वार्तिककार जट्टपाद कुमारिलको वादियोंने सताया कि तेरे देवता बडे कुकर्मी है, उसनें यह जवाब दिया कि लोगोंने जो पोथीयोंमें लिख लिया है कि प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा अपनी बेटीसें फसा अर्थात् विषय जोग करता जया, खराब हूआ, और इंद्रनें अहल्याके साथ कुकर्म करा; यह कहना बिलकुल जूठ है, क्योंकि प्रजापति नाम सूर्यका है. और उसकी बेटी उषा है. वेदोंमें जहां कहा है कि प्रजापति अपनी बेटीसें मैथुन सेवन करता जया तहां जावार्थ ऐसा है कि सूर्य उषाके पीछे चलता है. इसी-तरें इंद्रनाम सूर्यका है, और अहल्या रात्रिका नाम है. जहां कही वेदोंमें कहा है कि इंद्रने अहल्याकों खराब करा, मतलब इतनाही है कि सूर्यनें रात्रिकों खराब करा, सूर्यके उगनेंसें रात्रिकी खराबी होती है. तथाह कुमारिलः "प्रजापतिस्तावत्प्रजापालनाधिकारात् आदित्य एवोच्यते स चारुणोदयवेलायामुषसमुद्यन्नभ्येति सा तदाग

मनादेवोपजायतइति तदुहितृत्वेन व्यपदिश्यते तस्यां चारुणकिरणा ख्यबीजनिक्षेपात् स्त्रीपुरुषसंयोगवदुपचारः एवं समस्ततेजाः परमेश्वरत्वनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितेवाहर्निलीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मकजरणहेतुत्वात् जीर्यत्यस्मादनेन वोदितेन वेत्यहल्याजार इत्युच्यते। न परस्त्रीव्यभिचारात्" ॥

अर्थ—प्रजापालनेका अधिकारसें प्रजापतिका अर्थ सूर्य होता है. ते सूर्य अरुणना उदयमें उषाकी पीछे चलता है. उषा सूर्यका आगमनसें होतीहै ते वास्ते उसकी बेटी रुपे व्यपदेश होताहै. तीसमें अरुणका किरणरुप बीजका निक्षेप होनेसें स्त्रीपुरुषका संयोगका उपचार होते है. समस्त तेजवाला परमेश्वरत्व निमित्तरुप इंद्र शब्द सूर्यमें लीन होनेसें रात्रिका अर्थ अहल्या होता है. सूर्यका उदय होनेसें रात्रिरुप अहल्याका क्षय हेतु है. तेम जीर्ण होनेसें जार शब्दका अर्थ है. तिन वास्ते अहल्याजार ऐसा अर्थ होते है. इहां परस्त्रीका व्यभिचार न लेना.

दयानंदसरस्वतीका कपोलकल्पित अर्थ.

इसी तरेंका अर्थ दयानंदसरस्वतीजीनेभी वेदभाष्यभूमिकामें करा है, सो दो तीन पत्रे लिख मारे है. उनमें लिखा है कि यह रुपकालंकार है. ऐसे ऐसे भ्रांतिजनक रुपकालंकार कहे विना यहां क्या काम अटक रहाथा ? और ब्रह्मवैवर्त्त भागवतके बनानेवालोंको रुपकालंकार नही सूझा ? कुमारिलसेंभी दयानंदसरस्वतीने विशेषार्थ करा है, लिखा हैकि गौतम नाम चंद्रमाका है, और कहीं सूर्य, प्रजापति, वरुण, अग्नि, पवनादि शब्दका वाच्यार्थ परमेश्वर और कहीं सूर्य, कहीं और कुछ, इस स्वकपोलकल्पनाके यह फल है कि जूठी वात को सच्ची करनी, और वादीयोंका तर्कतापसें बच जाना. इसी वास्ते तो दयानंदसरस्वतीजीने सर्व पुस्तक छोडके संहिता प्रमाणिक मानी है. क्योंकि संहितामें अन्य पुस्तकोंकी तरे बिहुंदी

बातां बहुत नही है. जो है वी तो तिनके अर्थ बदल माले है. क्या ऐसे कल्पनाकों विद्वान् सच्ची मान लेगे, और इस कल्पनासें वेद सच्चे हो जावेगे ? इस कल्पनासें तो वेदार्थ संशयका कारण हो गया. संशय यह हुआ कि पूर्वले मुनि ऋषि, रावण, नव्वट, महीधरादि मूर्ख अज्ञानी थे कि जिनकों सच्चा वेदार्थ नही पाया वा दयानंदसरस्वती मूर्ख अज्ञानी है जिसने पूर्व विद्वानोंके अर्थकों गेमके नवीन स्वकपोलकल्पित अर्थाज्ञास रचा है ?

दयानंदसरस्वतीकुं उपनीषद् प्रमुखमेंभी शंका है.

दयानंदजीका यहज्ञी कहना मिथ्या है कि हम इशावास्य नपनीषद् और संहिताके सिवाय और पुस्तकोंकों नही मानते है क्योंकि शतपथ ऐत्तरेय प्रमुख ब्राह्मण, निरुक्त, नपनीषद् आरण्यक प्रमुखका प्रमाण जो जगे जगें अपनी कल्पनाके सिद्ध करने वास्ते दीए है वे नपहास्यके कारण है, क्योंकि जे कर तो अन्यमत वालोंके लीये प्रमाण दीये है तो अन्यमत वालेतो प्रथम वेदोहींको सच्चे शास्त्र ईश्वरप्रणीत नही मानते है, तो प्रमाणोंकों सच्चे क्योंकर मानेगे ? जेकर प्राचीन वेदमतवालोंके वास्ते प्रमाण दीये है तबतो नमकोज्ञी अकिंचित्कर है, वे तो ब्राह्मणज्ञाग नपनीषद् प्राचीन ज्ञाष्यादि पुराणादिकोंकों प्रमाणिक मानते है, वे दयानंदसरस्वतीके लेखकों क्यों कर सत्य मानेगे ? जेकर अपने शिष्योंके वास्ते प्रमाण दीए है सो तो पीसेका पीसणा है, वैतो आगेही स्वामीजीके लेखकों विधाताके लेख समान समजते है. प्रमाणतो प्रेक्षावानोके वास्ते दीये जाते है. प्रेक्षावानतो दयानंदसरस्वतीके लेखसें जान लेवेंगे कि स्वामीजीके दीए प्रमाण गलरुप है. क्योंकि राजा शिवप्रसादके गपे निवेदनपत्रमें तो दयानंदजी लिखते है कि में संहितायोंको वेद मानता हुं. एक इशावास्यकों गेमके अन्य नपनीषदोंकों नहीं मानता, किंतु अन्य सब नपनीषद् ब्राह्मण ग्रंथोमें है, वे ईश्व-

शोक नहीं है. ब्राह्मण पुस्तक वेद नही. जब दयानंदसरस्वतीजी ऐसें मानते है तो फेर ब्राह्मण शतपथादिकोंका क्यों प्रमाण देते है. और अपनी बनाई वेद ज्ञाष्यज्ञूमिकाके ३४१ पृष्टमें लिखते है कि । इस वेदज्ञाष्यमें शब्द और उनके अर्थद्वारा कर्मकांम्का वर्णन करेंगे परंतु लोगोंके कर्मकांम्में लगाये हूए वेदमंत्रोमेंसें जहां जहां जो जो कर्म अग्निहोत्रसें लेके अश्वमेधके अंत पर्यन्त करने चाहिये, उनका वर्णन यहां नही किया जायगा, क्योंकि उनके अनुष्ठानका यथार्थ विनियोग ऐत्तरेय शतपथादि ब्राह्मण पूर्वमीमांसा श्रौत और गृह्यसूत्रादिकोंमें कहा हूआ है, उसीको फिर कहनेसें पीसेकों पीसनेके समतुल्य अल्पज्ञ पुरुषोंके लेखके समान दोष इस ज्ञाष्यमेंज्ञी आसकता है. इस लिखनेंसेंतो ऐसा मालुम होता है कि स्वामिजी ब्राह्मण और श्रौत गृह्यसूत्र सूत्रांके करे विज्ञागज्ञी मानते है. श्रौत गृह्यसूत्रांकाज्ञी स्वरुप आगे चलकर लिखेंगे. इस वास्ते दयानंदसरस्वतीजीका कहना एक सरीखा नही. इसका यही तात्पर्य हैकि ब्राह्मण पुराणादिकोंमें अनुचित्त लेख देखके प्रतिवादियोंके ज्ञयसें दयानंदजीने अन्य पुस्तक सर्वे वेद संहिताके सिवाय मानने गेम्ह दीये है, और पूर्वलें अर्थोंसें लज्जायमन होकर स्वकपोलकल्पित नवीन अर्थ बनाए है सो जिसकों अछे लगेंगे सो मानेगा.

दयानंदसरस्वतीका जैनमत विषे जूठ विचार.

और हमतो दयानंदसरस्वतीके बनाए अर्थोको कदापि सत्य नही मानेंगे, क्योंकि दयानंदसरस्वतीने अपनें बनाये सत्यार्थ प्रकाशके बारवें समुल्लासमें जैनमतकी बावत बहुत जूठी बात लिखी है. ऐसाही उनका बनाया वेदज्ञाष्य होवेगा. दयानंदसरस्वतीने जो मत निकाला है सो इसाइयांके चाल चलन और मतके साथ बहुत मिलता है. परंतु चार वेद ईश्वरके कहे हूए है, और अग्नि, सूर्य, पवनरुप ऋषियों-

कों प्रेरके ईश्वरने वेदमंत्र कहा है और मुक्ति हुआ पीछे फेर जगतमें आकर उत्पन्न होता है.

वेदमें यज्ञका प्रयोजन. और मुक्तिवाला जहां चाहता है वहां उडके चला जाता है, और ईश्वर सर्वव्यापी है, जीव और परमाणु अनादि है, घी सुगंधीके होमनेसें वर्षा होतीहै, हवा सुधरती है, मुक्ति वा स्वर्ग ऐसी कोई स्थान नहीं, इत्यादि वातें तो इसाइ मतसें नहीं मिलती है. शेष वातें प्रायः तुछयही है. बडे आश्चर्यकी बाततो यह है, प्राचीन ब्राह्मणोंके मतकों छोडके अन्यमतवालोंके शरणागत होना और जो कुछ अंग्रेजोंने बुद्धिके बलसें तार, रेल, धूयेंके जहाज आदि कला निकाली है, उनही कलाकों मूर्खो आगे कहना कि हमारे वेदोमेंभी इन कलाका कथन है.

सूर्य और पृथ्वी विषे दयानंदका विचार. दयानंदसरस्वती इस यजुर्वेदके मंत्रसें सूर्य स्थिर और पृथ्वी भ्रमण करती सिद्ध करता है. "आयंगौः पृश्नीरक्रमीदसदन्मातरं पुरःपितरं च प्रयत्स्व॥" यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र ६ तथा इस मंत्रसे तार (टेलीग्राफ) की विद्या कहता है. "युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारंदुवस्यथः शर्यैरभिद्युं पृतनासुदुष्टरं चर्कृत्यमिंद्रमिवचर्षणीसहम्॥" ऋग्वेद अष्टक १ अध्याय ८ वर्ग २१ मंत्र १० जेकर तो पूर्व भाष्यकारोंने इनमंत्रोका इसीतरें अर्थ करा होवेगा तव तो दयानंदका कहना ठीक है. नहीं तो स्वकपोलकल्पनासें क्या होता है ?

वेद विषे पंडित मोक्षमूलरका अभिप्राय. तथा दयानंदसरस्वतीजी जो वेदोंका घमंड करता है कि वेद ईश्वरके रचें हूए है, अति उत्तम पुस्तक है, तिनकी परीक्षा करने वाला विचक्षण पंडित मोक्षमूलर अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथमें लिखता है कि वेदोंका छंदोभाग ऐसा है कि जैसें अज्ञानीके मुखसें अकस्मात् बचन निकला

होवे ऐसा कहना बुद्धिमान मध्यस्थोंका जूठ नहीं हो सकता है, क्योंकि मोक्षमूलरनें बौद्धमतकी स्तुति सर्व मतोंसें अधिक लिखी है, इस वास्ते उनकों किसी मतका पक्षपात नही था, हकीकतमें वेदोके मंत्र असंबद्ध और पुनरुक्त अनर्थक हिंसकतो हमकोंभी मालुम होते हैं क्योंकि वेद एक जनके बनाये हूये नहीं. व्यास-जीनें इधर उधर ऋषियोंसें श्रुतियां लेकर अपनी मति अनुसार बनाये है. इनकी उत्पत्ति आगे चलकर लिखेंगे. वेदमें कितनेक मंत्रोंके ऋषि क्षत्रिय है, कितनेक शूद्रभी थे, कक्षिवत्. और वि-श्वामित्र ये क्षत्रि थे और कवष, एलुष ये शूद्र दासीपुत्र थे, इन-की कथा ऐत्तरेय ब्राह्मणमें है. तथा कितनेक प्राचीन आचार नर-मेध १ गोमेध २ अश्वमेध ३ अनुस्तरणी ४ नियोग ५ शूलगव ६ देवरके साथ विवाह ७ द्वादश पुत्र ८ पलपैतृक ९ महाव्रत १० म-धुपर्क ११ इत्यादि जैन वैष्णवमतकी प्रबलतासें बंदभी हो गये है, तोभी इन अनुष्ठानोंके मंत्र ब्राह्मण लोग पुण्य जानके पठन पाठन स्वाध्याय करते है. और यज्ञमें पशुकों बहुत क्रूरपणेसें मारके तिसके मांसका होम करके भक्षण करते है. यह बात बहुत लोगोंकों अछी नही लगतीहै के इसी तरें गोमूत्र, गौका गोवर, दूध, घी, दहीं एकठे करके देहशुद्धिके वास्ते पीते है परंतु यहबात जूठी है. लोगों-को इसपर श्रद्धा नही आती है.

वेदका वाममार्ग. इसीतरें प्रछन्नपणे काशी आदि शहेरोमें ब्राह्मण प्रमुख बहुत लोग वामी बन रहे है. अनेक जीवां-की हिंसा करते है. मांस खाते है, मदिरा पीते है. परंतु वामी-योंके शास्त्रमें गौकी बलि नही लिखी. गोमांसभक्षणभी नहीं लि-खा. इस वास्ते वामीयोंका मत गोवधनिषेधके पीछे चला है. वाम मार्गी जो कुकर्म नहीं करता सो करते है, मांस मदिरा, परस्त्री, माता, बहीन, बेटीमें, भोग मैथुन सेवके मोक्ष मानते है.

देवीरहस्यमें लिखा है ज्ञंगिन, चमारी, ढेढनी, कसायन, कलालनी, धोबन, नायन, साहुकारकी स्त्री, इन आठोंको कुलयोगिनी कहते है. इनकी योनिकुं पूजा करते है. इनकी योनिको चूंबते है, योनिको जिव्हा लगाके मंत्र पढते है, इनसें ज्ञोग करते है, इन योनिके क्षालनजलको तीर्थोदक समजते है, तथा रुद्रयामलमें लिखा है. । वेश्याकों प्रयाग तीर्थ समान समजणा, और धोबनकों पुष्कर तीर्थ समान समजणा, और चमारी काशी तीर्थ समान जाननी, और रजस्वला अर्थात् ऋतुधर्मवाली स्त्रीकों सर्व तीर्थ समान समजनी; अर्थात् इनसें ज्ञोगकरनेंसें तीर्थ स्नान जैसा फल है इत्यादि विशेष वाममार्गका स्वरुप देखना होवेतो अहमदावादके गपाको ढपा आगम प्रकाश ग्रंथ देख लेना. इस वाममार्गके सर्व ग्रंथ ब्राह्मण और सन्यासी, परमहंस, परिव्राजक, और नाथोंके बनाए हुए है. इनकी ब्राह्मण निंदा नहीं करते है. बलकि हजारों ब्राह्मण इस मतकों मानते है.

इस प्रस्तावना के लिखनेका तो यह प्रयोजन है कि नास्तिक कौन है और आस्तिक कौन है. तथा जो कहते है जो वेदांको न माने वे नास्तिक है तो हम ज्ञव्य जीवांके जानने वास्ते वेदोंका हाल लिखते है, क्योंकि बहुत लोक नहीं जानते है कि वेदोंमें क्या लिखा है और जैनी वेदोंकों किस कारणसें नही मानते है. सो सर्व इस ग्रंथके बांचनेसें मालुम हो जावेगा.

इति तपगच्छीय श्रीमन्मणिविजयगणितच्छिष्यमुनि बुद्धिविजयशिष्यमुनिआत्माराम (आनंदविजय) विरचिते अज्ञानतिमिरभास्करे प्रथमखंडस्य प्रवेशिका संपूर्णा.

॥ श्री ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

अज्ञानतिमिरभास्कर.

प्रथम खंड.

इस प्रथम खंडकी प्रवेशिकामें इस प्रथम खंडमें प्रवेश करनेकें वास्ते जो जो विषयकी आवश्यकता थी सो सो विषय लिख दिया है. अब वेदमें क्या लिखा है आदि सर्व हकीकत उक्त वेदांकी श्रुतियोंका प्रमाण सहित लिखा जायगा.

डाक्तर होग साहेबने ऐतरेय ब्राह्मण शुद्धि करके छाप्या है तिसमें अग्निका स्थापन, ऋत्विजका वर्णन सो सर्व इस तरें जानना.

अग्निका नाम.

१ आहवनीय	२ गार्हपत्य	३ दक्षिणाग्नि
४ शामित्राग्नि		

पुरोहितभेद.

१ अध्वर्यु	२ प्रतिप्रस्थाता	३ अग्नीध्र
४ उन्नेता	५ होता	६ मैत्रावरुण
७ ब्राह्मणाछंसी	८ नेष्टा	९ पोता
१० अछावाक	११ उद्गाता	१२ प्रस्तोता
१३ प्रतिहर्ता	१४ [illegible]ण्य	१५ ग्रावस्तोता
१६ ब्रह्मा	१७ सदस्य	१८ शमिता
१९ सोमक्रयी		

पात्रे व स्थाने.

१ इध्मा	२ बर्हि	३ धृष्णी
४ स्रुचा	५ चमस	६ ग्रावण
७ स्वरु	८ उपवर	९ द्रोणकलश
१० वायव्यकलश	११ ग्रह	१२ इडासुनु
१३ स्वधीति	१४ पुरोमाश	१५ पुतजृता

यज्ञशालाके जेद.

१ यज्ञशाला	२ महावेदी	३ अंतर्वेदी
४ बहिर्वेदी	५ शमित्रशाला	६ चत्वाल
७ संचार	८ प्राग्वंश	९ सद
१० मार्जालिया	११ आग्निध्रीयागार	१२ पत्नीशाला
१३ द्वार	१४ प्रतिग्वर	१५ यूप
१६ हविर्धान	१७ शालामुखी	१८ धर्म

अनुष्ठान विषे नाम.

१ दीक्षणीय ईष्टि	२ प्रायणीय ईष्टि	३ आतिथ्य ईष्टि
४ धर्म	५ अग्निषोमीया	६ पशु
७ सूत्या	८ प्रातः सवन	९ माध्यानसवन
१० तृतीय सवन	११ सोमपान	१२ आश्वीन पशु
१३ ऐंद्राग्न पशु	१४ अवजृत	१५ वरुणेष्टि
१६ वपायाग	१७ पशु उपाकरण	१८ पश्वालंजनं

उक्त प्रमाणसें यज्ञकी क्रिया ओर सामग्री बताई है, दूसरी पंचिकाके आरंजमें ऐसा लिखा हे !

१ यज्ञेन वै देवा ऊर्ध्वाः स्वर्गं लोकमायंस्ते बिभयुरिमन् नो दृष्ट्वा मनुष्याश्च ऋषयश्चानुप्रज्ञास्यंतीति ॥ द्वितीय पंचिका प्रथम खंड ॥

भावार्थः—देव यज्ञ करके स्वर्गमें गये तिस वास्ते मनुष्य और ऋषीयोंने यज्ञ करणा और यूप स्थापन करणा. यूप अर्थात् यज्ञार्थ जो पशु ल्याते है तिसके बांधनेका स्तंभ, पीछे तिस पशुके शमन अर्थात् मारणेकी आज्ञा लिखी है.

२. दैव्याः शमितार आरभध्वमुत मनुष्या इत्याह० अन्वेनं माता मन्यतामनु पितानुभ्राता सगर्भ्योऽनुसखा सयूथ्य इति जनित्रैरेवैनं तत्समनुमतमालभंत उदीचीनां अस्य पदो निधत्तात्सूर्यं चक्षुर्गमयताद्वांत प्राणमन्ववसृज तादंतरीक्षमसुं दिशः श्रोत्रं, पृथिवीं शरीरं० ऐतरेयब्राह्मण २ पंचिका ६ खंड ॥

इसतरे इस वेदमंत्रसें पशुके मातापितासें प्रार्थना करते है यह पशु हमको देव तब पीछे अध्वर्यु अर्थात् मुख्य पुरोहित तिसकी आज्ञासें पशुको शमित्रशाला अर्थात् वध करनेकी शालामें ले जा करके उत्तरकी तर्फ इसके पग राखके शमिता अर्थात् वध करनेवाला पुरोहित तिस पशुकों मुष्टीसें गला घोंटके मारता है. तब पीछे स्वधीती अर्थात् सुरा और इभासुनु अर्थात् लकडीका ढीमचा उपर तिस पशुकों डालके तिसको फाडके तिसका मांस काढते है. तिसका होम करके जो मांस बाकी रहिता है तिसकों सर्व पुरोहितमें बांटा करते है अर्थात् तिस मांसके हिस्से करके सर्व ब्राह्मण बांट लेते है सो नीचे प्रमाणे श्रुतिसें जानना ॥

३ अथातः पशोर्विभक्तिस्तस्य विभागं वक्ष्यामो हनु सजिव्हे प्रस्तोतुः । इत्यादि ७ पंचिका १ खंड ऐतरेय ०

अर्थ—मांस काढके देना हनु जिव्हा सहित प्रस्तोताका हिस्सा है प्रस्तोता उपर लिखे पुरोहितोंमें १२ बारवां ।, कंठ ककुद संयु-

क प्रतिहर्ता १३ को ॥ श्येन वक्ष उज्ञाता ११ कों पुरोहित कों पासा सांस अध्वर्यु १ को दाहिना उपगाताकों। दाहिना अंस अर्थात् खभा प्रतिप्रस्थाताको दाहिना कटिका विभाग रुष्या स्त्री ब्राह्मणो वरसक्थं ब्राह्मण उंसिकों. भरु पोताकों दाहिनी श्रोणी होताकों अवर सकृथ मैत्रावरुणकों भरु अछावाककों दक्षिण वाहु नेष्टाकों इत्यादि पशुके अंग मांसका विभाग करके बांटना, ऐतरेय गोपथानुसार ॥ यज्ञपशुकों देवता स्वर्गमें ले जाते है तिस कहनेकी यह श्रुति नीचे लिखी है।

४ पशुर्वै नीयमानः समृत्युं प्रापश्यत् स देवान्नान्वकाम यतैतुं तं देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमयिष्याम इति ॥ ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका २ खंड ६ छठेमें

भावार्थ—यज्ञमें आणेल पशु मृत्यु देखता है. मृत्युसें देवताकुं देखता है देवता पशुसें कहेता है कि, अम तुजकुं स्वर्गमें ले जाइंगी.

पशुकों फाडके तिसके अंग काढनें तिसके कथन करनेवाली श्रुति नीचे लिखी जाती हैः—

५ अंतरेवोष्माणं वारयध्वादिति पशुष्वेव तत्प्राणान्दधाति श्येनमस्य वक्षः कृणुतात् प्रशसा बाहू शला दोषणी कश्यपेवांसाऽछिद्रे श्रोणी कवपोरू, स्त्रेकपर्णाऽष्टीवंता, षड्विंशतिरस्य वंक्रयस्ता अनुष्ठयोच्यावयताद्, गात्रं गात्रमस्यानूनं ॥ ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका २ खंड ६ ॥

अर्थ—छातीमेंसे श्येन सरीखा मांसखंड काढना और कोहोवाडी सरीखा पीछले दोनों पगोंमें दोटुकडे मांसके काढने और आगेके दोनो पगोंमेंसें तीर सरीखे दोटुकडे मांसके काढने और ख-

बामेंसें कछु समान दोटुकमे मांसके काढने पीछे संपूर्ण काढनी और जानुसें ढाल समान दो टुकमे मांसके काढने और इन पांशुलीयां-मेंसें अनुक्रमसें २६ छवीस टुकमे मांसके काढनें और वे सर्व संपूर्ण होने चाहिये.

और जो कुछ मल मूत्र इत्यादि पदार्थ निकलेंगे वे सर्व जमीनमें गामदेने चाहिये सो श्रुति कहनेवाली नीचे लिखते है.

६ ऊवध्यगोहं पार्थिवं। जावार्थ–उसका सैव अंग पृथ्वीमें गाम देना. पंचिका २ खंड ६ ॥

होतार पुरोहित नीचे लिखे प्रमाणे बोलता है.

७ अध्रिगो शमीध्वं, सुशमी शमिध्वं शमीध्वमध्रिगा ३ उर्शति त्रिर्ब्रूयात् खंड ७ में.

अर्थ–अछीतरें मारो मारणेमें कसर मत रखनी ।

रक्तलहु राक्षसकों दे देना कहा है । सो आगे श्रुति लिखी जाती है. ॥

८ अस्ना रक्षः संसृजतादित्याह। अर्थ–रक्तसें राक्षसकुं देना. खंड ७

पीछे कलेजेका होम वपाहोम जिसकों कहते है सो ईस-रीतीसें लिखा है सो श्रुति.

९ तस्य वपामुत्खिद्याहरंति तामध्वर्युः स्त्रुवेणाभिधार यन्नाह। अर्थ–तिसकी चरबी लेकर तिसमें अध्वर्यु स्त्रुवमे रखते है. खंम १२

१० सर्वमायुरेति य एवं वेद। अर्थ–ए आख्यान जे जानता है सो आयुष्य प्राप्त करते है.

इस आख्यानके जाननेका फल यही है कि आयुष्य वृद्धि

होती है तिसके कथन करनेवाली श्रुति नीचे लिखी जाती है.

वपायाग अर्थात् कलेजाका होम करेतो ऐसा फल श्रुतिमें नीचे लिखे प्रमाणे कहा है.

११ वपायामे हुतायां स्वर्गो लोकः प्राख्यायत। अर्थ—चरबीका होमसें स्वर्ग लोक मिलते है.

१२ सोऽग्नेर्देवयोन्यां आहुतिभ्यः संभूय हिरण्यशरीर ऊर्ध्वः स्वर्गं लोकमेति। अर्थ—अग्निसें देवयोनिमें आहुति डारनेसें हिरण्य शरीर प्राप्त करके ऊर्ध्व स्वर्ग लोकमें जाता है. पंचिका १४ खंड ॥

पशुका विभाग करना सो लिखा प्रमाणें ३६ छत्तीस विभाग करने चाहिये और ऐसें करें तो स्वर्गलोकमें जाते है और उक्त प्रमाण विभाग करनेकी रीति देवभाग ऋषीयोंने ठहराई. जब वे मरगये पीछे कोई देव गिरजा ऋषीकों बताई तिसका अभ्यास करना तिस विषयक ऐसा नीचे प्रमाणे लिखा है ॥

१३ तत् स्वर्गाश्च लोकानाप्नुंवति प्राणेषु चैवतत्स्वर्गेषु प्रातितिष्ठं तो यीत एतां पशो र्विभक्तिं श्रौत ऋषिर्देवभागो विदांचकार गिरिजाय बाभ्रव्यायऽमनुष्यः प्रोवाच ७ पंचिका १ खंड ॥

स्वर्ग लोकोकुं प्राप्त होता है. प्राण स्वर्गमें चाल्यागया पीछे ए पशु होमका विभाग और देवभाग गिरिजा ऋषिकुं बतलाया सो अमनुष्य (देव) हो कर ते कहेता है.

हरिचंद नाम एक राजा था तिसके पुत्र नहीं था इस वास्ते वरुण देवकी आज्ञासें अजीगर्त ऋषिका पुत्र शुनःशेफ विक्ता हूआ मोल लेके तिसकों मारके यज्ञ करनेका विचार कराया, यह

कथा विस्तार सहित ऋग्वेदमें लिखी है वे श्रुतियां नीचे लिखो है.

१४ हरिश्चंद्रो हवैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस० ७ पं० खं० १३–१४–१५–१६ ॥

सर्व ग्रंथोमें जितने यज्ञ लिखे है तिन सर्वमें हिंसा है सोई मत्र पुराणमें कहा है ॥ हिंसा स्वजावो यज्ञस्य। अर्थ–हिंसा एज यज्ञका स्वजाव है.

इसतरें चारों वेदोमें श्रेष्ठ जो ऋग्वेद है तिसकों स्वरूप वर्णन लिखा. पीछे कृष्ण यजुर्वेद जिसकों तैतरीय कहते है और शुक्ल यजुर्वेद जिसकों वाजसनीय कहते है तिनका स्वरूप लिखुंगा.

कृष्णका यजुर्वेदका विचार.

प्रथम तैतरीय ब्राह्मण बांचता ऐसा मालुम होता है कि इसवेदमें यज्ञ यजनकी क्रिया बहुत बढाई है और यज्ञ अनुष्ठानमें चारों वेदका काम पमता है तिनमें यजुर्वेदका बहुत काम पमता और यजुर्वेद पढा हुआ होवे तिसकों ही अध्वर्यु करनेमें आता है. तैतरीय यजुर्वेदके ब्राह्मणमें नीचे लिखी श्रुतियां है.

१ दैव्याः शमितार उत मनुष्या आरभध्वं ३ कांड ६ अध्याय ६ अनुवाक.

२. अध्रिगो शमीध्वम् सुशमीशमीत्वम् शमिध्वमध्रिगो ३ कां ६ अ. ६ अनु.

३. सायनाचार्यजाष्ये क्रूरकर्मेति मत्वा तदुपेक्षणं माजूदितिपुनः पुनःवचनं.

जिसतरें ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें पशु मारनेके वास्ते आज्ञा लिखी है तिसतरें इस वेदमें वचन लिखें है । सायन जाष्यार्थ. यद्यपि यह निर्दयपणाका काम है तोजी इसकी उपेक्षा

न करनी ? अवश्यमेव करना इस वास्ते श्रुतिमें तीनवार उच्चारण करा है ईस वेदके शेश वचन नीचे लिखते है

४. द्यावापृथिव्यां धेनुमालभन्ते वायव्यं वत्समालभन्तो कां १ अध्याय २ अनु ५

५. एष गोसवः कांड २ अध्याय ७ अनुवाक ५

६ प्रजापति पशूनसृजत एतेन वै देवाजत्वानिजित्वा यं काममकामयन्तमाप्नुवन् कां. २ अध्याय ७ अनु १४

७ प्राजापत्योवाअश्वः ॥ यस्या एव देवतायाः आलभ्यते ॥ तयैवेन १ समर्धयति कांड ३ अध्याय ८ अनुवाक३

८ यद्देन एकादशिनाः पशवा आलभ्यंते ३-९-२

९ नानादेवत्याः पशवो भवंति आरण्यान् लोकादशीन आलभ्यंते अस्मै वै लोकाय ग्राम्यपशव आलभ्यंते ३-९-३

१० ग्राम्या १ श्वारण्या १ श्च उभयान्पशूनालभते ३-९-३

११ तेजसा वा एव ब्रह्मवर्चसे व्यृध्यते ॥ यो अश्वमेधेन न यजते.

१२ यदजावयश्चारण्याश्च ते वै सर्वे पशवः यद्गव्याइति गव्यान्पशूनुत्तमेहन्नाभते ॥ कांड ३ अध्याय ९ अनुवाक ९

१३ शुनःश्वतुरक्षस्यप्रहन्ति सध्रक मुसलभवति३-८-४

१४ पशुभिर्वाएप व्यृध्यते । यो अश्वमेधेन यजते ॥ छगलंकल्मापंकिकिदिर्वविदिगयामिति । त्वाष्ट्रान्पशूनालभते ३-९-९ ॥

१५ तानैवोभयान् प्रीणाति ३-९-१०

१६ ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते ३-४-१ ॥

१७ यदष्टादशीन आलभ्यंते ३-९-१

अर्थ–चौथी श्रुतिसें १७ श्रुति तक.

४. द्यावा पृथ्वी देवताके वास्ते धेनु अर्थात् गोवध करके यज्ञ होता है. वायु देवताके वास्ते बछमेका वध करणा.

५. यह इस प्रकारसें गाय यज्ञ होता है सो गोसव नाम यज्ञ है.

६. प्रजापति देवें पशुकों उत्पन्न करा है तिस पशुकों लेके अन्य देवताओंने यज्ञ करा तिस्सें तिनकी मनोकामना पूरी हूईहै.

७. प्रजापति देवताकों घोमा योग्य पशु है तिसवास्ते प्रजापति देवताके ताई घोमेका वध होता है ऐसें करनेसें समृद्धि मिलती है.

८. एकादश अर्थात् ग्यारा पशुकाजी यज्ञ होता है.

९. अनेक प्रकारके देवते है तिनकों अनेक प्रकारके पशु यज्ञ में वध करके दीये जाते है. आरण्य जंगली पशु दशजी होते है. ग्राम्य पशुजी यज्ञमें वध करके दीये जाते है.

१०. गामके तथा जंगलके दोनो ठिकानेके रहनेवाले पशु यज्ञके वास्ते वध करनें योग्य है.

११. अश्वमेध यज्ञ जो करता है तिसका तेज वधता है.

१२. जंगलके पशु लेकर यज्ञ करना तिस्सें गाय विशेष करके यज्ञके योग्य है. तिसवास्ते जेकर अछा दिन होवे तो गायकाही वध करना.

१३. कुत्तेकों लाठीसें मारके घोडेके पगतले गेरना जो अश्वमेध यज्ञ करता है तिसके घरमें पशुयोंकी वृद्धि होती है.

१४. बकरेका बच्चा, तीतर पक्षी, सुफेद बगला और काला

टपकावाला मींढा ये सर्व त्वाष्टा देवताके वास्ते यज्ञमें वध करे जाते है.

१५. इस यज्ञके करनेसें यह लोकमें तथा परलोकमें सुख-मिलता है.

१६. ब्रह्म देवताके वास्ते ब्राह्मणकाभी यज्ञ होता है.

१७. अगारह पशुकाभी यज्ञ होता है.

यजुर्वेदके ब्राह्मणकी अनुक्रमणिका देखीये तो नाना प्रकारके यज्ञोंकी विधि मालुम होती है. तिसमेंसें कितनेक प्रकरण नीचे लिखे जाते है।

संस्कृत नाम.	अर्थ.
१ सौत्रामणी	१ मदिरेका यज्ञ
२ सुराग्रह मंत्र	२ मदिरे पीणेका मंत्र
३ ऐंद्र पशु	३ इंद्र देवताके वास्ते बकरेका वध करणा
४ गोसव	४ गायका यज्ञ
५ अत्युर्याम	५ एक किसमके यज्ञका नाम
६ वायवीय श्वेत पशु	६ वायुदेवताके वास्ते बकरेका वध
७ काम्य पशु	७ मनोरथ पूरण करने वास्ते पशु यज्ञ
८ वत्सोपाकरणं	८ वछरेका वध करणा यज्ञ
९ पौर्णमासेष्टि	९ पूनिमके दिनमें करनेका यज्ञ
१० नक्षत्रेष्टि	१० नक्षत्रदेवताके वास्ते बकरेका यज्ञ
११ पुरुष यज्ञ	११ मनुष्यका यज्ञ
१२ वैष्णव पशु	१२ विष्णुदेवताके वास्ते बकरेका यज्ञ
१३ ऐंद्राग्न पशु	१३ इंद्र अग्नि देवताके वास्ते बकरेका यज्ञ
१४ सावित्र पशु	१४ सूर्यदेवताके वास्ते बकरेका वध

१५ अश्वमेघ	१५ घोमेका यज्ञ
१६ रोहितादिपश्वालंजनं	१६ लाल बकरा वगैरे पशुयोंका यज्ञ
१७ अष्टादश पशुविधान	१७ अगारह पशुका यज्ञ
१८ चातुर्मास पशु	१८ चातुर्मासनामा यज्ञमें बकरेका वध
१९ एकादशीन पशुविधान	१९ इग्यारे पशुका यज्ञ
२० ग्रामारण्य पशुप्रशंसा	२० गाम तथा जंगलके पशुयोंका यज्ञ
२१ उपाकरण मंत्र	२१ पशुका संस्कार मंत्र
२२ गव्यपशुविधान	२२ गायका यज्ञ
२३ सत्र	२३ बहुत दिनतक चले सो यज्ञ
२४ ऋषभालंजन विधान	२४ बलद मारनेकी विधि
२५ अश्वालंजन मंत्र	२५ घोमे मारनेका मंत्र
२६ अश्वसंज्ञपनं	२६ घोमेके मारनेकी विधि
२७ अश्व मनुष्यअजागो पशु प्रशंसा	२७ घोमा, मनुष्य, बकरा, गौ इन सर्वके यज्ञकी विधि
२८ आदित्यदेवताक पशु	२८ सूर्यदेवताके वास्ते पशु यज्ञ
२९ सोमसव	२९ सोमदेवताके वास्ते यज्ञ
३० बृहस्पतिसव	३० बृहस्पति देवताका यज्ञ

उपर प्रमाणे अनेक यज्ञ याग इष्टि मख क्रतु उत्तरक्रतु सव इत्यादि अनेक प्रकारके याग वेदमें बतलाये है. तिन सर्वमें हिंसा पशुवध और मांसजक्षण प्राप्त होता है.

दयालु ईश्वर-के बनाये वेद नहीं है.

इस वास्ते वेद ईश्वर दयालुके बनाये कथन करे हूये नहीं है. इन पूर्वोक्त कथनोंसें तो ऐसा सिद्ध होता है कि वेद किनही मांसाहारी और निर्दय पुरुषोंके कथन करे हूये है. जेकर कोई कहे कि हम हिंसाका नाग गेम देवेंगे और अहिंसादि नाग अलग काढ लेवेंगे फेर तो हमारे वेद खरे अछे रहे जावेंगे इनको हम कहते हैवि०

उत्तर—जब तुम वेदोंमेंसे हिंसाके नाग काढ गेरोंगे तब तो पीछे कुछनी रहनेका नही क्योंकि जिसमें हिंसा न होवे ऐसा तो वेदका कोइनी नाग नही है.

तथा पशुके मारणेके वास्ते वेदमें पांच शब्द कहे है.

आलनन १ करण २ उपाकरण ३ शमन ४ संज्ञपन ५

सूरतका यज्ञेश्वरशास्त्रीनें आर्यविद्यासुधाकर नामक ग्रंथ गप्पी थोमे दिनोंसें प्रसिद्ध करा है. तिसमें अनेक प्रकारके यज्ञांकी विधि है. पशुयाग अंग छेदन इत्यादिक वेदमें लिखे मू-जब विधि बताई है. तिसमें आलनन शब्दका अर्थ लिखा है. सो नीचे लिखेसें जानना.

उपाकरणं नाम देवकर्मोपयोगित्वसंपादकः पशोः संस्कार विशेषः एतदादिसंज्ञपन पर्यंतः क्रियाकलाप आलननशब्देनानि-धीयते । प्रकाश २ पृष्ठ १ ॥

अर्थ—देवताके अर्थे पशुकों संस्कार करके वध करे तहां त-क जो जो क्रिया होती है तिन सर्वकों आलनन कहते है.

नरमेधकों कर्म जहां वेदमें लिखा है तिसमें अनेक प्रकार की जातिके अनेक स्वरुपके अनेक धंधेके दोसौ दस आदमी २१० लिखे है. वे सर्व यूप अर्थात् यज्ञस्तंनसें बांधे जाते है और तिनका प्रोक्षण पुरुषसूक्त मंत्रसें करणा लिखा है. कितनीक जगें पशुकों बांधके गेड देना जिसको उत्सर्ग कहते है लिखा है परंतु

यह गौण पक्ष है, मुख्य पक्ष नहीं. कितनीक जगें विकल्प करके लिखा है परं मूल वेदके मंत्रमें आलभन इसी शब्दका प्रयोग है; तिस वास्ते मुख्य पक्ष हिंसाहीका मालुम होता है. इसीतरें यजुर्वेदांतरगत तैतरेय शाखाका ब्राह्मण जिसमें संहिताके मंत्रोंका विनियोग लिखा है तिसकों निश्चय करता सर्व यथार्थ मालुम पमता है. ।

इसी शाखाका आरण्यक दस अध्यायरूप है. तिन दसोंके अलग अलग नाम है. पांच उपनीषद् गिणनेमें आते है और पांच कर्मोपनीषद् गिणते है. तिनमें छठा ६ अध्याय पितृमेध विषे है. तिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य मर जावे तब किस रीतीसें बालना तिसकी विधि लिखी है. तिस उपर भारद्वाज तथा बौधायन सूत्र है तिसमें इस अध्यायमें जो जो मंत्र है तिनका उपयोग बतलाया है. तिसमें ऐसा लिखा है कि मुरदेके साथ एक गाय मारके तिसके अंग प्रेत अर्थात् मुरदेके अंगो उपर गेरणे. और पीछे चिताकों आग लगानी. और प्रेतकों गामे में घालके अथवा शूद्रके स्कंधे उपर उठवाके ले जाना और इस मरणेवाले पुरुषकी स्त्रीकोंभी स्मशान तक साथ ले जाना और तिसकों ऐसा कहनाकि तेरा पति मर गया है इस वास्ते जेकर तूनें पुनर्विवाह करना होवेतो सुखसें करले, इसतरेंसें उपदेश करां पीछे पाछी ले आवनी ऐसें लिखा है. इस ग्रंथ उपर सायनाचार्यने भाष्य करा है. तिसमें तपशीलवार अर्थात् विवरणसहित वेदके सूत्र मेलके अर्थ व्याख्यान करा हूवा है. पुरुषके मरां पीछे तिसके बारवें दिनमें जव तथा बकरेके मांसका भक्षण मरणेवालेके संबंधियोंको कराना लिखा है. यह पुस्तक वेदके सर्व पुस्तकोंसें अधिक पवित्र गिणनेमें आता है. वैयरी अर्थात् जैन बौद्धादि मतवाले शत्रुयोंके कानमें इसका एकभी शब्द पमने

नही देते है. और किसी एकांत स्थल जंगलमें पढनेमें आता है. वैयरी शत्रु और शूद्रके कानमेंभी नही पडने देते है. सभामें जब ब्राह्मण एकठे होते है तब संहितातो पढते है परंतु आरण्यक नही पढते है. पितृमेधके अध्यायमें जो गाय बालनी मुरदेके साथ लिखी है तिसके नाम नीचे मूजब समजणाः—

१ राजगवी. २ अनुस्तरणी. ३ सयावरी.

इस अध्यायमें कितनेक मंत्र भाष्य सहित नीचे लिखनेमें आते है.

१ परेयुवा १ संप्रवतो। तैत्तरेय आरण्यक अध्याय ६

॥ भाष्य ॥

पितृमेधस्य मंत्रास्तु दृश्यंतेऽस्मिन् प्रपाठके पितृमेधमंत्राविनियोगो भरद्वाजकल्पे बौधायनकल्पे चाभिहितः।

अर्थ—पितृमेधके मंत्र इस प्रपाठकमें दिखते है. और पितृमेध मंत्रोंका विनियोग भारद्वाज और बौधायन सूत्रोंमें कहा है;

२ अपेत दूहय दिहाबिभः पुरा तै०आर ०अ ० ६

कल्प। दासाः प्रवयसो वहेयुः अथैनं अनसा वहंतीत्येकेषां

अर्थ—मुरदेको शूद्रवहे कितनेक कहते है गाडेमें घालकेलेजाना

३. इमौ युनज्मि ते वन्हि असुनी थाय वाढेवे

॥ भाष्य ॥

इमौ बलीवर्दौ शकटे योजयामि। यह दो बैल गाडेमें जोतताहुं.

४ पुरुषस्या सयावरी विते प्राणमसिस्त्रंसां आरण्यके

कल्प।अथास्याः। प्राणान्विस्रंसमाना ऽनु मंत्रयते हे पुरुषस्य सयावरी—राजगवी तव प्राणं शिथिलं कृतवानस्मि—पितॄन् उपेहि अस्मिन् लोके प्रजया पुत्रादिकया सह क्षेमं प्रापय॥

अर्थ—अथ इस गायके प्राणाकों विनाश अर्थात् हनते हुयें

को अनुमंत्रते है अर्थात् मंत्रसें संस्कार करते है. हे पुरुषकी स-यावरी अर्थात् राजगौ में तेरे प्राणांकों शिथिल अर्थात् हणता हूं तूं पितरांको प्राप्त हो और इस लोकमें अपने संतान करके क्षेम-कों प्राप्त कर ॥

कल्प—अत्र राजगवी उपाकरोति भुवनस्य पते इति जरवीं मुख्यां तज्जघन्यां कृष्णां कृष्णाक्षीं कृष्णवालां कृष्णखुरामपि वा अजां वालखुरमेव कृष्णं एवं स्यादिति पाठस्तु तस्यां निहन्यमा-नायां सव्यानि जानून्यनुनिघ्नंतः ॥

अर्थ—भुवनपति कुं राजगवी देना. ओ राजगवी मुख्य है काले नेत्रवाली और काले खरी और बालवाली गाय अथवा एसी बकरीबी लेना एसा पाठ है. इसका जानु में मारना.

५ उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं

॥ भाष्य ॥

हेनारि त्वं उत्तिष्ठ. त्वं दिधिषो. पुनर्विवाहेच्छो पत्युः जनित्वं जायात्वं सम्यक् प्राप्नुहि ॥

अर्थ—हे स्त्री, तुम उठो. तेरी पुनर्विवाहकी इच्छा है वास्ते पु-नःपतिका स्त्रीपणां अच्छीतरे प्राप्त करो.

६ अपश्याम युवतिमाचारंती ॥ ६ प्रपा० १२ अनु.

राजगव्या हननमुत्सर्गश्चेति द्वौ पक्षौ—तत्र हननपक्षे मंत्राः पूर्वमेवोक्ताः अथोत्सर्गपक्षे मंत्रा उच्यंते ॥

अर्थ—राजगवीका हणना और छोडना ऐसा दो पक्ष है तिनमें हणनेका मंत्र आगे कहा है, छोडनेका मंत्र कहते है.

७ अजोसि० द्वेपा १ सी

८ यवोसि० द्वेपांसी

सर्व पुस्तक देखां पीछे माध्यंदिनी शाखाकी संहिता चा-

लीस अध्यायकी है तिसके साथ चौदह अध्यायका शतपथ ब्राह्म
ण है तिसकों देखते है. तिसमें क्या लिखा और जो दयानंद
सरस्वती स्वकपोलकल्पित वेदभाष्यभूमिकादिमें जगें जगें शत
पथ ब्राह्मणकी साखी देते है सोभी मालुम पम जायगा कि शत
पथ ब्राह्मणभी ऐसा हिंसक यजुर्वेदका हिस्सा है.

ऐसा सुननेमें आता है कि व्यासजीनें ऋषियोंसे लेके सर्व वेद मंत्राको एकठे करके तिनके तिन ग्रंथ बनाये. एकका नाम ऋग्वेद रख्खा सो पैल ऋषिको दीना. दूसरेका नाम यजुर्वेद रख्खा सो वैशंपायन ऋषिकों दीना--तिनके पास एक याज्ञवल्क्य नामका शिष्य था ते याज्ञवल्क्य तथा सर्व ऋषि आपसमें बहुत लडे तब याज्ञवल्क्यनें वेदविद्या वम दीनी तिस विद्याकों तीतरोंने चुगके गायन करी तिस्सेंतो तैतरेय कृष्ण यजुर्वेद तैतरेय ब्राह्मणादि बनाये गये. और याज्ञवल्क्यनें सूर्यकी उपासना करके नवां वेद रचा तिसका नाम शुक्ल यजुर्वेद रख्खा. शतपथ ब्राह्मणमें सर्वसें पीछेका यह वाक्य है सो नीचे लिखे जाता है.

वेदका तीन भाग व्यासजी ने बनाया है.

१ आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषी वाजसनेयेन याज्ञवल्कीयेनाख्यायंते । शतपथ० १४ अध्या०

इस वेदकी संहितामें चालीस अध्याय है तिनकी अनुक्रमणिका.

दर्शपौर्णमास १–२	आधान ३
अग्नीष्टोम ४	आतिथ्येष्टि ५–६
उपांशुग्रहमंत्र ७	आदित्यग्रहमंत्र ८
राजसूयसौत्रामणि यज्ञ १०	चयन ११
चिति १२--१३--१४--१५	शतरूद्रीयंमंत्र १६

चितिवसोर्धारा १७--१८	सौत्रामणी १९--२०--२१
अश्वमेध २२	अश्लीलभाषण २३
पशुप्रकरण २४	अश्वमेध २५--२६--२७--२८--२९
पुरुषमेध ३०--३१	सर्वमेध ३२--३३
पितृमेध ३४--३५	शांतिपाठ ३६
प्रायश्चित ३७--३८--३९	ज्ञानकांड ४०

इस वेद उपर भाष्य है. एक महिधरका, दूसरा मम्हटका तिसरा सायन, चौथा कर्क, इनके विना द्विवेदांग और देवयाज्ञिक ये दो दूसरे है, ऐसें कहनेमें आता है, इस वेदमेसें कितनेक वाक्य नीचे लिखे जाते है.

१ ऋतस्य वा देवहविः पाशेन प्रतिमुंचामिधर्षा मानुषः ६ अध्या०

हे देव हविः देवानां हविरूपयज्ञस्य पाशेन त्वां प्रतिमुंचामि। एवं पशुं संबोध्य मित्रे समर्पयति । व्यामद्वयपरिमितया कुशकृतया रज्वा नागपाशं कृत्वा श्रृंगयोरंतराले पशुं गर्ग बध्नाति पाशं प्रतिमुंचेदिति । सूत्रार्थः महीधर वेददीपे ६ षष्टे अध्याये ॥

भावार्थ--पशुकों भाजकी रस्सीसें यूपके बांधणा और पीछे शामित्र अर्थात् मारणेवाले पुरोहितको सोंप देना ॥ और पशुकों कहना तूं देवका भक्ष है. ऐसें संबोधन करणा.

२ देवस्य त्वा सवितुः ० ६ अध्यायमें

यूपे पशुं बध्नाति इति सूत्रार्थः यूपमें पशु बांधे यह सूत्रार्थहै.

३ अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि ६ अध्याये

अग्निषोमदेवताभ्यां जुष्टमभिरुचितं पशुं नियुनज्मि बध्नामि।

अर्थ--अग्नि षोम देवतांकों जिसकी रुचि है ऐसे पशुकों बांधताहुं.

४ अद्भ्यो स्त्वौषधीभ्यो अनुवामाता०

पशुं प्रोक्षणीभिः प्रोक्षतीति मेध्यं करोति । पशु ऊपर पाणी छांटी पोक्षण करना लिखा है.

५ वाचं ते शुंधामि । प्राणं ते शुंधामि०

पन्ति मृतस्य पशोः प्राणान्मुखादीन्यष्टौ प्राणा यतनानि प्रति मंत्रं शुंभाति अद्भिः स्पृशति

अर्थ—पशु मर गया पीछे यज्ञ करने वालेकी स्त्रीके हाथसें मार्जन करावना.

६ घृतेन द्यावापृथिवी०

न्नाष्य ॥ वपामुत्खिद्य—द्यावा पृथिवी इति । पशूदरात् वपां निष्काश्य आछादयेत् ॥

अर्थ—पशुकी वपा अर्थात् कलेजा काढके तिसके ऊपर घी गेरके तिसका होम करना.

७ अश्वस्तुपरोगो मृगस्ते प्राजापत्याः । २४ अध्याय

अश्वमेधिकानां पशूनां देवतासम्बन्धविधायिनोऽध्यायेनोच्यन्ते । तत्राश्वमेधएकविंशतिर्यूपाःसन्ति तत्रमध्यमे यूपे सप्तदशपशवोनियोजनीयाः । शतत्रयसंख्याकानां पशूनां मध्ये पंचदश पंचदश पशुनेकैकस्मिन्यूपे युनक्ति.

८ रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते रोहितः सर्वरक्तः ॥

धूम्रवर्णः इत्यादि पशुवर्णनं.

९ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो०

इत्यादि शुभ्रवालः मणिवर्णकेशः इत्यादि ॥

१० प्राश्नीस्तरश्चीन०

विचित्रवर्णा

११ कृष्णग्रीवा आग्नेयाः ॥

कृष्णग्रीवाः इत्यादि आग्नेयाः

१२ उन्नत ऋषभो वामनस्त० ॥ उन्न ऋषभः त्रय ऐन्द्रा वैष्णवाः

१३ कृष्ण भौमा०

१४ धूम्रान्वसंतायालभते०

१५ अग्नयेऽनिकवते प्रथमजालभते०

१६ धूम्रा बभ्रुनिकाशाः पितृणां० । इत्यादि पशवः॥

१७ वसंताय कपिलानालभते०

अथारण्याः पशव उच्यन्ते कपिंजलादिस्त्रयोदश

१८ सोमायहंसानालभते

१९ अग्नये कुर्कुटानालभते

२० सोमायलबानालभते०

२१ भूम्या आखूनालभते०

२२ वसुभ्य ऋश्यानालभते०

२३ ईशानाय परस्वत आलभते०

२४ प्रजापतये पुरुपान्हस्तिनालभते

२५ ऐण्यन्हो मण्डुको

२६ श्वित्र आदित्या मुष्टो

२७ खड्गो वैश्वदेव

एवंषष्ट्यधिकं शतद्वयमारण्याः सर्वे मिलित्वा षट् शतानि नवाधिकानि पशवो भवन्ति तेष्वारण्याः सर्वे उत्स्रष्टव्या नतु हिंस्याः

२८ देवः सवितः प्रसुवः। यजुर्वेद अध्याय ३०

इत उत्तरं पुरुषमेधः चैत्रशुक्लदशम्यारंभः अत्र यूपैकादशिनि भवन्ति एकादशाग्निषोमियाः पशवो भवन्ति तान्नियुक्तां पुरुषां सहस्रशीर्षा पुरुष इति आलंभनक्रमेण यथादेवंत प्रोक्षणादिपर्यग्निकरणानन्तर इदं ब्रह्मणे इत्येवं सर्वेषां यथा स्वस्वदेवतोद्देशेन त्यागः ततः सर्वान्यूपेभ्यो विमुच्योत्सृजति ततः एकादाशनैः पशुभिः संज्ञपनादि प्रधानयागांतं कृत्वा संन्यसेत् अथवा गृहं व्रजेत् इति महीधरभाष्यं.

२९ वहं वपा जातवेदः यजु० अध्याय ३५ मंत्र २०

मध्यमाष्टका गोपशुना कार्या तस्या धेनोर्वपां जुहोति वहं वपामंत्रेण ॥

सातवे मंत्रसें लेकर एकुनतीसवे मंत्र तकका भावार्थ लिखते है.

६०९ छसो नव अश्वमेधमें अन्य पशु चाहिये तिनके नाम लिखे है तिनमें अनेक रंगके बकरे और बलद तरेंह तरेंहके पक्षी तथा अनेरे छोटे जानवर मूसे तथा मेंमक, भंट तथा गैंमा इत्यादि सर्व जातके पशुयोंका वध करणा लिखा है. वे सर्व २०७ जंगलके जीव है वे छोमदेने, एसे भाष्यकार महीधर पंमितने लिखाहै और अठावीसमे मंत्रमें नरमेध चैत्र शुदि १० मी के दिनसें करना लिखा है. तिसमें पशुयोंकों बांधनेके इग्यारह ११ यूप स्तंभ करणे और तिनसें इग्यारा बकरे तथा २०० दोसो माणस बांधके तिनका प्रोक्षण त्याग निवेदन करके जितने माणस बांधे होवे तिनकों छोम देना और इग्यारह ११ बकरे जो शेष रहे है तिनका वध करके होम करणा ऐसें महीधर भाष्यकार लिखता है. और २९ एकुनतीसवे मंत्रमें माणसके दाह करनेके वखतमें गायकी वपा अर्थात् गायका कलेजा काढके होम करना लिखा है. इस

पूर्वोक्त अनुष्ठानका नाम पितृमेध है. जिस ठिकाने पशु शब्द आवे है तिस ठिकाने तिसका अर्थ बकरा करणा ऐसा जङ्गेश्वर शास्त्री आर्यविद्यासुधारक ग्रंथमें लिखता है ॥

यत्र पशुसामान्योक्तिस्तत्र छागः पशुर्ग्राह्यो भवति ॥

पृष्ट ८१ अर्थ—जिसमें सामान्य पशु ऐसा कहा है तिसमें मेंढा लेना.

यह यजुर्वेदमें कै कै जगे पर ऐसी बीभत्स श्रुतियां है कि अज्ञजनकोंभी वांचनेसें बहुत लज्जा आवे. मर्यादासे अतिरिक्त कैसा कैसा बीभत्स वाक्य है सो पंडितजनको इस यजुर्वेदका तेइसवा अध्याय वांचनेसे मालुम हो जावेगा. इस अध्यायका इस जगे पर उतारा करनेकों हमकों बहुत लज्जा आती है.

यज्ञ करनेसें बडा पुण्य होता है ऐसा धर्मशास्त्र तथा पुराणोंमें लिखा है जहां कहीं बडे भारी पुण्यका वर्णन करा है तिस ठिकानें यज्ञकी तुलना करी है. और यज्ञ करनेसें इंद्रपदवी मिलती है तिस वास्ते इंद्रका नाम शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञ करनेवाला ऐसा अर्थ ब्राह्मण करते है. सर्व यज्ञोंमेंसे अश्वमेध यज्ञका फल बहुत बडा लिखा है. गंगाकी यात्रा करने जावे तो तिसको डिंगडिंगमें अश्वमेध यज्ञका फल लिखा है. " पदेपदे यज्ञफलमानुपूर्व्यां लभंति ते "। पाराशर अध्याय १ श्लोक ४०

तिस अश्वमेधका वर्णन ऋग्वेद संहिता अष्टक २ अध्याय १ वर्ग ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३ में है सो नीचे लिखा जाता है.

अश्वमेध दीर्घतमा औचथ्यः त्रिष्टुप् ॥ एष छागपुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । यदश्वस्य क्रविषो मक्षिका शयद्वास्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वाता ते अपि देवेष्वस्तु । यदू-

वध्यमुदरस्या पवातिय आमस्य क्रविषो गंधो अस्ति ॥ सुकृता तच्छमितारः कृण्वंतूत मेधं शृतपाकं पचंतु। चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबंधोर्वंक्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति॥ अछिद्रा गात्रावयुना कृणोत्परुष्यरुरनुघुष्या विशस्त। सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्रां उत विश्वा पुषंरयि ॥ अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान्। अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यंतिरेभाः ॥ उपप्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वां अच्छा पितरं मातरं च। आद्या देवाज्जुष्टतमोहिगम्या अथाशास्ते दाशुषे वीर्याणि ॥

अर्थ—घोमेके आगे यह बकरा पूषा और अन्यदेवतायोंको वास्ते ल्याये है. इस घोमेका जो कुछ मांस मक्खीया खायेंगी और जो कुछ छुरेका लगा रहेगा और जो कुछ अश्वके मारनेवालेके नखोमें रहेगा सो घोमेके हाथ स्वर्गमें जावेगा. इस घोमेके पेटमेंसे जो कुछ कच्चा घास निकलेगा और जो कुछ काचा मांस निकलेगा सो स्वच्छ करके अच्छी तरें रांधना. घोमेके शरीरमें ३४ पांसलीयां है तिनमें छुरा अछी तरेंसे फेर फेरके कोई हिस्सा बिगामना नही. अंग अलग अलग काढने. इस अश्वमेधके करनेसें हमको बहुत दौलत मिलेगी और गाय और घोमे और आरोग्य और सन्तान हमको प्राप्त होवेगे. घोडेके आगे बकरा बांधना और तिसके पीछे मंत्र पढनेवाला ब्राह्मण खडा रहे. इस घोमेके मारनेसे जहां इस घोमेके मातापिता है ऐसा जो देवतायोंका स्थानक तहाँ यह घोमा जावेगा, और होम करनेवालेको लाभ देवेगा.

अतीत कालमें भरत राजानें जिसके नामसें इस खंडको भरतखंड कहते है तिसने ५५ अश्वमेध यज्ञ करे, यह कथन ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें है.

भरतो दौष्यंतिर्यमुनामनु। गंगायां वृत्रघ्ने बनात्पंचपंचाशतं हयान्—महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः॥ ८ पंचिका, खंड २३.

अर्थ—दुष्यंतका लडका भरते गंगाका तीरपर पंचावन अश्वमेध कीया है. ए भरतका महा कर्म दुसरा किनेबी नहीं कीया है.

तथा रामचंद्र और पांडवोने अपनी हत्या उतारनेंकों अश्वमेध यज्ञ करा ऐसे कथानक पुराणोमें अनेक जगें लिखे है.

यजुर्वेदका शतपथ ब्राह्मण है और तिसके उपर कात्यायनी सूत्र है. ये दोनो ग्रंथ बडे महाभारत समान है. तिनमें तमाम यज्ञकी क्रिया बतलाई है. तिनकी हिंसक श्रुतियां सर्व लिखीये तो थक जाईये परंतु पूरी नही होवे. इस वास्ते पांच वाक्य लिखताहुं

१ पंचचित्तयः स्तद्य पशुशीर्षाण्युपधाय ॥ २ ॥ श्वितिःश्विनोत्येतैरेव तच्छीर्षभिरेताकुसिंधानि संदधाति. अध्याय ६॥ १-४-११. ३ यदैकादशिनान्पशूनालभते—१३ अ १-१४-२ ॥ ४ शतमालभत ॥ १३ अ० १-१४-४॥५ गव्या उत्तमेहन्नलभत १३ अ २-७-३ इति यजुर्वेदः

अथ सामवेदका वर्णन.

ताण्ड महाब्राह्मण ॥ यह ग्रंथ सामवेदके अंतर्गत है. तिसके उपर सायनाचार्यका करा भाष्य है. यह सायनाचार्य ५०० वर्ष

पहिलां कर्णाटप्रांतमें विजयनगरमें बुक्क राजाका आश्रित था इसको माधवभी कहते है. और सन्यासी हुवा पीछे विद्यारण्य स्वामीजी कहते है. ईस ग्रंथमें अनेक क्रतुके भेद लिखे है तिनका नाम.

१ अग्निष्टोमादि सप्तक्रतु. १ औपसदक्रतु, १ चतुष्टोमक्रतु, १ उभ्राद्भिजितक्रतु, १ ईड्स्तोमक्रतु, १ निधनक्रतु, १ वशिष्टक्रतु-चतुरात्र, १ विश्वामित्र संजय चतुरात्र, १ पंचशारदीय पंचरात्र, १ बिश्वजित् एकादश रात्र, १ प्रक्र्याख्यक्रतु १ चैत्ररथक्रतु, १ गर्गक्रतु, १ अंगिरसामयनक्रतु, शतरात्रक्रतु, द्वादशसंवत्सरसत्र, षट्त्रिंसत्संवत्सरसत्र, सारस्वतसत्र, १ राटक्रतु, १ ज्योतिक्रतुः १ ऋषभाख्यक्रतु १ कुलायाख्यक्रतु, १ त्रिकडुकषट्रात्र, १ प्रजापतिसप्तरात्र, १ ऐंड्सप्तरात्र, १ जनकसप्तरात्र, १ देवनवरात्र, १ विंशतिरात्र, १ त्रयस्त्रिंशतिरात्र, १ चत्वारिंशद्रात्र, १ एकषष्टिरात्रक्रतु, १ सहस्रसंवत्सरसत्र, सर्पसत्र, विश्वसृजमयनक्रतु, आदित्यपृष्ट्यमयनक्रतु, संवत्सरसत्र.

सर्व सूत्रोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन त्रिवर्गका कर्म उपनयन विवाह अंत्येष्टि इत्यादि थोमासा फरकसें बताई है. यज्ञ करनेकाभी इन तीनो वर्णकों अधिकार है.

तांड ब्राह्मणके वचन नीचे लिखे है.

१ परिश्रौ पशून्नियुंजन्ति । अध्या. १७ खंड १३ मंत्र४

२ वैश्यं याजयेत १८-४-५

३ एतद्वै वैशस्य समृद्धं यत्पशवः पशुभिरेवैनऽसमेधयति १८-४-६

४ ज्योतिर्वा एषोऽग्निष्टोमो ज्योतिष्मंतं पुण्यलोकं जयति य एवं विद्वानेतेन यजते १९–११–११

५ स्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद १९–१३–२

६ परमेष्ठितां गच्छति य एवं वेद १९–१३–४

७ अथैष विघनः १९–१८–१

८ इंद्रोऽकामयत पाप्मानं भ्रातृव्यं विहन्यामिति स एतं विघनमपश्यत् १९–१८–२

९ एकादशना एकादश पशवः एकादश यूपा भवन्ति २०–२–४

१० तया समुद्यतया रात्र्या यं यं कामं कामयते तं तमभ्यश्नुते य एवं वेद २०–२–५

११ अजोऽग्निषोमीय २१–१४–११

१२ ऐंद्रा मारुता उक्षणी मारुत्यो वत्सतर्यः २२-१४
११

१३ पशुकामो यजेत् २२–६–२

१४ सोमपौषं पशुमुपालभ्यमालभेरन् २३-१६-४

एक एक क्रतु करनेमें फल लिखा है. किसीसे इंद्रपद, किसीसे ब्रह्माका पद, किसीसे प्रजा, पशु. अन्न, राज्य, अधिकार इत्यादि प्राप्त होते है. सो विशेष करके अर्थवादरूपसें प्राचीन इतिहास कल्पित लिखे है कि प्रजापतिने वर्षा रोकी तब अमुक यज्ञ करा तो वर्षा हूई. जानवरमरीमें जानवरोंका रुद्रदेवता पशुपति तिसके वास्ते यज्ञ करा तब जानवर मरते रह गये, और वृद्धि हूई. ऐसें।

ऐसी कथान्नी लिख गोडी है. तिससें कर्मका प्रयोजन बांधा है. विधान और मंत्र विनियोग लिखा है. इसीतरें अनेक प्रकारके क्रतु चारो वेद और सूत्रोंमें लिखे है. वेद और सूत्रोंमें यही विषय सर्व ठिकाने है.

उपर लिखी १४ श्रुतियांका अर्थः–

१ यूप न होवे तो परिधिक जानवर बांधना. १७–१३–४

२ वाणियेनेंन्नी यज्ञ करना. १८–४–५

३ तिससें वाणीयेकी लक्ष्मीकी वृद्धि होती है. १८–४–६

४ अग्निष्टोम यज्ञ करनेसें मनुष्य पुण्यलोकमें जाता है १९–११–११

५ यह वात जो जानता है सो स्वर्गमें जाता है. १९–१३–२

६ ब्रह्मदेवके स्थानमें जाता है. १९–१३–४

७ विघन यज्ञ बताता हूं. १९–१८–१

८ पूर्वे इंद्र देवें इच्छा करी कि अपना शत्रु किस रीतिसें मरेगा तब तिस इंद्रनें यह यज्ञ विधिसें करा. १९–१८–१

९ इग्यारे रस्सोंसें इग्यारे पशु इग्यारे यूपसें बांधने २०-२-४

१० यह यज्ञ करें मनोकामना सिद्ध होती है. २०–२–५

११ अग्निषोम देवनें वकरा देना. २१–१४–११

१२ इंद्र और मरुत देवको गाय देनी और मरत देवको वछडा देना. २२-१४-११.

१३ जिसको पशुयोंकी वृद्धिकी इच्छा है तिसने यज्ञ करणा २२–६–२

१४ सोम अने पूषा देवतायोंके अर्थे पशु मारणा. २३–१६–४

इसी तरह सामवेदकी संहिता और तिसके अंतर्गत आठ

ब्राह्मणोंमें यज्ञक्रिया लिखी हूई है. इस वास्ते अधिक लिखनेसें कुछ प्रयोजन नही.

चौथा वेद अथर्वण और तिसके अंतर्गत गोपथ ब्राह्मण इन दोनो ग्रंथोमें ऐसा हि विषय है, और बहुलता करके एक वेदके मंत्र दूसरे वेदमें इसी मूजब भेल संभेल हूआ होया है. तिसके जनावने वास्ते गोपथ ब्राह्मणमेंसे तीन वाक्य नीचे लिख दिखाते है.

१ ॐ मा ॐ सीयंन्ति वा आहिताग्नेरग्नयः त एनमेवाग्नेऽभिध्यायन्ति यजमानं च एतमैंद्राग्नं पशु षष्टे षष्टे मासे आलभते ॥ गोपथ ब्राह्मण द्वितीय प्रपाठक ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रत्येक छ छ मासमें ऐंद्राग्नि देवताकी प्रीति वास्ते पशु बकरेका वध करके यज्ञ करणा. गोपथ ब्राह्मणके २ प्रपाठकमें कहा है.

२ अथातः सवनीयस्य पशोर्विभागं वक्ष्यामः। उद्धृत्यावदानानि ॥ हनू साजिव्हे प्रस्तोतुः कण्ठः सकाकुदः प्रतिहर्त्तुः श्येनं वक्ष उद्गातुर्दक्षिणं पार्श्वं सांसमध्वर्योः सव्यमुपगातॄणांसव्योंऽसः प्रतिप्रस्थातुर्दक्षिणा श्रोणि रथ्या स्त्री ब्रह्मणो वरसक्थं ब्राह्मणाछंसिनः उरुः पोतुः सव्याश्रोणि होंतुरवसक्थं मैत्रावरुण्यो रुरछावकस्य दक्षिणा दोर्नेष्ठुः सव्या सदस्यस्य सदञ्चानूकञ्च गृहपते जाघिनी पत्न्यास्तांसा ब्राह्मणेन प्रतिग्राहयति वनिष्टुर्हृदयं सृक्कौचाङ्गुल्यानि दक्षिणो बाहुराग्नीध्रस्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ गृहपते व्रतप्रदस्य सव्यौपादौ

गृहपत्न्या व्रतप्रदायाः सहैवैनयोरोष्ठस्तं गृहपतिरेवानु शास्ति मणिजांश्च स्कन्धास्तिस्रश्च ग्रावस्तुतस्तिस्रश्चै-कीकसा अर्द्धञ्चापानश्चोन्नेतुरत उर्द्धं चमसाध्वर्यूणां क्लो-माः शमयितुः शिरः सुब्रह्मण्यस्य यश्चसुत्यामाहूयते तस्य चर्म इत्यादि। गोपथ ब्रा० १ प्रपा० खंम १८

इसका जावार्थः—प्रस्तोता प्रतिहर्ता जज्ञाता अध्वर्यु जपगाता प्रतिप्रस्थाता ब्रह्मा ब्राह्मणाछंसी होता मैत्रावरुण अछावक नेष्टा सदस्य आग्नीध्र ग्रावस्तोता जन्नेता अध्वर्यु शमिता सुब्रह्मण्य गृहप ते व्रतपद प्रमुख यज्ञ करनेमें मदतगार जो पुरोहित जपर लिखे है वे सर्व जिसतरें यज्ञमें वधकरे पशुके अंग आपसमें छुरयोंसें काट काटके वांटा करते है जो जो अंग हनु सजिव्हा प्रमुख जि-सजिसके वांटेमें आता है तिन पुरोहिताका और तिन अंगाका नाम लिखा है, और यज्ञ करने वालेकी प्रशंसा लिखी है.

३ अथातो यज्ञक्रमा अग्न्याधियमग्ना धीयात्पूर्णाहुति। पूर्णाहुतेरग्निहोत्रमग्निहोत्राद्दर्शपौर्णमासौ दर्शपौर्णमासाभ्या माग्रयणं आग्रयणाच्चातुर्मास्यानि। चातुर्मास्येभ्यःपशुबन्धः पशुबंधादग्निष्टोमो अग्निष्टोमाद्राजसूयो राजसूयाद्वाजपेयः। वाजपेयादश्वमेधः। अश्वमेधात्पुरुषमेधः। पुरुषमेधात्सर्व-मेधः। सर्वमेधाद्दक्षिणावन्तो। दक्षिणावद्भ्यो दक्षिणाअद-क्षिणा सहस्रदक्षिणे प्रत्यतिष्ठंस्ते वा एते यज्ञक्रमः॥ ५ प्रपाठक ७ खंम ॥

इनका अर्थ सुगमही है इसवास्ते नही लिखा है. जपर लिखे प्रमाणे यज्ञका विस्तार बताया है. सो चारों वेदोंमें एक

सरीखा है. शाखाभेद वा वेदके भेदसें कर्मकांममें थोडासा पर-चूरण बातोंमें फर्क है. कोइ कहता है, घीका वासन बामें पासे रखना कोइ बाहने पासे रखना कहता है. कोइ खडा होके मंत्र पढना कहता है. कोइ बेठके पढना कहता है. ऐसी ऐसी बातोंमें फेर है. इसीका ब्राह्मणोंकों आग्रह है. बाह्मण विना औरोकों वेद पढनेकी आज्ञा नही । इति अथर्वण वेदः ॥

अथ वेदोत्पत्ति.

मूलमें वेदके मंत्र एकके बनाये नही है. अनेक ऋषियोंने वेद मंत्र बनाये है. अनेक ऋषियोंके पास थे. वेद परमेश्वरके ब-नाये हूये नही किंतु अनेक ऋषियोंके बनाये हूये है. पूर्वमीमांसा के कर्ता वेदोंकों ईश्वरके कहे मानते है, परंतु यह मत बहुत पु-राणा नही और बनानेंवाले ज्ञानीभी नही थे किंतु अज्ञानीयो समान थे, ऐसा मोक्षमुलर पंमित अपनें बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथमें लिखता है. अथाग्रे वेदके कर्ता ऋषि है. ऐसें बहुत जगें वेदोंमें लिखा है. शौनकोक्त सर्वानुक्रमपरिशिष्ट परिभाषा खंममें लिखा है—

यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता यदक्षर परिमाणं तच्छंदः तथा नमो वाचस्पतये नम ऋषिभ्यो मं-त्रकृद्भ्यो मंत्रपतिभ्यो मामामृषयो मंत्रकृतो मंत्रपतयः प-रादुर्मा ॥ तैतरेय आरण्यके ४ प्रपाठक १ अनुवाक १.

ऋग्वेदसंहितामें बहुत जगे ऐसें लिखा है कि वेदमंत्र ऋ-षियोंनें उत्पन्न करे हैं. तिनमेंसें एक वचन नीचे लिखा जाता है.

ऋषेमंत्रकृतास्तोमैः कश्यपोद्दर्धयन् गिरः ॥

जो कहते है वेद ब्रह्माके मुखसें उत्पन्न हूये है तिसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण जो है वे ब्रह्माका मुख है इसवास्ते जो कुछ ब्राह्मणोंने कहा सो ब्रह्माके मुखनें कहा. शौनक ऋषिनें जब वेदांका अनुक्रम लिखा तब उसनें ऐसा ठहराव करा वेद मंत्रमें जिस पदार्थका नाम आवे सो तिस मंत्रका देवता इस वास्ते कितनेक मंत्रोका घास देवता ठहराया. कितनेक मंत्रोका मंरूक देवता हूआ. इसी तरें अग्नि, मरुत, इंड, वरुण, सूर्य, प्रजापति धुरीलोचन, धनुर्धर नान्दीमुख, पुरुर्वाईव इत्यादिक अनेक देवते ठहराये तिनकी जक्ति, यज्ञ और होमद्वारा करनी ठहराई है. जिस ऋषिने जो मंत्र बनाया सोइ तिस मंत्रका ऋषि ठहराया. और जैनमतवाले जिस तरें वेदोंकी उत्पत्ति मानते है सो जैनतत्त्वादर्श नाम पुस्तकमें लिखी है. परंतु यहांतो जिस तरेंसें ब्राह्मण लोक वेदोकी उत्पत्ति मानते है और जैसा हमनें निगमप्रकाशादि पुस्तकोंमें लिखा देखा है तैसें ही लिखेगे. जैसें गीतामें लिखा है.

“ ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ”

अनेक छंदसें ऋषियोंने गायन करा और ऋषि ईश्वर के मुख है सो भारतमें लिखा है.

“ ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमुरूदरं विशः पादौ यस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः ” अर्थ—ब्राह्मण जिसका मुख है. क्षत्रिय भुजा है. वैश्य उरुहै और जिसका पांउं शूद्र है एसा चार वर्णरूप विष्णुसें नमस्कार है. भीष्मस्तवराज ६८

इस वास्ते वेदमंत्रोके कर्त्ता ऋषि है वे सर्व मंत्र व्यासजीने एकत्र करके चार वेदकी संहिता बांधी और अपने जो शिष्य थे तिनमेंसें चार जणांकों एकैक संहिता वाट दिनी तिनके नाम.

पैलऋषिकों ऋग्वेद दीना १ ऐतरेय २ भेद ८ ॥ वैशंपायनकों यजुर्वेद १ तैतरेय २ भेद ८६ जैमिनिकों सामवेद १ ताणु २ भेद १००० सुमंतुकों अथर्व वेद १ गोपथ ब्राह्मण २ भेद ९ ॥ सो एकैक आचार्यके पेटेमें अनेक भेद उपर लिखे प्रमाणे शाखाके हूये है तिनकी संख्या प्राचीन ग्रंथोमें लिखी है. जिस प्रमाणे शाखा लिखी है तैसी अब देखनेमें नही आती है. परंतु वर्तमानमें जो शाखा मिलती है तिनके नाम आगे लिखे जाते है.

ऋग्वेद—सांख्यायनी १ शाकल २ वाष्कल ३ आश्वलायनी ४ मांडुक ५. यह पांच शाखा ऋग्वेदकी इस कालमें मालुम होती है.

यजुर्वेद कृष्ण तैतरेय । आपस्तंब १ हिरण्यकेशी २ मैत्राणी ३ सत्याषाढ ४ बौधायनी ५ ये पांच कृष्णयजुर्वेदकी शाखा है. यजुर्वेद शुक्लवाजसनेयी याज्ञवल्क्यने करा तिसकी शाखा कण्व १माध्यंदिनी २ कात्यायनी ३ सर्व यजुर्वेदकी ८ शाखा ॥

सामवेद—कौथुमी १ राणायणी २ गोभिल ३ ।

चौथा अथर्व वेद—तिसकी शाखा दो पिपलाद १ शौनकी २॥

एकैक शाखाके जो आचार्य हो गये है तिनोने अपनी अपनी शाखाके वास्ते एकैक सूत्र बनाया है तिसके अनुसार ब्राह्मण लोग यज्ञादि कर्म करते है । तिससें हरेक ब्राह्मणका नाम होता है तिसका वेरवा तपसीलवार नीचे लिखा जाता है.

नाम १ उपनाम २ गोत्र ३ प्रवर ४ सूत्र ५

दामोदर पंड्या कपि अंगीरस आमहियव ऋक्षयस सांख्यायन

वेद ६	शाखा ७	मत ८	कुलदेव ९	जाति १०
ऋग्	सांख्यायन	स्मार्त	शिव	नागर

वैशंपायन ऋषि और याज्ञवल्क्य ऋषि आपसमें लडे तिससें यजुर्वेदमें शुक्ल यजुर्वेद उत्पन्न हूआ. तिसमें १७ शाखा है. तिनका नाम वाजसनेय पडा तिनमेंसें पंदरांका तो ठिकाना

नही है और दो डाल चलती है. तिनका नाम कण्व और माध्यंदिनी.

वेदके हिस्से हेठ लिखे जाते है.

संहिता १ ब्राह्मण २ आरण्य ३ उपनीषद् ४ परिशिष्ट ५ इनमें चौथें और पांचमें जागमें सेलजेल बहुत हूआ है. जिसकों वेदका आश्रय चाहियेथा तिसनें यह ग्रंथ नवीन रच लीया इस बातमें प्रमाण अल्लोपनिषदका. यह उपनिषद अकबर बादशाहे बनवाई है.

तथा ॥ त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति मंत्रब्राह्मणकल्पैश्च ॥ वेदतुल्य इति यास्काचार्येणोक्तः ॥

अर्थः—यज्ञरुपी धर्म, मंत्र ब्राह्मण और कल्प ये तीन पुस्तकसें होता है. इस वास्ते कल्प अर्थात् सूत्र जे है वे वेद तुल्य है. ऐसें यास्काचार्यने लिखा है. इस वास्ते प्रथम ऋग्वेदका सूत्र आश्वलायन तिसके उदाहरण लिखते है. हरएक शाखाका सूत्र है तिसमें दो जाग होते है. एक श्रौत १ दूसरा गृह्य २. तिनमें श्रौतमें तो यज्ञक्रिया लिखी हूई होती है, और गृह्यमें गृहस्थका धर्म लिखा हूआ होता है. इस ग्रंथकों स्मृतिमें गिणते है. परंतु अन्य ग्रंथोंसें सूत्रकी बमी योग्यता है. सूत्र वेदतुल्य गिना जाता है. अनेक शाखाके अनेक सूत्र है. तिन सर्वका विषय एक तरेंका है. तिस वास्ते इन सूत्रोमेंसें प्रथम आश्वलायन शाखाका श्रौतसूत्र तिसके वाक्य लिखते है. इसमें यहजी मालुम पड जायेगाकी जो दयानंद सरस्वतीजीनें अपने बनाये वेदजाष्यजूमिकामें लिखा है कि अग्निहोत्रसें लेके अश्वमेधके अंत पर्यंत जो जो कर्म करना है वे सर्व श्रौत गृह्य सूत्रांसें करणे. यहजी मालुम हो जावेगा कि श्रौत गृह्य सूत्र ऐसे दयाधर्मीके बनाये हूये

है. स्वामि दयानंदने जब वेदोंके मंत्रोंके अर्थ स्वकल्पनासें बदल झाले तो सूत्रोंकी क्या गिनती है. यहतो सत्य है परंतु जो निःपक्षपाती है वे तो विचार करेंगे कि यह सूत्र दयाधर्मी आस्तिकोंके बनाये है, वा निर्दयोंके बनाये है. प्रथम आश्वलायनश्रौत सूत्रम्

१ दैव्या शमितार आरभत्वं० १ अध्याय ३ कं.

२ दैवतेन पशुनात्वं, ३ अध्याय ७ कं.

३ षाण्मास्यः सांवत्सरोव ३-८

सोऽयं निरूढपशुः षट्सु षट्सु मासेषु कर्तव्यः । संवत्सरे संवत्सरे वा । नारायणवृत्तिः ॥

४ सौत्रामण्यां ३-९

५ आश्विनसारस्वतैंद्राः पशवः बार्हस्पत्यो वा चतुर्थ. ऐंद्रसावित्रवारुणाः पशुपुरोडाशाः ३-९

६ दर्शपौर्णमासाभ्यामि ष्टि पशु चातुर्मास्यैरथ सोमे न ४-१

७ अथ सवनीयेन पशुनाचरंति ५-३

८ अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थः षोडशी वाजपेयो अतिरात्रोऽप्तोर्याम इति संस्थाः ६-११

९ आग्नेयैंद्राग्नेकादशिना पशवः उत्तरषट्क ३-२

१० वायव्यपशुः उत्तरषट्क ३-२

११ सज्ञप्तमश्वं पत्न्यो धून्वंति उत्त० ४-८

१२ तस्य विभागं वक्ष्यामः उत्त० ६-९,

अर्थ—१ पशुकों मारो. २ देवतायोंको अलग अलग करके पशु चाहिये. ३ छे महिने कि वरसोवरसें निरूढ पशु करणा.

४ सौत्रामणी अर्थात् मदिरे पीनेके यज्ञका विधान. ५ आश्वीन, सारस्वत, इंद्र इन तीनों देवतायोंके वास्ते पशुका बलिदान देना. और बृहस्पतिको चौथा पशु देना इंद्र, सविता तथा वरुण इन देवतायोंकोभी पशु देना चाहिये.

६ पूनम तथा अमावासके दिनमें और चातुर्मास अनुष्ठानमें पशु मारणा.

७ सवनी अनुष्टानमें पशुवध करणा.

८ सात यज्ञांको संस्था कहते है. तिनके नाम अग्निष्टोम १ अत्यग्निष्टोम २ उक्थ ३, षोडशी ४, वाजपेय ५, अतिरात्र ६, अप्तोर्याम ७,

९ अग्नि तथा इंद्राग्नि इन देवतांको इग्यारा पशु चाहिये.

१० वायु देवतांको एक पशु चाहिये,

११ मरा हूआ घोडा और यज्ञ करनेवालेकी स्त्री दोनोंको वस्त्र नीचे ढांकना.

१२ वध करे हूए पशुके टुकडे करके यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण आपसमें कीस रीतिसें वांटा करणा तिसका प्रकार कहा है.

आश्वलायन श्रौतसूत्रके बारां अध्याय है तिनमें छमें पूर्वक्रतुका स्वरूप लिखा है, और अन्य छमें उत्तरक्रतु लिखे है तिनके नाम—

१ राजसूय, २ गवामयन, ३ गोसह, ४ अश्वमेध, ५ अंगिरसक्रतु, ६ शाकमेध, ७ पंचशारदीय, ८ विश्वजित्, ९ पौंडरिक, १० भरतद्वादशाह, ११ संवत्सरसत्र, १२ महाव्रत, १३ रात्रिसत्र, १४ शतरात्र, १५ स्तोम, १६ द्वादशसंवत्सर, १७ सहस्रसंवत्सर.

आश्वलायन श्रौतसूत्र उत्तरषट्क ६ अध्याये सप्तीकंडिका,

१३ वैश्वकर्मणमृषभं महाव्रते ॥ नारायण वृत्ति । एते सर्वे गोपशवः ८ अन्वहं वैकैकश एकादशिनाम् ॥ नारायण वृत्ति । एकादशिनामेव एकैकमादित आरभ्य अहन्यहनी क्रमेणालभेरन्.

उत्तरषट्क ३ अध्यायमें । सूर्यस्तुतायशस्काम.—गोसव विवधौ पशुकामः—वाजपेयेनाधिपत्यकामः—अध्याय ४ में ज्योतिर्ऋद्धिकामस्य नवसप्तदशः प्रजापतिकामस्य । पंचमे अध्याये । आङ्गिरसं स्वर्गकामः—चैत्ररथमन्नाद्यकामः—अत्रेश्चतुर्वीरं वीरकामः—जामदग्नपुष्टिकामः ऋतूनां षडहं प्रतिष्ठाकामः—संभार्यमायुष्कामः—संवत्सरप्रवल्हं श्रीकामः अथ गवामयनं सर्वकामः——

अर्थ—महाव्रत यज्ञमें ऋषभ अर्थात् बलद देना चाहिये । आश्वलायन.

पशु एकादशीमें नित्य एक एक पशु मारणा. आ०

सूर्यस्तुता यज्ञ करे यश मिलता है. आ०

गोसव यज्ञ करनेसें पशु प्राप्ति होते है. आ०

वाजपेय यज्ञ करनेसें अधिकार मिलता है. आ०

ज्योति यज्ञ करनेंसें समृद्धि होति है. आ०

नवसप्त दश यज्ञ करनेंसें प्रजा होती है. आ०

आङ्गिरस यज्ञ करनेंसें स्वर्ग प्राप्त होता है. आ०

चैत्ररथ यज्ञ करनेंसें धान्यवृद्धि होती है. आ०

अत्रेश्चतुर्वीर यज्ञ करनेंसें धैर्यवृद्धि होती है आ०

जामदग्नसें प्रकृति अछी होती है. आ०

षडहयज्ञ करनेंसें प्रतिष्टा मिलती है. आ०

संन्नार्य यज्ञ करनेंसें आयुष्य प्राप्ति होती है. आ०

संवत्सर प्रवद्ध करनेंसें लक्ष्मी मिलती है. आ०

गवामयन यज्ञ करनेंसें सर्व कामना सिद्ध होती है. आ०

इसके विना चार अध्याय गृहसूत्रके है. तिनमें गृहस्थ का धर्म लिखा है. गृह्यमें और श्रौतमें इतनाही फरक है कि जो ब्राह्मण एक अग्निको कुंड जिसका नाम स्मार्ताग्नि जिसमें रखते है तिसका नाम गृहस्थ। यह अग्नि लग्न विवाहके दिनमें उत्पन्न होती है. और जो गृहस्थ तीन अग्नि उत्पन्न करके अग्निहोत्र लेता है, तिसकों श्रोताग्नि कहते है. तिनका नाम.

दक्षिणाग्नि—गार्हस्पत्य—आहवनीय.

ऐसे अग्निहोत्रीकों यज्ञ करनेका अधिकार है। तिस अग्निहोत्रीके कर्म श्रौतसूत्रमें वर्णन करे है. और गृहस्थाश्रमीका धर्म गृह्यसूत्रमें है। वहुते गृहस्थ हालमें अग्नि उपासना करनें वास्ते राखते नही है। तिस बाबतका प्रायश्चित करते है। तिन दिन तक जो गृहस्थ अग्नि न राखे सो शूद्र हो जाता है ऐसें धर्मशास्त्रमें कहा है. गृहस्थाश्रम विवाहदिनसें शुरु होता है. और लग्न हुवा पीछे प्रजा उत्पन्न होती है तिस प्रजाके ब्राह्मण वनाने वास्ते सोलां संस्कार लिखे है. गृह्यसूत्रमें येह संस्कार लिखे हूए है, तिनका नाम ॥

गर्भाधान—पुंसवन—जातकर्म—अन्नप्राशन—चूडा—उपनयन—विवाह—अंत्येष्टि—इत्यादि लिखे है ॥

आश्वलायन आचार्यका सूत्र केवल ऋग्वेदका सार है, ऐसा

कहा जाता है. तिसका श्रौत त्यागका स्वरूप उपर लिखा है, और अग्निहोत्रिके विना गृहस्थका धर्म गृह्यसूत्रमें किस रीतीका वर्णन करा हूआ है, तिसका स्वरूप नीचे लिखा जाता है.

१ अथ पशुकल्पः १अ-११-१.

२ उत्तरतो अग्नेः शामित्रस्यायतनं कृत्वा । पशुमाल्याव्य । सपलाशयार्द्रशाखया पश्चादुपस्पृशेत् । त्वाजुष्टं उपाकरोमीति । १–११–१

३ व्रिहीयवमतिभिरद्भिः पुरस्तात् प्रोक्षाति अमुष्मै त्वाजुष्टं प्रोक्षामि १–११–१

४ अत्रैव पर्यग्नि कृत्वोदश्चं नयंति १-११-५.

५ तस्य पुरस्तादुल्मुकं हरन्ति ॥ १-२१–६.

६ शामित्रएप भवति.

७ वपाश्रपणीभ्यां कर्ता पशुमन्वालभते ॥ १-११-८

८ पश्चाच्छामित्रस्य प्राक्शिरसंप्रत्यक्शिरसं वोदक् पादं संज्ञप्य पुरानाभेस्तृणमंतर्धाय वपामुत्खिद्य १-११ -१०

नारायणवृत्ति ॥ शामित्रस्य पश्चिमे देशे बर्हिरुपस्तृणतिकर्ता ॥ तं यत्र निर्हनिष्यन्तो भवंति तदध्वर्युर्बर्हिरधःस्तादुपास्यति इति श्रुतेः ॥ ततस्तस्मिन् बर्हिषि प्राक्शिरसंवोदक् पादं पशुं शमयति शमिता वपास्थानंज्ञात्वा तिर्यक् छित्वावपांउद्धरेत् शामित्रे प्रताप्यतां वपामभिधार्यजुहुयात्॥

१. अर्थ—गृह्यसूत्रके प्रथमाध्यायकी इग्यारमी कांडिकाके प्रथम सूत्रमें पशुके यज्ञकी विधि विधान लिखा है.

२ अग्निके उत्तर पासे पशु वध करनेकी जगा बनानी और पशुकों स्नान कराणा और पलाशकी गीली डालीसें तिसका स्पर्श करणा और कहना कि तूं देवका भक्ष है. इस वास्ते तुज कों भक्षण योग्य करता हुं.

३ सही तथा जव पाणीमें गेरके सो पाणी पशु उपर छांटना.

४ जलती आग्न लेके पशुकी प्रदक्षिणा करणी.

५ वोही जलता आग्न लेके पशुके आगे चलणा.

६ पशुकों वध करणेके ठिकाने ले जाना.

७ वपा कलेजा यज्ञका मंत्र पढना.

८ वध करके पशुकी नाभिके ठिकानें वपा कलेजा होता है सो ठिकाना छेदके वपा काढनी.

नारायण वृत्तिका अर्थ—उत्तरभागमें आग्न जिगानी. तिसके उपर पशुकों मारणा एसी वेदकी आज्ञा है. तिस वास्ते तिस मु जब करके पीछे पेट भेदन करके वपा अर्थात् कलेजा काढना और वधस्थलके नजीक अग्नि उपर तपाके तद पीछे तिसके उपर घृत गेरके अग्निमें होम करणा.

दूसरे अध्यायमें छोकरके अन्न प्राशन संस्कार लिखा है तिसके सूत्र नीचे लिखे जाते है.

१ षष्ठेमास्यन्नप्राशनं ॥ १ अ० १६ क १ सू.

२ आजमन्नाद्यकामः ॥ १-१६-२.

३ तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः १-१६-३.

अर्थ—१ जन्मसे छठे मासमें अन्न प्राशन संस्कार करणा.

२ बकरेका मांस इस संस्कारमें खवरावें तो धन धान्यकी वृद्धि करे है.

३ तीतर पक्षीका मांस खानेको देवेतो ब्राह्मणमें ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है.

गृह्यसूत्र के प्रथमाध्यायकी चौवीसमी कंडिकामें मधुपर्क विधि लिखी है तिसके सूत्र नीचे लिखे प्रमाणें है.

१ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् १, २४, १,

२ स्नातकायोपस्थिताय ॥ १-२४-१

३ राज्ञेच १-३

४ आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च ४

५ आचान्तोदकाय गां वेदयन्ते २३

६ हतो मे पाप्मा पाप्मा मेहत ॥ इति जपित्वोंकुरुत तिकारयिष्यन् २४

नारायणवृत्ति—इमं मंत्रं जपित्वा ओंम्कुरुतेति ब्रूयात् यदि कारयिष्यन् मारयिष्यन् भवति तदा च दाता आलभेत.

७ नामांसो मधुपर्को भवति ॥ २६

नारायणवृत्ति—मधुपर्कांगभोजनं अमांसं न भवतीत्यर्थः पशु करणपक्षे तन्मांसेन भोजनं उत्सर्जनपक्षे मांसान्तरेण ॥

अर्थ—१ यज्ञ करने वास्ते ऋत्विज नामा करते वखत तिसकों मधुपर्क देना चाहिये. इसी तरें विवाह वास्ते जो वर घरमें आवे तिसको मधुपर्क और राजा घरमें आवे तिसको देना चाहियें.

४ आचार्य गुरु घरमें आवे अथवा श्वसुर घरमें आवे अ-

थवा काका मामा घरमें आवे तो तिनकों मधुपर्क देना चाहिये.

५ मुख साफ करने वास्ते पाणी देकर तिसके आगे गाय खमी रखनी चाहिये.

६ सूत्रमें लिखा मंत्र पढके ओम् कहके घरके स्वामीनें गायका वध करणा.

७ मधुपर्कके अंगमें जो जीमणवार होती है ते मांस विना नही होती. इस वास्ते पशुके वधपूर्वक मधुपर्क करा होवे तो तिसही पशुका मांस जिमणवारके काममें और पशुकों छोमी दिया होवेतो अन्य रीतीसें मांस लाके भोजन कराना चाहिये.

दुसरे अध्यायकी चौथी कंडीकामें अष्टका विधान लिखा है. तिसमें पशुका वध करणा लिखा है तिसका सूत्र नीचे मुजब जानना.

पशुकल्पेन पशुं संज्ञप्य प्रोक्षणोपाकरणवर्जं वपामुत्खिद्य जुहुयात्॥ २-४-१३

अर्थ—पिछले अध्यायमें पशुवधका विधान बताया है. तिसी तरें पशु अर्थात् बकरा मारके तिसका कलेजा काढके तिसका होम करणा.

फिर दूसरे अध्यायकी पांचमी कंमीकाके प्रथम सूत्रमें अन्वष्टका अनुष्टान लिखा है. तिसमें नीचे प्रमाणे लिखा हूआ है.

१ अपरेद्युरन्वष्टक्यं ॥ २-५-१

२ तस्यैव मांसस्य प्रकल्पः २-५-२

नारायणवृत्ति—अपरस्मिन्नहनि नवम्यामन्वष्टक्यं नाम कर्म कार्यमित्यर्थः ॥ योऽष्टम्यां पशुः कृतः तस्यैव मांसं ब्राह्मणभोजनार्थं प्रकल्पः संकल्पोत्यर्थं ॥

अर्थ—१ नवमीके दिनमें अन्वष्टका कर्म करणा.

२ जिस पशुका वध करा होवे तिसका मांस ब्राह्मणाको जिमावना.

फिर चौथे अध्यायकी प्रथम कंडिकामें अग्निहोत्री ब्राह्मण मरे तो तिसके जालनेकी विधि लिखि है. सो नीचे प्रमाणे सूत्र है.

१ आहिताग्निश्चेदुपतपेत्प्राच्यामुदीच्यामपराजितायां वादिश्युदवस्येत् । अ० १–१

२ अगदः सोमेन पशुनेष्ट्येष्ट्वावस्येत् ॥ ४-१-४

३ अनिष्ट्वा, ४–१–५

४ पिंठचक्रेण गोयुक्तेनेत्येके,–४–२–३

५ अनुस्तरणीं ४

६ गां ५

७ अजां वैकवर्णाम् ६

८ कृष्णामेके ७

९ सव्ये बाहुबध्वानुसंङ्कालयन्ति ८

१० अनुस्तरण्यां वपामुत्खिद्य शिरोमुखं प्रछादयेत ४–३–१९

११ वृक्का उध्हृत्य पाण्योरादध्यात् २०

१२ हृदये हृदयं २१

१३ सर्वंयथाङ्गं विनिक्षिप्यचर्मणाप्रछाद्ये २४

१४ ताउत्थापयेद्देवर ॥ उदीर्षनार्यभि० ४-२-१८

१५ स एवं विदादह्यमानः सहैव धूमेन स्वर्गलोकमेती-
तिहविज्ञायते ४-४-७

अर्थ—१ श्रोती ब्राह्मण रोगी होवे तो तिसको अग्निसहित गाम बाहिर कोइ ठिकानें लेजाके रख देना.

२ जेकर निरोग हो जावेतो एक पशुकी इष्टि करके घरमें ले आना.

३ कदापि मर जावे तो—

४ गार्मीमें नालके स्मशानमें ले जाना.

५ अनुस्तरणी अर्थात् एक जानवर साथमें ले जाना.

६ यह जानवर गाय चाहिये.

७ अथवा एक रंगकी बकरी चाहिये.

८ और सो बकरी काली चाहिये.

९ तिस जानवरके गलेमें दोरी बांधके मृतकके दाहिनें हाथसें बांधनी तिसको मुरदेके साथ चलावना.

१० अनुस्तरणीका वध करके तिसका कलेजा काढना, तिससें मुरदेको माथा ढांकनां.

११ तिसका यकृत काढके मुरदेके हाथमें देना.

१२ हृदय मुरदेके हृदय उपर देना.

१३ इसी तरें सर्व अंग मुरदेके अंगो उपर गेरने, अनुस्तरणीका चर्म तिससें मुरदेका सर्व अंग ढक देना.

१४ मुरदेकी स्त्रीकों पुनर्विवाह करणेका उपदेश करके काढदेनी.

१५ इस तरें जिसका मुरदा बाला जावे सो मनुष्य स्वर्गमें जाता है.

गृह्यसूत्रके चौथे अध्यायकी नवमी कंमीकामें शूलगव नामक यज्ञ लिखा है, तिसके सूत्र नीचे लिखे प्रमाणे है.

१ अथ शूलगवः ४-९-१

२ शरदि वसन्ते वार्द्रया २

३ श्रेष्ठं स्वस्य यूथस्य. ३

४ अकुष्ठि पृषत् ४

५ कल्माषमित्येके ५

६ कामं कृष्णमालोहवांश्चेत् ६

७ व्रीहियवमतीभिरद्भिरभिषिच्य ७

८ शिरस्त आभसत्त ८

९ रुद्राय महादेवाय जुष्टो वर्धस्वेति ९

१० प्रोक्षणादि समानं पशुना विशेन्वक्ष्यामः १५

११ पात्र्या पालाशेन वा वपां जुहुयात् इति विज्ञायते १६

१२ हराय मृडाय सर्वाय शिवाय भवाय महादेवायो ग्राय भीमाय पशुपतये रुद्राय शंकराये शानाय स्वाहेति १७

१३ सएपशूलगः बोधन्यो लोक्यः पुण्यः पुत्र्यः पश- व्य आयुष्यो यशस्यः ३६

१४ इष्ट्वान्यमुत्सृजेत् ३७

अर्थ—१ शूलगवअनुष्टान इस रीतीसें करना.

२ शरद ऋतु अर्थात् आसोन कार्तिक तथा वसंत अर्थात् चैत्र वैशाख मासमें अथवा जिसदिन आर्द्रा नक्षत्र होवे तिस दि- नमें शुलगव यज्ञ करणा.

३ जोरावर बलवान सांढ होवे सो लेना.

४ सो सांढ रोगी न होना चाहिये.

५ फेर वो सांढ कबरे रंगका चाहिये.

६ काला जामनके रंग समान होवे तोभी ठीक है.

७ सही तथा जवका पाणीसें सांढ उपर अभिषेक करणा.

८ मस्तकसें पूंछतक.

९ महादेवके ग्रहण करणे योग्य हो यह मंत्र पढना.

१० अन्य पशुका प्रोक्षण तथा वध अन्य ठिकाणे कहा है तिस मुजब करना.

११ पलासकी लकडीके वासणमें तिसका कालेजा रखके होम करना.

१२ होम करना सो शिवके बारां नाम लेके करना.

१३ इस रीतीसें शुलगव नामक यज्ञ करे तिसको धान्य, कीर्ति, पुण्य, पुत्र, पशु, समृद्धि, आयुष्य, वृद्धि तथा यश प्राप्त होता है.

१४ उक्त प्रमाणे यज्ञ करके फिरसें यज्ञ करने वास्ते दूजा सांढ अर्चके छोड देना.

ऋग्वेदकी दो ऋचा निचे लिखी है । सो आश्वलायन गृह्यसूत्रके प्रथमाध्यायके प्रथम कांडिकाके पांचमें सूत्रमें दाखल करा हूआ है सो आगे लिखा जाता है.

विश्वमना ऋषिः इंद्रोदेवता ॥ अगोरुधाय गविषेद्युक्षायदस्म्यं वचः घृतात्स्वादियो मधुनश्च वोचते ॥ ऋग्वेद अष्टक ६ अध्याय २ वर्ग २० ॥

भारद्वाज ऋषिः अग्नि देवता॥ आते अग्नऋचाहविहृदातष्टंभरामसी ॥ ते ते भवंतूक्षण ऋषभा सोवशाउत ॥ ऋग्वेद । अष्टक ४ अध्याय ५ वर्ग १८ ऋच ४७ आश्वलायन ॥

नारायण वृत्ति । अस्य मंत्रस्य तात्पर्यं उक्षादिमांसेन तव यावती प्रीतिस्तावती तव विद्यापी जवतीत्यर्थः ॥

अर्थ—हे इंद्र! हे अग्नि! तुमारी बलद और गायके मांस ऊपर प्रीति है. तिसी तरें हमारी विद्या ऊपर प्रीति होवे, यज्ञको देवयज्ञ कहते है. गृहस्थ लोक राजा श्रोत्रिय ब्राह्मणकों धन देके यज्ञ करवाते है, वाम मार्गीयोंसे पूजन करवाते है. तिससें अपणा कल्याण समजते है. श्राद्ध अर्थात् पितृयज्ञ इसमेंभी अनुस्तरणी इत्यादिकमें मांस खाते है, इसको पितृमेधभी कहते है. सर्व पूर्वोक्त ऋग्वेदी आश्वलायन ब्राह्मणका धर्मसूत्रका अर्थ ऊपर लिखा है. पुराणोमें बहुत ठिकाने ऋषि राजा वगैरे घरमें आयें मधुपर्क सहित पूजा करके सत्कार करा ऐसा लिखा है. इस वास्ते आगे मधुपर्क करणेकी रीती बहुत थी ऐसा मालुम होता है. कितनेक ब्राह्मण आपस्तंब शाखाके कहाते है. तेलंग और महाराष्ट्र देशमें इस शाखाके ब्राह्मण बहुत है. तिनका आपस्तंबीय धर्मसूत्र नामक शास्त्र है. तिस ऊपर हरदत्त नामक टीका है, सो सूत्र सरकारी तर्फसें मुंबईमें छपा है, तिसमेंसें थोडेक सूत्र नीचे लिखते है.

१ धेन्वनडुहौ भक्ष्यम् प्रश्न १ पटल ५ सूत्र ३०.

२ क्याक्वभोज्यमिति हि ब्राह्मणम् २८

३ मेध्यमानडूहमिति वाजसनेयकम् ३१

४ गोमधुपर्कार्हो वेदाध्यायः २-४-१

५ आचार्य ऋत्विक् स्नातको राजा वा धर्मयुक्तः २-४-६

६ आचार्यायर्त्विजेच शूराय राज्ञ इति परिसंवत्सरादुपतिष्ठद्भवो गौर्मधुपर्कश्च २-४-७

७ धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च १–२–२

अर्थ—१ गाय तथा बलद भक्षण करणे योग्य है.

२ पक्षी भक्षण योग्य है ऐसें ब्राह्मणग्रंथमें है.

३ बलद यज्ञपशु है ऐसें वाजसनीय कहे है.

४ गायका वध करके मधुपर्क करणा यह वेदाज्ञा है.

५ आचार्य, ऋत्विज, वर, तथा राजा इनकों मधुपर्क देना चाहिये.

६ श्वशुर इत्यादि एकैक वर्षांतरे घरमें आवे तो मधुपर्क करना.

७ धर्म जाननेकी जिसकों इच्छा होवे तिसनें वेदका प्रमाण रखना.

कात्यायनकल्पसूत्रम्

षळर्घ्या भवंति आचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियस्नातक इति गौरितित्रिः प्राह आलभेत् । अन्नप्राशन.

भारद्वाजमांसेन वाक्यं सारिकामच्छकपिंजलमांसेनान्नाद्य-कामस्य मत्स्यैर्जवनकामस्य कृकरवैराऽयुःकामस्य शूलगवः स्वर्ग-पशव्यः रौद्रं पशुमालभेत.

नवकंडिकाश्राद्धसूत्रं ॥

अथ तृप्तिः-छागो मेषानालभ्य न स्वयमृतानाहृत्य पचेन्मा-सद्वयं तु मत्स्यैर्मासत्रयंहारिणेनचतुरः औरभ्रेण पंच शाकुनेनषट् छागेन सप्त कौर्मेणाष्टौ वाराहेण नव मेषमांसेन दश माहिषेणैका-

१ आचार्य ऋत्विक् विवाह के योग्य पुरुष, राजा, प्रियमित्र, और स्नातक—ए छ अर्घ देनेके लायक है. तिनकुं गाय भरना चाहीये—सारिक, मत्स्य, कपिंजलका मांससे अन्ना-दि मीलते है. मत्स्यसें वेग मीलते है. कृकवाकुना मांससें आयुष्य वधते है. शूलगवसें स्वर्ग मिलते है. रुद्रके वास्ते पशुमारना

दश पार्षतेन संवत्सरं तु वार्ध्रीनमांसेन द्वादश वर्षाणि खड्गमांसं कालशाकंलोहछागमांसंमधुमहाशल्कोऽक्षयतृप्तिः ॥ इति सूत्रम् ॥ अर्थ—मरनारकुं बकरेसें तृप्ति होती है. मरेलाको निमित्त दो मास मनुष्यका मांस, तीनमास हरिणकामांस, चारमास नोलकामांस, पांचमास पक्षीकामांस, छठे बकरेकामांस, सातमे कूर्मकामांस, आठमें वराहकामांस, नवमें मेंढाकामांस, दशमे पाडाकामांस अगीयारमें पर्षतकामांस और बारमें सवत्सरीमें वार्धीनकामांस ए बारमासे मांस देनेसें अक्षय तृप्ति होती है.

माध्यंदिनी शाखाके जो ब्राह्मण है, वे कात्यायन सूत्रका उपयोग करते है. तिनमें मधुपर्क अन्नप्राशन शूलगव श्राद्ध यह चारों अनुष्टानमें हिंसाका प्रतिपादन करा है. सो आश्वलायन सूत्र समान जान लेना, इस वास्ते विस्तार नही लिखा है. तथा संस्कृत शब्दोहीसें जान लेना. कात्यायन यजुर्वेदका सार सूत्र है.

अथ सामवेदका लाट्यायन ऋषिका करा लाट्यायन सूत्र है तिसकाभी किंचितूमात्र स्वरूप नीचे लिखते है,

लाटयायनीय श्रौतसूत्रम्

१ उक्षा चेदनूवंध्य औक्ष्णोरन्ध्रे १-६-४२
२ ऋषभ आर्षभं १-६-४३
३ अज आजिगं १-५-४६
४ मेष औणांवयं १-६-४७
५ वपायां हुतायां धीष्णपानुपातिष्टेरन् २-२-१०
६ न शूद्रेण संभाषेरन् २-२-१६
७ गोष्टे पशुकामः ३-५-२१
८ स्मशानेऽभिचरन् ३-६-२३

९ अनुबंध्य वपायां हुतायां दक्षिणे वेद्यंतके श्मश्रूणि वापयेरन् ४-४-१८

१० प्रथमश्चाभिप्लवं पंचाक्षं कृत्वा मासान्ते सवनविधः पशुः ४-८-१४

११ यथा चात्वाले तथा यूपे शामित्रे च पशौ ५-१-९

१२ वपायां हुतायामिदमाप इति चत्वाले मार्जयित्वा सर्वपशूनां यथार्थःस्यात् ५-३-१७

१३ अग्निषोमीयवपायां हुतायां यशोतमुदङ् अतिक्रम्य चात्वाले मार्जयेत् ५-९-१४

१४ जनोतिस्त्रो वसतीति राजन्यबंधुर्जनो ब्राह्मणः समान जन इति शाण्डिल्यः ८-२-१०

१५ विवाह्यो जनः सगोत्रः समानजन इति धानंजप्यः ८-२-११

१६ प्रतिवेशो जनपदो जनो यत्र वसेत् स समानजन इति शाण्डिल्यायनः ८-२-१२

१७ एतं मृतं यजमानं हविर्भिः सह जीषे यज्ञपात्रे श्चाहवनीये प्रहृत्य प्रव्रजेयुरिति शाण्डिल्यः ८-८-६

१८ आस्ये हिरण्यमवधायानुस्तरणिक्या गौर्मुखं वपया प्रच्छाद्य तत्राग्निहोत्रहवनीं तिरश्चीम् ८-८-२२

१९ वैश्यं यं विशः स्वराजानः पुरस्कुर्वीरन् स गोसवेन यजेत ९-४-२२

२० विघ्नाभ्यां पशुकामे यजेताभिचरन्वा ९-४-३३

२१ राजाश्वमेधेन यजेत ९-९-१

२२ पंचशारदीये पशुंबन्धर्यजेत ९-१२-१०

॥ लाटयायन सूत्रका अर्थ ॥

१ बलदका यज्ञ करतां बलदका मंत्र पढना.

२ सांडका यज्ञ करतां सांडका मंत्र पढना.

३ बकरेका यज्ञ करतां बकरेका मंत्र पढना.

४ भेडका यज्ञ करतां भेडका मंत्र पढना.

५ कलजेका होम करतां उपस्थान मंत्र पढना.

६ यज्ञ दीक्षा लियां पीछे शूद्रसें न बोलना.

७ गाय बांधनेकी जगें यज्ञ करे पशु वृद्धि होती है.

८ स्मशानमें करनेंसें शत्रुका नाश होता है.

९ पशुका कालेजा होमें पीछे वतु कराना.

१० एक मास पीछे पशु करना.

११ पशु उपर पाणी छांटना.

१२ अग्निषोम देवकों कलेजेका होम करतां पाणी छांटना.

१३ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनो समान है ऐसा शांडि-ल्य आचार्यनें कहा है.

१४ सगा मित्र येभि समान है ऐसा धानंजप्य आचार्यने कहा है.

१५ स्वदेशीजन समान है ऐसा शांडिल्य आचार्यनें कहा है.

१६ यज्ञ करतां यजमान मरे जाये तो तिसके उपर यज्ञके यत्र गेर देनो.

१७ तिसके मुखमें सुवर्ण डालके गायका कलेजा काढके तिसके मुख उपर गेरणा. इस गायका नाम अनुस्तरणी है.

१८ वाणीयाने गोसव करणा.

१९ विघन यज्ञसें पशु वृद्धि होती है.

२० राजा अश्वमेध करे.

२१ पंचशारदीय यज्ञमें पशु मारणा. इति लाटयायनः ॥

ब्राह्मणोंकी जितनी शाखा है तितनेही तिनके सूत्र है तिन सर्वका हाल लिखा नही जाता है इस वास्ते इनको छोडके स्मृतियोका हाल देखते है. स्मृति नामके ग्रंथ पचास वा साठ है हरेक ऋषिके नामसें पिछाना जाता है. परंतु तिनमें मनु और याज्ञवल्क्य ये दो श्रेष्ठ गिने जाते है. वेदोमेंभी लिखा है कि जो मनुने कहा है, सो ठीक है इस वास्ते प्रथम मनुकेही थोडेसे श्लोक लिखते है.

१ तैलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा ।
दत्तेन मासं तृप्यंति विधिवत्पितरो नृणां ॥ अ० ३-२६७

२ द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् हारिणेन तु ३-२६८

३ षण्मासांछागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै ३-२६९

४ दश मासान्तु तृप्यंति वराहमहिषामिषैः ।
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ॥ ३-२७०

५ वर्धिणशस्यमांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ३-२७१

६ कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ।
आनंत्यायैव कल्प्यंते समुत्पन्नानि च सर्वशः ॥ ३-२७२

अर्थ—तिल, सही, जव, उरद वा मूलफल इनमेंसे हरेक वस्तु शास्त्र रीतीसे देवतो पितर एक मास तक तृप्त रहते है.

१ मछके मांससे दो मास, हिरणके मांसके तिन मास, तृप्त रहते है.

३ छाग मांससे छ मास और चित्र मृगके मांससें सात मास.

४ सूयर तथा भैंसके मांससें दश मास तृप्त रहते है और ससे तथा कबुके मांससें इग्यार मास तृप्त रहते है.

५ लांबे कानवाले धवले बकरेके मांससें बारा १२ वर्ष तृप्त रहते है.

६ कालशाक महाशल्कनामा मत्स्य अथवा गैंडा, लाल बकरा इनमेसें हरेकका मांस देवे मद्यसें और सर्व प्रकारका ऋषिधान्य और बनस्पति रूप जो जंगलमें स्वयमेव होता है सो देवेतो अनंत वर्ष तक पितर तृप्त रहते है.

इसी तरें मनुस्मृतिमें अनेक जगें जीव मारने; और मांस खानेकी विधि लिखी है, सो जान लेनी.

अथ याज्ञवल्क्य स्मृतिमें आचार अध्याय है, तिसके वचन नीचे लिखे जाते है.

गृहस्थ धर्म प्रकरण.

महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत् ॥ १०८ यज्ञेश्वर शास्त्री पत्रे ७५.

प्रतिसंवत्सरं त्वर्घ्याःस्नातकाचार्यपार्थिवाः ।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञे प्रत्यत्विजः पुनः ॥ १०९

अर्थ—श्रोत्रिय अर्थात् अग्निहोत्री ब्राह्मण अपने घरमें आवे तो बडा बलद अथवा बकरा मोटा तिसके भक्षण वास्ते देना.

इस उपर टीकाकार ऐसा लिखता है-"अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नत्विति" निषेधाच्च.

स्नातक, आचार्य, राजा, मित्र, जमाइ इनकों मधुपर्कपूजा प्रतिवर्ष करणी तथा ऋत्विजकी प्रत्येक यज्ञमें करणी ऐसे लिखके आश्वलायन सूत्रका वचन दाखल करा है.

अथ भक्ष्याभक्ष्य प्रकरणमें याज्ञवल्क्य स्मृतिके श्लोक लिखते है.

भक्ष्याः पंचनखा सेधागोधाकच्छपशल्लकाः ।
शशश्च मत्स्येष्वपिहि सिंहतुंडकरोहिताः १७६
तथा पाठीनराजीवसशल्काश्च द्विजातिभिः ।
अतः शृणुध्वं मांसस्य विधिं भक्षणवर्जने ॥ १७७
प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया ।
देवान् पितॄन् समाभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक् ॥ १७८
वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः ।
समितानि दुराचार यो हंत्यविधिना पशून् ॥ १७९
सर्वान् कामानवाप्नोति हयमेधफलं तथा ।
गृहेपि निवसन् विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात् ॥ १८०

अर्थ—१ पांच नखवाला जीवमें सेह, गोह, कछु, शल्लक, ससा, गैंडी ये प्राणी भक्षण करणे योग्य है. और पाठीन और राजीव ये दोनो जातके मछ ब्राह्मणोंने भक्ष्य है.

२ मासके भक्षणकी तथा परित्यागकी विधि सुण लो.

३ प्राणसंकटमें तथा श्राद्धमें मांस भक्षण करना. पोक्षित मांस तथा ब्राह्मण भोजन वास्ते अथवा देवपितृकार्यके वास्ते सिद्ध करा मांस देवपितरकी पूजा करा पीछे बाकी रहा होवे सो भक्षण करे तो दोष नहीं. प्रोक्षितं अर्थात् पोक्षण नामक संस्कार करके यज्ञकार्य करा पीछे बाकी रहे सो प्रोक्षित मांस कहा जाता है. तिसका अवश्य भक्षण करना, कारण न करे तो यज्ञकी समाप्ति न होवे.

४ जो आदमी विधि विना पशु मारता है सो नरकमें जाता है.

१ जो मांसका त्यागी है, तिसकों अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है. और सो गृहस्थही थकां मुनि जानना. यह वचन टीकाकार लिखता है कि अवश्य भक्षण करना चाहिये. प्रोक्षितादि मांसका त्याग नही.

हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।

मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनछागपार्षतैः ॥ २५७

२ ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् ।

मासवृध्याभितृप्यंति दत्तैरिह पितामहाः ॥ २५८ ॥

३ खड्गामिषं महाशल्कं मधुवन्यान्नमेवच ।

लोहामिषं महाशाकं मांसं वार्ध्रिणसस्य च ॥ २५९ ॥

अर्थ—१—२ अन्नसें एक मास, क्षीरसें एक वर्ष, मत्स्य, हरिण, मींढा पक्षी, बकरा, काला हरिण, सांबर, सूयर ससा, इन जीवांको मांस पितरांको देवे तो मास अधिकअधिक वृध्दिके हिसाबसें पितर तृप्त रहते है.

३ गैंडेका मांस, महाशल्क मत्स्यकी जाति है तिसका मांस मध, और वनमें उत्पन्न हूआ अन्न, लाल रंगके बकरेका मांस, कालशाक और वार्ध्रीण अर्थात् धौले बकरेका मांस देवे तो अनंत फलदायक है.

विनायकशांतिका पाठ नीचे लिखते है.

मत्स्यान्पक्कांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ॥ २८६ ॥

पुष्पांश्च सुगंधं च सुरां च त्रिविधामपि ॥ २८७ ॥

अर्थ—कच्चा पक्का मछ, और तैसाही मांस, पुष्प, सुगंधी पदार्थ, और तीन प्रकारका मदिरा अर्थात् गुड, महूआ, आटा इन तीनोंका निकला मदिरा इनकों विनायक और तिसकी माता अंबिकाकों चढाना.

ग्रहयज्ञ करनेकी विधिमें लिखा है कि

गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरपाष्टिकं ।
दध्योदनहविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव च ॥ ३०३ ॥
दद्याद् ग्रहक्रमादेव द्विजेभ्यो भोजनं द्विजः ।
शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वक-
म् ॥ ३०४

अर्थ—गुड, क्षीर, ऋषिधान्य, दूध, दही भात, घी भात, चटनी, मांस, केशरीभात इत्यादि ग्रहतृप्ति करणे वास्ते ब्राह्मणोंको पूर्वोक्त पदार्थोंसें जिमावना. इति याज्ञवल्क्य स्मृतिमें है.

अब स्मृतियां पीछे पुराणोंका पाठ कुछक लिखते है. प्रथम मत्स्यपुराणके १७ में अध्यायमें श्राद्धकल्प लिखा है तिसके श्लोक नीचे लिखे है.

अन्नं तुसदधि क्षीरं गोघृतं शर्करान्वितं ॥
मांसं प्रीणाति वै सर्वान् पितॄनित्याह केशवः ॥ अ० ७.
श्लोक० ३०

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेन तु ।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पंच वै ॥ ३१ ॥
षण्मासं छागमांसेन तृप्यन्ति पितरस्तथा ।
सप्त पार्षतमांसेन तथाष्टावेणजेन तु ॥ ३२ ॥
दश मासांस्तु तृप्यंति वराहमहिषामिषैः ।
शशकूर्मजमांसेन मासानेकादशैव तु ॥ ३३ ॥
संवत्सरंतु गव्येन पायसा पायसेन तु ।
व्याघ्र्याः सिंहस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ३४ ॥
कालशाखेन चानंता खड्गमांसेन चैव हि ।

यत्किंचन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसं ॥ ३५ ॥

दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ३६ ॥

इन श्लोकोंका अर्थ उपर स्मृतिश्लोकवत् जान लेना.

अथ मारकंड ऋषिका पुराण है तिसके १३ में अध्यायमें देवीका महात्म्य है तिसको चंडिपाठ कहते है, सो लोक बहुत बांचते है. और तिस उपरसें जप होम पूजा आदि अनुष्टान करते है. तिसमें नीचे लिखे हूये श्लोक है.

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे। अ, १२ श्लो. १०

पशुपुष्पार्घधूपैश्च गंधदीपैस्तथोत्तमैः ॥ १२–१०

रुधिरोक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप । १५–१८

अर्थ–देवीकी पूजामें बलिप्रदान करणा और गंध पुष्प तथा जानवरभी देने और लोहूयुक्त मांस और मदिरा देवीको अर्पण करणा.

भारत यह बडा इतिहासका ग्रंथ है. तिसमेंभी जो जो राजे बहुत शिकार करते थे और बहुत जानवर मारते थे तिनकी कीर्ति व्यासजीने बहुत वर्णन करी है. तिसके थोडेसे वचन लिखते है.

१ ततस्ते यौगपद्येन ययुः सर्वे चतुर्दिशं ।

मृगयां पुरुषव्याघ्रा ब्राह्मणार्थे परंतपाः ॥ ४ ॥ भारते द्रौपदीप्रमाथे १. सर्गे.

२ ततो दिशः संप्रविहृत्य पार्था, मृगान्वराहान्महिषांश्च हत्वा ।
धनुर्धराः श्रेष्टतमाःपृथिव्यां, पृथक् चरन्तः सहिता बभूवुः॥ १ ॥
द्रौपदी प्रमाथे पष्ठमसर्गे–

३ ततो मृगसहस्राणि हत्वा स बलवाहनः । राजा मृगप्रसङ्गेन वनमन्याद्विवेश ह ॥ १ ॥ शकुन्ततृतीय सर्गः प्रथम श्लोकः

अर्थ–१ ब्राह्मणोंके वास्ते बहुत हरिण मारके ल्याये.

२ धनुर्धर श्रेष्ठ राजायोनें बहुत हरिण तथा सूयर तथा जंगली भैंसो मारके ख्यानी ॥

३ इन बलवान राजायोंनें हजारों मृग मारके अन्योंके मारने वास्ते वनमें चले है.

तथा इसी भारतके भीष्म पर्वमें भगवद्गीता नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है. सो वेदांति तथा भक्तिमार्गवाले दोनो मानते है. तिसमें निचे प्रमाणे लिखा है.

सहयज्ञा प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोस्तिष्ठ कामधुक् ॥ १०—अ० ३॥ यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः ॥ यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥ यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् यज्ञो दानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥ अध्याय १८ श्लोक ५ ॥

अर्थ—१ ब्रह्माने सृष्टि उत्पन्न करी तिसी वखत यज्ञ करनेकी आज्ञा करी कि यज्ञ करो, तिससें देवता प्रसन्न होके तुमारी मनोकामना पूरी करेंगे.

२ यज्ञ करके बाकी जो रहे सो खावे तिसका सर्व पाप क्षय हो जाता है. यज्ञ करनेंसेंही वर्षा होती है और यज्ञ ब्रह्मदेवकी आज्ञा मूजब है.

३ यज्ञदान तथा तप मनुष्यकों पवित्र करते है. तिस वास्ते पूर्वोक्त कर्मका त्याग कदापि न करना. कर्म अवश्यमेव करना. इति गीता.

भारते। युधिष्ठिर उवाच ॥ गार्हस्थ्यस्य च धर्मस्य योगधर्मस्य चोभयोः। अदूरसंप्रस्थितयोः किंस्वित् श्रेयः पितामह ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—उभौ धर्मौ महाभागावुभौ परमदुश्चरौ ॥ उभौ महाफलौ तो तु सद्भिराचारितावुभौ ॥ कपिल उवाच। नाहं वेदान्वि

निंदामि नः विवक्षामि कर्हिचित् । प्रथगाश्रमिणां कर्माण्येकार्थानीति न श्रुतं ॥ स्यूमरश्मिरुवाच । स्वर्गकामो यजेतेति सततं श्रूयते श्रुतिः । फलं प्रकल्प्य पूर्वं हि ततो यज्ञः प्रतायते ॥ १ ॥ अजश्चाश्वश्चौषधयः प्राणस्यान्नमिति श्रुतिः । तथैवान्नं ह्यहरहः सायं प्रातर्निरूप्यते ॥ पशवश्चार्थधान्यं च यज्ञस्यांगमिति श्रुतिः । एतानि सह यज्ञेन प्रजापतिरकल्पयत् ॥ तेन प्रजापतिर्देवान्यज्ञेनायजत प्रभुः । तदन्योन्यवराः सर्वे प्राणिनः सप्त सप्तधा ॥ यज्ञेषु प्राकृतं विश्वं प्राहुरुत्तमसंज्ञितं । एतच्चैवाभ्यनुज्ञातं पूर्वैः पूर्वतरैस्तथा ॥ को जातु न विचिन्वीत विद्यात्स्वां शक्तिमात्मनः । पशवश्च मनुष्याश्च द्रुमाश्चौषधीभिः सह ॥ स्वर्गमेवाभिकांक्षंते न च स्वर्गस्ततो मखात् । औषध्यः पशवो वृक्षा वीरुदाज्यं पयोदधि ॥ हविर्भूमिर्दिशः श्रद्धा कालश्चैतानि द्वादश । ऋचो यजूंषि सामानि यजमानश्च षोडश ॥ अग्निर्ज्ञेयो गृहपतिः स सप्तदश उच्यते । अंगान्येतानि यज्ञस्य यज्ञो मूलमिति श्रुतिः ॥ यज्ञार्थानि हि सृष्टानि यथार्था श्रूयते श्रुतिः । एवं पूर्वतराः सर्वे प्रवृत्ताश्चैव मानवाः ॥ यज्ञांगान्यपि चैतानि यज्ञोक्तान्यनुपूर्वशः । विधिना विधियुक्तानि धारयंति परस्परं ॥ न तस्य त्रिषु लोकेषु परलोकभयं विदुः । इति वेदा वदंतीह सिद्धाश्च परमर्षयः । इति श्री महाभारते शांति पर्वणि मोक्षधर्मे गोकपिलीये अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥

स्यूमरश्मिरुवाच—यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवंति जंतवः ।एवं गार्हस्थ्यमाश्रित्य वर्तंत इतराश्रमाः ॥ गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः गार्हस्थ्यमस्य धर्मस्य मूलं यत्किंचिदेजते ॥ सर्वमेतन्मया ब्रह्मन् शास्त्रतः परिकीर्तितं । न ह्यविज्ञाय शास्त्रार्थं प्रवर्तंते प्रवृत्तयः ॥ युधिष्ठिर उवाच—अहिंसा परमो धर्म इत्युक्तं बहुशस्त्वया । श्राद्धेषु च भवानाह पितॄनामिषकांक्षिणः ॥ मांसैर्बहुविधैः

प्रोक्तस्त्वया श्राद्धविधिः पुरा । अहत्वाच्च कुतो मांसमेवमेतद्विरुध्यते ॥ जातो नः संशयोधर्मे मांसस्य परिवर्जने । दोषो भक्षयतः कः स्यात्कश्चाभक्षयतो गुणः ॥ भीष्म उवाच—अप्रोक्षितं वृथा मांसं विधिहीनं न भक्षयेत् । प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः प्रजार्थिभि रुदाहृतः ॥ तथोक्तं राजशार्दूल न तु तन्मोक्षकांक्षिणां । हविर्यत्संस्कृतं मंत्रैः प्रोक्षिताभ्युक्षितं शुचि ॥ वेदोक्तेन प्रमाणेन पितॄणां प्रक्रियासु च । अतोन्यथा वृथा मांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत् ॥ एतत्ते कथितं राजन् मांसस्य परिवर्जने । प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च विधानमृषिनिर्मितं ॥ इति महाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मे मांसभक्षणनिषेधे पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ११५.

युधिष्ठिर उवाच–किं चाभक्ष्यमभक्ष्यं वा सर्वमेतद्वदस्व मे । दोषा भक्षयतो येपि तान्मे ब्रूहि पितामह ॥ भीष्म उवाच–एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत । न मांसात्परमं किंचिद्रसतो विद्यते भुवि ॥ सद्यो वर्धयति प्राणान्पुष्टिमग्र्यां दधाति च । न भक्ष्योभ्यधिकः कश्चिन्मांसादस्ति परंतप ॥ विवर्जिते तु बहवो गुणाः कौरवनंदन । ये भवंति मनुष्याणां तन्मे निगदतः शृणु॥ विधिना वेददृष्टेन तद्भुक्तेह न दुष्यति । यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ अतोन्यथाप्रवृत्तानां राक्षसो विधिरुच्यते । क्षत्रियाणां तु यो दृष्टो विधिस्तमपि मे शृणु ॥ वीर्येणोपार्जितं मांसं यथा भुंजन्न दुष्यति । आरण्याः सर्वदैवत्याः सर्वशः प्रोक्षिता मृगाः ॥ अगस्त्येन पुरा राजन् मृगयायेन पूजिता । अतो राजर्षयः सर्वे मृगयां यांति भारत ॥ न हि लिप्यन्ति पापेन नचैतत्पातकं विदुः । पितृदैवतयज्ञेषु प्रोक्षितं हविरुच्यते ॥ प्राणदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं

नाम भारत ॥ सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाप्लुतं । सर्वदान फलं वापि नैतत्तुल्यमहिंसया ॥ इति श्री महाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मे अहिंसाफलकथने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

व्यास उवाच– यज्ञेन तपसा चैव दानेनच नराधिप । पूयंते नरशार्दूल नरा दुष्कृतकारिणः ॥ राजसूयाश्वमेधौ च सर्वमेधं च भारत । नरमेधं च नृपते मत्वाद च युधिष्ठिर ॥ यजस्व वाजिमेधेन विधिवद्दक्षिणावता । बहुकामान्नवित्तेन रामो दाशरथिर्यथा ॥ इति श्री महाभारते आश्वमेधिके पर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥

ततो यूपोच्छ्रये प्राप्ते षड्बिल्वान् भरतर्षभ । खादिरान् बिल्वसमितांस्तावतः सर्ववर्णितः ॥ देवदारुमयौ द्वौतु यूपौ कुरुपते मखे । श्लेष्मांतकमयं चैकं याजकाः समकल्पयन् ॥ शुशुभे चयनं तच्च दक्षस्येव प्रजापतेः । ततो नियुक्ताः पशवो यथाशास्त्रं मनीषिभिः ॥ तं तं देवं समुद्दिश्य पक्षिणः पशवश्च ये । ऋषभाः शास्त्रपठितास्तथा जलचराश्चये ॥ यूपेषु नियता चासीत्पशूनां त्रिशतिस्तथा । अश्वरत्नोत्तरा यज्ञे कौंतेयस्य महात्मनः ॥ स यज्ञः शुशुभे तस्य साक्षाद्देवर्षिसंकुलः । सिद्धविप्रनिवासैश्च समंतादभिसंवृतः ॥ तस्मिन् सदसि नित्यास्तु व्यासशिष्या द्विजर्षभाः ।सर्वशास्त्रप्रणेतारः कुशला यज्ञसंस्तरे ॥ नारदश्च बभूवात तुंबरश्च महाद्युतिः । इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वमेधारंभे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८

वैशंपायन उवाच–श्रपयित्वा पशूनन्यान्विधिवद्द्विजजातयः । ततः संश्रप्य तुरगं विधिवद्याजकास्तदा ॥ उपासंवेशयन् राजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजां । उद्धृत्य तु वपांतस्य यथाशास्त्रं द्विजातयः ॥ श्रपाजह्रुर्यथाशास्त्रं सर्वपापापहं तदा । शिष्टान्यंगानि यान्यासंस्त-

स्याश्वस्य नराधिप ॥ तान्यग्नौ जुहुवुर्धीराः समस्ताः षोडशार्त्विजः । व्यासः सशिष्यो भगवान् वर्धयामास तं नृपं ॥ ततो युधिष्ठिरः प्रादात् ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि । गोविंदं च महात्मानं बलदेवं महाबलं ॥ तथान्यान्वृष्णिवीरांश्च प्रद्युम्नाद्यान् सहस्रशः । पूजयित्वा महाराज यथाविधि महाद्युति ॥ एवं बभूव यज्ञः स धर्मराजस्य धीमतः । बहुवन्नधनरत्नाद्यैः सुराभैरेयसागरः ॥ सर्पिःपंका हृदा यत्र बभूवुश्चान्नपर्वताः । पशूनां वध्यतां चैव नांतं ददृशिरे जनाः ॥ विपाप्मा भरतश्रेष्ठः कृतार्थः प्राविशत्पुरं । तं महोत्सवसंकाशं हृष्टपुष्टजनाकुलं ॥ इति श्री महाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वमेधसमाप्तौ एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अर्थ—युधिष्टिर धर्मराजा भीष्माचार्यकों प्रश्न करता भयाकि गृहस्थ और साधु इन दोनोमेंसें उत्तम धर्म किसका है? भीष्मनें उत्तर दीनाकी दोनो धर्म अछे है. पीछे कपिलची बोलाकि मैं वेदाकी निंदा नही कर शकता हूं. आश्रम प्रमाणे धर्म होता है. स्यूमरश्मि बोलाकि स्वर्गमें जाने वास्ते यज्ञ करो. इसतरें सदा वेद कहता है. जिससें परंपरामें यज्ञ करते आये है. बकरेका, घोडेका, भेडका, गायका, पक्षीयोंका यज्ञ होता है. गाममें और सीमामें जो जानवर है वे सर्व भक्षण करने योग्य है; ऐसा वेदमें कहा है. और जानवर और धान्य इन दोनोंसें यज्ञ होता है; ऐसा वेदनें कहा है. इसतरें प्रजापति देवनें ठहराव करके यज्ञविधि जानवर और धान्य ये सर्व उत्पन्न करे. तिसी तरें देवते यज्ञ करने लगे. यज्ञमें जो जीव मारे जाते है वे सर्व ब्रह्मदेवकी आज्ञासें है. और तिसीतरें पूर्वज करते आये है. जनावर, मनुष्य, वनस्पति ये सर्व स्वर्गमें जानेकी इच्छा करते है जनावर धान्य इत्यादि १२ प्रकारकी सामग्री यज्ञमें चाहिये सो और

वेद मिलके सर्व १६ सोलें और सत्तरमी अग्नि इतनी सामग्री यज्ञकी वेदमें लिखी है. तिससें प्रथम मनुष्य यज्ञ करने लगे. ये सर्व पदार्थ यज्ञार्थ करे है. ऐसे वेदोमें लिखा है. इसीतरें सर्व वेद सिद्ध पुरुष महाऋषि इनका यही कहना है तो फेर इसमें पातक कहांसें होय? यज्ञसें परभवमें अच्छा होता है. शांतिपर्व-में इसतरें कथा २६७ में अध्यायमें है.

स्यूमरश्मि ऋषि कहे है, कि सर्व जीव माताके आश्र-यसें जीवते है. तिसीतरे गृहस्थके आश्रय सर्व साधु जीवे है. गृहस्थसें यज्ञ होता है. तप होता है, तिस वास्ते गृहस्था-श्रमी लोक धर्मका साहाय्य देते है. यह सर्व शास्त्रानुसारे मैंनें कहा है. इसतरें कथा २६७ में अध्यायमें है. धर्मराजा कहता है, हे आचार्य! अहिंसा बड़ाधर्म है ऐसेभी बहुत वार तुमनें कहा है. और तुमनेंही श्राद्धमें अनेक प्रकारका मांस खानेकी बुटी दिनी है. तब हिंसा करां विना मांस क्योंकर मिल शकता है. मेरा यह संशय दूर नहीं होता है इस वास्ते इस बातका खुलासा करो. भीष्मने उत्तर दीना यज्ञ विना और शास्त्रने जो बुद्दि दी-नी है तिसके विना मांस न खाना इसका नाम प्रवृत्तिधर्म है; परंतु मोक्षकी इच्छा होय तिसका यह धर्म नहीं. वेदमंतसें पवित्र हूआ और पाणी छांटके प्रोक्षण करा हूआ मांस पवित्र है, तिस-के खानेमें पाप नहीं. इस उपरांत मांस नहीं खाना. प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो धर्म ऋषियोंने कहे है. अनुशासनपर्वमें ये कथा ११५ में अध्यायमें है.

धर्मराजा पूछे है कि हे आचार्य! क्या खाना और क्या न खाना यह मुजको कहो. भीष्मने उत्तर दीना कि हे धर्म-राजा! इस पृथ्विमें मांस समान कोई उत्तम पदार्थ नहीं, जीवको पुष्टि देनेंवाला, शरीरकी वृद्धि करनेंवाला, तोभि तिसके त्याग

करनेमें बहुत धर्म है. वेदाज्ञा प्रमाणे मांस खानेमें दोष नही. क्योंकि यज्ञ वास्ते परमेश्वरनें पशु जनावर उत्पन्न करे है, ऐसा वेदमें लिखा है. तिसके विना मांस खाना ये राक्षसी कर्म है अब क्षत्रियका कर्म कहता हूं. तिसने अपने बलनें जीव मारा होवेतो तिसके खानेमें दोष नही. अगस्ति ऋषिनेंभी सर्व मृग पक्षीयोंका मांस दीनाथा. सर्व राजर्षि शिकार करते है. शिकार मारनेंमें तिनकों पाप नहीं. श्राद्धमें यज्ञमें मांस खाते है, सो देवोंका उच्छिष्ट खाते है. प्राण सर्वकों वल्लभ है, इसवास्ते प्राणरक्षण यह बमा धर्म है. अहिंसा पालनेसें सर्व यज्ञ, तप, तीर्थका फल मिलता है. ऐसी कथा ११६ में अध्यायमें है.

व्यासजी कहता है. पापी जो है सो यज्ञ तप दानमें पवित्र होता है. राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, नरमेध यज्ञ, ऐसें अनेक प्रकारके यज्ञ है, तिनमेंसे घोमेका यज्ञ तूं कर. पूर्वे रामचंद्रजीनेंभी यह यज्ञ कराथा. यह कथा अश्वमेध पर्वके ३ अध्यायमें है.

बिल्वका, खैरका, देवदारुका अनेक यूप यज्ञमें करेथे, सोनेकी ईंटो बनाईथी, चयन कुंम सुंदर बनाया था, और एकैक देवताके वास्ते पशु, पक्षी, बैल, जलचर, जनावर सर्व तीनसो ३०० बांधेथे. तिनमें घोमा बहुत शोभावंत दीख पडता था. सिद्ध और ब्राह्मण, व्यासजी और तिसके बहुत शिष्य सर्व कर्मके जाणकार और नारदजी बमा तेजस्वी और तुंबरू ऋषिभि सभामें थे. यह कथा ८८ में अध्यायमें है.

वैशंपायन कहता है कि पीछे ब्राह्मणोंनें सर्व जनावरना मांस रांधके तैयार करा और शास्त्र प्रमाणे घोमेका मांसभी रांधा राजा और द्रुपदिराजपत्नीकों उपवेशन संस्कार हूआ. तदपीछे घोमेका कलेजा काढके ब्राह्मणोंनें राजाके हाथमें दीना. तिससें

राजेका सर्वपाप गया. अन्ह अंगोंके मांसकों सोले याज्ञिकोंनें मिलके हवन करा. तिस सन्नामें कृष्ण, बलन्नद्र, प्रद्युम्न वगेरेन्नी थे. तिस पीछे ब्राह्मणोंकि पूजा और दान करा. इसतरें धर्मराजाके घोमेका यज्ञ हूआ. तिसमें धनधान्य रत्न और दारू पीनेको बहुत दीना था. और घीका कर्दम हूआ था और अन्नके पर्वत हूये थे. और जनावर इतने मारेथे कि तिनकी संख्या नहीं. ऐसा यज्ञ करनेसें राजाका सर्व पाप गया. यह कथा ८९ में अध्यायमें अश्वमेध पर्वमें है.

रामायण नामक काव्य ग्रंथ है. सो मूल वाल्मीक ऋषिका हूआ है. और तिस उपरसें अनेक रामायण करी है. तिनमें मुख्य अध्यात्मरामायण है. तिसके उत्तरकांडमें रामचंद्रजीनें रावणको जीत सीताकों ल्याकर अयोध्यामें आये, तव विश्वामित्र, भृगु, अंगिरस, वामदेव, अगस्ति इत्यादि ऋषि रामचंद्रजीको आशिर्वाद देनेको आये तिस वखत मधुपर्क पूजा रामचंद्रजीनें ऋषियोंकी करी सो श्लोक ॥ " दृष्टवा रामो मुनीन् शीघ्रं प्रत्युत्थाय कृतांजलिः । पाद्याद्यर्घादिन्निरापूज्य गां निवेद्य यथाविधि " ॥ उत्तरकांड अ० १ श्लोक १३ ॥ टीका " गां मधुपर्कार्थे वृषन्नं च महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेदिति स्मरणात् " ॥

अर्थ—रामचंद्रजी मुनीयोंकों देखके खमा हूआ, हाथ जोमके पग धोनेको पाणी और इत्यादि पूजा करके विधिसें गाय निवेदन करी. इस उपर टीकाकार लिखता है कि मधुपर्क पूजा करने वास्ते गाय अथवा बलद और बकरा देना चाहियें, ऐसी विधि स्मृतिमें कही हूइ है.

स्मृति, पुराण, इतिहास, तथा काव्य येह ग्रंथ ऋषियोंक करे है. तिस वास्ते आर्ष कहे जाते है. तिस पीछे लोकोंने यह मानाकि अब जगतमें ऋषि नही है, मनुष्य है. तिनके करे ग्रंथ पौरुष कहे जाते है. तिसी तरेंके ग्रंथोकों निबंधभी कहते है. वे ग्रंथ संस्कृतमें है. और माधव हेमाद्रि कमलाकर इत्यादि ग्रंथकार बहुत हो गये है. तिनोंनें आर्ष ग्रंथोकी छाया लेके अनेक तरेंके ग्रंथ रचे है. ऐसे निबंध ग्रंथोमें कौस्तुभकार विवाह प्रकरणमें छापा हुया ग्रंथ तिसके पत्रे ११७ में लिखा है—

"अत्र जयंतः गोः प्रतिनिधित्वेन छाग आलभ्यते, भत्सर्जन पक्षेपि छाग एव निवेदनीय इति ॥ गौर्गौरितिगविमनसि धृतायां द्वात्रिंशत्पणात्मकनिष्क्रयछागे मनसि धृते पणात्मको निष्क्रयो देयः। नामांसो मधुपर्को भवति इति सूत्रात् ॥ भत्सर्जनपक्षेपि अन्येन मांसेन भोजनादानमिति। वृत्तिकृज्जयंतादिभिरभिधानाच्च"

अर्थ—गायके ठिकाने बकरा मारना चाहिये जेकर गाय छोडनेका पक्ष लीना होवेतो तिसके रुपइये ३२ बत्तीस देनें और बकरेके बदले रुपक १ एक देना. मांस विना मधुपर्क होता नही, ऐसा आश्वलायन सूत्रमें लिखा है. इसवास्ते भत्सर्जन पक्ष जेकर माने तोभी अन्य तरेंका मांस ल्याके भोजन कराना, ऐसें जयंतादि वृत्तिकारोंने कहा है.

॥ श्राद्ध विवेकमें लिखा है ॥

अथ मांसानि ॥ गंडकमांसं विषाणसमयानुस्थितशृंगछाग मांसं सर्वलोहितछागमांसं हरिणविचित्रहरिणकृष्णहरिणशंबर

मृगभैंसशशककूर्मारण्यवराहमांसानि तित्तिरिलावकवर्तकशल्ल-कीककराः एषां पक्षिणां मांसानि ककरः करात इति प्रसिद्धः वार्ध्रिणसं मांसं " त्रिपिबंत्विंद्रि प्रक्षीणं श्वेतं वृद्धं अजापतिं वार्ध्रि-णसं तुतं प्राहुर्याज्ञिकाः पितृकर्मणि " कृष्णग्रीवो रक्तशीर्षः श्वेतपक्षो विहंगमः। स वै वार्ध्रिणसः प्रोक्त इत्येषा नैगमी श्रुतिः॥ छागपक्षि णौ वार्ध्रिणसौ तयोर्मांसं मंत्रसंस्कृतमांसं यदा छागादिकं पशुमा-लभ्य मांसमुपादीयते तदा प्रथमं मंत्रेण पशुप्रोक्षणं कर्त्तव्यम् । मंत्रश्च " ओम् पितृभ्यस्त्वाजुष्टं प्रोक्षामि"॥ एकोद्दिष्टे तु पित्रे त्वाजु-ष्टं प्रोक्षामीत्यादिरूपः अनालंभपक्षे सिंहादिहतमांसादिषु न मंत्र संस्कारापेक्षेति सिंहव्याघ्रहतहरिणमांसं लब्धक्रीतछागादिमां-सम् परस्तराद्यन्निघातछागादिमांसं ॥ अथ मत्स्याः महाशल्क-रोहितराजीवपाठीनश्वेतशल्का अन्येपि ॥ काशीके छापेकी पु-स्तकके पत्रे १६ ॥

अर्थ—श्राद्धविवेक नाम एक पुस्तक है. तिसमें मातपिताके श्राद्धकी विधि अनेक प्रकारकी लिखी है. तिनमें श्राद्धमें अनेक प्रकारके जनावरोंका मांस भक्षण करना लिखा है. तिनका नाम जंगली भैंस, बकरा, हरिण, रोझ, मींढा, शशा, कछु, जंगली सूयर, और तीतर, लावक इत्यादिक पक्षी और जानवर मंत्रसें पवित्र करी पाणी छांटके ऐसा मंत्र पढनाकि मेरे पितरोंके वास्ते तुजको पवित्र करता हुं. ऐसें पढके तिसका मांस लेना अथवा पशुहिंसा करते योग्य न होवेतो व्याघ्र वा सिंहका मारा हुआ जानवरका मांस लेना. और ऐसा जनावर मिलेतो मंत्र पढनेकी जरुर नहीं. अथवा मांस मोल दे लेवे. इसी तरे महाशल्क—लाल मछ राजीव तथा पाठीन इत्यादि श्राद्धमें योग्य है. भवभूति कवि जो भोजराजाके वखतमे हुआ है तिसमें उत्तररामचरित ना-

टक लिखा है सो प्रसिद्ध है. सरकारी शालामेंभी पढाया जाता है. तिसके चौथे अंकमें वशिष्टके शिष्य सौधातक और भांभायन इन दोनोंका संवाद लिखा है. तिसमें प्रसंग ऐसा है कि राजा दशरथ वशिष्ट मुनिके घरमें आया तब बछडा मधुपर्क वास्ते मारा तब पीछे जनकराजा आया तब मधुपर्क नही करा. क्यों-कि यह राजा निवृत्ति मार्गका माननेंवाला था. इसवास्ते मधुपर्क न करा. तिसका संवाद नीचे लिखे मुजब जान लेना.

सौधातक—मया पुनर्ज्ञातं व्याघ्रो वा वृको वा एष इति ।

भांभायण—आः किमुक्तं भवति

सौधातक—तेन सा वत्सतरी भक्षिता

भांभायण—समांसमधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमानाःश्रोत्रिया-
भ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा महाजं वा निर्वपंति
गृहमेधिनः ॥ तं हि धर्मसूत्रकाराः समामनंति ।

सौधातक—येन आगतेषु वशिष्टमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता ।
अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षिजनकस्य भगवता वा-
ल्मीकिनापि दधिमधुभिरेव निर्वर्तितो मधुपर्कः

भांडायण—अनिवृत्तमांसानामेवं कल्पमृषयो मन्यंते । निवृ-
त्तमांसस्तु तत्रभवान् जनकः ॥

अर्थ—राजादशरथने जब बछडेका मांस खाया तब सौधा-तकने कहा. यह राजा व्याघ्र वा भेडीया है. तब भांडायननें कहा. हा यह तुमनें क्या कहा. तब सौधाधक बोला—इसने बछडी भक्षण करी तब भांभायन बोला—श्रोत्रिय अर्थात् अग्निहोत्रि ब्राह्म-ण और अभ्यागतके वास्ते बछडी देई जाती है. बडा बलद वा बडा बकरा गृहस्थ पूर्वोक्तो मधुपर्कके वास्ते मारके देता है. तिस

धर्मको आश्वलायनादि सूत्रकार सम्मत करते है. तब सौधातके बोला जिस वाल्मीकनें वशिष्टादिकोंके आये बछडी मारी तिसी वाल्मीकने आजही पीछे आयें राजऋषि जनककों दही मधुसें मधुपर्क करा. तब भांडायन बोला-जिनोंनें मांस खाना नहीं त्यागा तिनका कल्प ऋषिलोक वैसाही करते है, और राजा जनक मांसका त्यागीथा. इस वास्ते दही मधुसें मधुपर्क करा.

पद्मपुराणके पातालखंडनें रामाश्वमेधकी कथा है. तिसके साठ अध्याय है तिनमेंसें सातमें अध्यायमें ऐसा लिखा है कि रामचंद्रजीनें अयोध्यामें आया पीछे बहुत पश्चात्ताप करा कि मैंनें युद्धमें अपनें हाथसें बहुत ब्राह्मण रावणादिक मारे तिनका पाप क्योंकर उतरेगा, ऐसा प्रश्न ऋषियोंसें करा. तब ऋषियोंनें जवाब दीनाकि ये सर्व पाप नाश करनें वास्ते तुं अश्वमेध यज्ञ कर. अन्य कोइभी पाप दूर करणेका उपाय नहीं और आगे जो बडे बडे राजे हो गये है तिनोंनें अश्वमेध यज्ञ करके स्वर्गवास पाया है. तिनकी तरें तूंभी अश्वमेध कर तो सर्व पाप नष्ट हो जावेगे. सर्व कथन नीचे लीखा जाता है ॥

राम उवाच ॥ ब्राह्मणास्तु पूजार्हा दानसन्मानभोजनैः । ते मया निहता विप्राः शरसंघातसंहितैः ॥ कुर्वतो बुद्धिपूर्वंमे ब्रह्महत्यास्तु निंदिता ॥ इति ॥ प्रोक्तवंतं रामं जगाद स तपोनिधिः । शेष उवाच ॥ शृणु राम महावीर लोकानुग्रहकारक । विप्रहत्यापनोदाय तव यद्वचनं ब्रुवे । सर्वं सपापंतरति योश्वमेधं यजेत वै । तस्मात्त्वं यज विश्वात्मन् वाजिमेधेन शोभिना ॥ स वाजिमेधो विप्राणां हत्यापापापनोदनः । कृतवान्यं महाराजो दिलीपस्तव पूर्वजः॥ मनुश्च सगरो राजा मरुत्तो नहुषात्मजः । एते ते पूर्वजाः सर्वे यज्ञान्कृत्वा पदं गताः ॥ ३६ अध्याय ७ में ॥

धर्मशास्त्रमें सूत्रग्रंथ वेदोंके बराबर माने है. वेदार्थ लेकेही सूत्र रचे है और सूत्रोंसें श्लोकबंध स्मृतियां बनाई गई. पीछे पुराणादि बने है. जब वेदोंको देखिये तो मांस और जीवहिंसा करनेका कुछन्नी निषेध नहीं. जिस वखत स्मृतियोंके बनानेका काल था तिसमें अर्थात् कलियुगके आरंन्नमें एक बडा उपद्रव वैदिक धर्म उपर उत्पन्न हूआ. सो जैन बौध धर्मकी प्रबलता हूई. जैन बौधोने वेदोकं हिंसक शास्त्र अनीश्वरोक्त पुनरुक्त अज्ञोंके बनाये सिद्ध करे, जिसका स्वरूप उपर कुछक लिख आये है. इस न्नरत खंडमें प्रायः हिंसक धर्म वेदोहिंसें चला है. जब वैदिक धर्म बहुत नष्ट हो गया तब लोगोंनें ब्राह्मणोंसें पूछा कि तुमतो वेद वेदोक्त यज्ञादिक धर्म ईश्वरके स्थापन करे जगतके उद्धार वास्ते कहते थे वे नष्ट क्यों कर हो गये. क्या ईश्वरसेंन्नी कोई बलवान् है, जिसने ईश्वरकी स्थापन करी वस्तु खंडन कर दीनी. तब ब्राह्मणोंनें उत्तर दियाकि यह बुधन्नी परमेश्वरका अवतार है. सोइ गीत गोविंद काव्य ग्रंथकी प्रथम अष्टपदीमें दशावतार वर्णन करे है तिसमें बुध वास्ते ऐसें लिखा है ॥ "निंदसि यज्ञ विधेरहहः श्रुतिजातं सदयहृदयदर्शितपशुघातं केशव धृतबुद्धशरीरं" ॥ गीतगोविंद ॥

अर्थ—न्नगवान विष्णुने बुद्धका रूप धारके वेदमें कही यज्ञ विधिकी निंदा करी कारण कि यज्ञमें पशु मारे जाते है, तिनकी न्नगवानकों दया आई. इसी ग्रंथमें एक श्लोकमें दश अवतारका वर्णन करा है, तिनमें बुद्ध विषय ऐसा जयदेव स्वामीनें लिखा है, "कारुण्यमातन्वते" अर्थ—बुद्धनें दया धर्म प्रगट करा, इससेंन्नी यह सिद्ध होता है दया धर्म आगे बहुत लुप्त हो गया था और वैदिक ब्राह्मणोंनें बहुत जगें हिंसक धर्म अर्थात् हिंसक वैदिक यज्ञ धर्म फैला दिया था. सो सर्व हिंदुस्थान, फारस, रुम, अरब वगैरे दे-

शोंमें फैल गया था. सोई कितनेक देशोंमें अवनी गऊकी कुरवानी प्रमुख करते है, और वेदमंत्रोंकी जगे विसमिल्लाह प्रमुख शब्द उचारते है. क्योंकि भारत और मनुस्मृतिमें लिखा है—शक यवन और कामभोज पुंमूक अंधइविम यवनशक पारद पल्लव चीन किरात दरद खस ये सर्व क्षत्रिय जातिके लोक थे. ब्राह्मणोंके दर्शन न होनेसें म्लेच्छ हो गये. इससें यह सिद्ध हूआ कि जिस जगे अवनी जानवरोंकी वलि देते है अर्थात् कुर्वानीयां करते है ये सर्व ब्राह्मणोनेही हिंसक धर्म चलाया है. और यहभी सिद्ध होता है कि जिस समयमें मनुस्मृति बनाई गई है तिस समयमें इन पूर्वोक्त देशोंमें ब्राह्मणोंका वेदोक्त धर्म नहीं रहा था. जब जैन बौधोंका जोर हूआ, तब बौध मतके आचार्य मोद्गलायन और शारिपुत्र प्रमुख पंमितोंनें देशोंमें फिरफिरके अपने उपदेशद्वारा उत्तर पूर्वमेंतो चीन ब्रह्मातक बौधधर्म स्थापन करा और दक्षिणमें लंकातक स्थापन करा. उधर जैनाचार्य औरजैन राजे संप्रति प्रमुखोने उपदेशद्वारा बंगालमें लेकर काबूल, गजनी, हिरात, बुखारा, शक पारसादि देशोंतक और नेपाल स्वेतांबिका तक, दक्षिणमें गुजरात, लाम, कोंकण, कर्णाट, सोपारपत्तन तक जैन मतकी वृद्धि स्थापन करी. तब हिंदुस्थानके ब्राह्मण कहनें लगेकि कलियुग उत्पन्न हूआ, इस वास्ते वैदिक धर्म मूब गया. कलि अर्थात् जैनबौधमतकी प्रबलता, क्या जानें ब्राह्मणोंने यह युग जुदा इसी वास्ते माना हो, जैन बौध मतकी प्रबलतामें एक और ब्राह्मणोकी जानकों क्लेश उत्पन्न हुआ कि कितनेक लोकोंने सांख्य शास्त्रका अभ्यास करके कहने लगे के ब्राह्मण लोग अग्नि, वायु, सूर्य इत्यादि अनेक देवतायोंकी उपासना करते है, और तिनके नामसें यज्ञ याग करतें है. परंतु ये देवने कहां कहे है, ये तो पदार्थ है. इनके वास्ते जीवहिंसा करनी और

धर्म समजना यह बहुत बडा पाप है, इस वास्ते वेदोक्त धर्म ठीक नहीं. जिसकों मोक्षकी इच्छा होवे सो प्रकृति पुरुषके ज्ञानसें और त्याग वैराग्यसे लेवे परंतु जीववध करनेंसें कदापि मुक्ति नहीं होवेगी. तब तो चारों औरसे वैदिक धर्मवाले ब्राह्मणोंकी निंदा होनें लगी, और तिनकों लोगोंनें बहुत धिक्कार दिया. तिससें वेदोंके पुस्तक ढांकके रख छोडनेकी जरूरत हो गइ. और कितनीक वेदोक्त विधियां त्याग दीनी, और स्मृति, पुराण वगेरे बनाके तिनमें लिख दिया कि कलिमें फलानी फलानी चीज करनी और जो जो बाते जैन बौध धर्मकी साथ मिल जावे ऐसी दाखल करी, और कितनीक नवी युक्तियां निकाली, वे ऐसी कि अगले ऋषि जो यज्ञ करते थे वे जनावरोकों मारके उनका मांस खाके फिर जिता कर देते थे, वे बडे सामर्थ्यवाले थे. कितनेक कहने लगे कि मंत्रोका सामर्थ्य तिन ऋषियोके साथही चला गया. परंतु यह सर्व कहना ब्रांह्मणोंका जुठा है शास्त्रोंमेंसें यह प्रमाण किसी जगेसें नही मिलता है. परंतु यह प्रमाणतो मिलता है कि ऋषि जनावरोंको मारके होम करते और तिनका मांस खाते थे, तिस वखतमें जो वेद थे वेही वेद इस वखतमेंभी है. परंतु वेदोक्त कर्म जो कोई आज करे तो तिसकी बहुत फजीती होवे. मधुपर्क, अनुस्तरणी, शूलगव, अश्वमेधमें संवेशन प्रकार, अश्लील भाषण इत्यादि वेदोक्त कर्म आज कोई करें तो तिसकी संगत कोई लोकभी नही करे, और तिसके साथ व्यवहारभी नही रखवे. और यह पूर्वोक्त कर्म देखिये तो बहुत बुरा दिख पडता है. गर्भाधान संस्कारमें ऋग्वेदका मंत्र पढते है सो यह है.

तां पुषं शिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्यावपंति॥

यानउविंशति विश्रयाते यस्यामुशंतः प्रहारमेशपं ॥ ऋग्वेद० अ० ८ ॥ इसका अर्थ बहोत बीजत्स है.

निगमप्रकाशका कर्त्ता लिखता है कि ऐसे मंत्रका अर्थ लिखीये तो बहुत अमर्यादा होवे इस वास्ते छाना है सोही जला है.

१२०० सो वर्ष पहिलां शंकर स्वामी हूये तिनोंमे राजायोंकी मदतसें बौद्ध धर्मवालोंको कतल करना शुरु किया, परंतु जैन धर्म सर्व देशोमें दक्षिण, गुजरातादिक देशोमें बना रहा. शंकर स्वामीजी वेदोक्त हिंसाको अछी मानते थे, क्योंकि शंकर विजय नामक ग्रंथ शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिका करा हुआ है तिसके छब्बीसमें अध्यायमें बौधोंके साथ संवाद जिसतरेंसें हूआ है सो लिखा है. शंकरस्वामीनें कहा है कि वेदमें जो हिंसा लिखी है सो हिंसा नही, यह तो धर्म है. सो संजाषण नीचे लिखा जाता है. " इदं आह सर्वप्राण्यहिंसा परमो धर्मः । परमगुरुजिरिदमुच्यते ॥ रे रे सौगत नीचतर किं किं जल्पसि । अहिंसा कथं धर्मो जवितुमर्हति । यागीयहिंसायाधर्मरूपत्वात् तथा हि अग्निष्टोमादिक्रतुः छागादिपशुमान् यागस्य परमधर्मत्वात् । सर्वदेवतृप्तिमूलत्वाच्च । तद्द्वारा स्वर्गादिफलदर्शनाच्च पशुहिंसा श्रुत्याचारतत्परैरपिकरणीया तद्व्यतिरिक्तस्यैव पाखंमत्वात् तदाचाररता नरकमेव यान्ति ॥ " वेदनिंदापरा ये तु तदाचारविवर्जिताः ते सर्वे नरकं यान्ति यद्यपि ब्रह्मबीजजाः "॥ इति मनुवचनात् ॥ हिंसा कर्तव्येत्यत्र वेदाः सहस्रं प्रमाणं वर्तते ब्रह्मक्षत्रवैश्यशूद्राणां वेदेतिहासपुराणाचारः प्रमाणमेव तदन्यः पतितो नरकगामी चेति सम्यगुपदिष्टः सौगतः परमगुरुं नत्वा निरस्तसमस्ताजिमानः पद्मपादादिगुरुशिष्याणां पादरक्षधारणाधिकारकुशलः सततं तद्-

भिक्षान्नन्नक्षणपुष्टतनुर्न्नवत् ॥ इत्यनन्तानंदगिरिकृतौ षम्विंश प्रकरणं ॥ २६ ॥

अर्थ–सौगत कहता है अहिंसा परम धर्म है, तब शंकर कहता है, रे रे सौगत नीचोंमे नीच, क्या क्या कहता है ? अहिंसा क्योंकर धर्म हो सकता है यज्ञ हिंसाकों धर्मरूप होनेसे, सोइ दिखाते है–अग्निष्टोमादि यज्ञमें ठागादि पशुका मारना परम धर्म है, और सर्व देवता तृप्त हो जाते है. और इस हिंसासें स्वर्ग मिलता है, इस वास्ते धर्म है. पशुहिंसा श्रुतिका आचार है, अन्य मतवालोंकोन्नी अंगीकार करणे योग्य है. वैदिक हिंसासें नुपरांत सर्व पाखंम है. जे पाखंम मानते वे नरकमें जाते है. जो वेदकी निंदा करते है और जो वेदोक्ताचार वार्जित है वे सर्व नरकमें जायेंगे, ब्रह्मका बीज क्या न हो ? यह मनुनें कहा है. हिंसा करनी इसमें वेदोंकी हजारों श्रुतियां प्रमाण देती है. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इनको वेद, इतिहास, पुराणोंका कहा प्रमाण है, इससें अन्य कुछ मानेतो नरकगामी है. यह सुणके सौगत शंकरके पद्मपादादि शिष्योंका नौकर बनके उनकी जूतीयोंका रखनेवाला हूआ. और उनकी जूठ खाकर मस्तरहने लगा.

अब विद्वानोंकों विचारना चाहिये कि शंकरस्वामी आनंदगिरि ये से कैसेक अकलवंत थे क्योंकि प्रथम जो संबोधन नीचतरका करा है यह विद्वानोंका वचन नही, फेर अहिंसा धर्मका निषेध करा यह वचन निर्दयी शौकरिक, कसाई, नंगी, ढेढ, चमारों और बावरीयोंका है कि जिनोंनं जीवहिंसाहीसें प्रयोजन है और यज्ञकी हिंसा बहुत अछी कही, सो अप्रमाणिक है. और इस जो मनुका प्रमाण दीया वो ऐसा है, जेसा कीसीने कहा हमारा गुरु तरण तारण है, इसमें प्रमाण, मेरा शाला जो कहता है के

गुरु सच्चा है. श्रुतिका जो प्रमाण दीया सो ऐसा है कि मेरी जार्या जो कहती है गुरु सच्चा है. क्या विद्धानोके यही प्रमाण होते है? जो प्रतिवादीके खंडन करनेकों अपणे शास्त्रका प्रमाण देना यहतो निकेवल अन्यायसंपन्नताका लक्षण है. क्योंकि जब प्रतिवादि अन्यमतके शास्त्रोंकोही नही मानता तो फेर वो नसके प्रमाणकों क्यों कर मानेगा? इसी आनंदगिरिने अगले प्रकरणमें जैनमतका खंमन लिखा है, वो बिलकुल जूठ है. जो नसने जैनमतकी तर्फसें पूर्वपक्ष करा है, सो नसके जैनमतके अनजिज्ञताका सूचक है. क्योंकि जो नसने पूर्वपक्ष जैनमतकी तर्फसें करा है वो पक्ष न तो किसी जैनीनें पीछे माना है और न वर्त्तमानमें मानते है, और न नसके शास्त्रोमें ऐसा लिखा है. इस वास्ते शंकर और आनंदगिरि ये दोनो परमतके अजाण और अजिमानपूरित मालुम होते है; जो मनमें आया सो जूठा नतपटंग लिख दिया. जैसें वर्त्तमानमें दयानंद सरस्वतीने अपने बनाये सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथमें चार्वाकमतके श्लोक लिखके लिख दीयाकि ये श्लोक जैनीयोंके बनाये हूये है. ऐसेहि आनंदगिरि और शंकर स्वामीने जो जैनमतका पूर्वपक्ष लिखा है सो महा जूठ लिखा है. इस वास्ते मैंनें विचाराकि ऐसे आदमीयोंका लिखा खंमन लिखके मै काहेकों अपना पत्रा बिगाडुं.

माधवाचार्यने दूसरी शंकरदिग्विजय रची है शंकर और आनंदगिरिकी अज्ञता छिपाने वास्ते; क्योंकि माधवाचार्यने कितनीक वाते जैनमतकी पूर्वपक्षमें लिखी है. यह शंकरदिग्विजय अहंकार आदिके नदयसें बनी है ने कुमतोंके खंडन करनेंसें, जैसे दयानंदने दयानंद दिग्विजयार्क रचलीनी है. दयानंदने किसमतकों जीता है सो सर्व लोग जानते है. निगम प्रकाशका कर्त्ता लिखता है कि शंकरस्वामी वाममार्गी था ऐसें लोक कहते है. क्योंकि

जहां जहां शंकरस्वामीका मठ है तहां शक्तिकी उपासना विशेष करके चलती है. और द्वारकामें शंकरस्वामीका शारदामठ है. तहां श्रीचक्रकी स्थापना पत्थर कोरके करी है. और बहुत परमहंस, कौलिक, अघोरी, वाममार्गी, सर्वंगी, इत्यादि सर्व ब्रह्ममार्गी, कहे जाते है. परंतु मदिरा मांस खूब पीते खाते है. श्रीचक्र वाममार्गीयोके पूजन करनेका देव है, सो शंकरस्वामीनें स्थापन करा है, यह कथन शंकरविजयके चौसठमें तथा पैंसठ ६४ । ६५ में प्रकरणमें है सो निचे लिखा जाता है.

" या देवी सर्वभूतेषु ज्ञानरूपेण संस्थिता। इति मार्कंडेयवचनात् परा देवता कामाक्षीति " अध्याय १४ में । एवमेतस्मिन्नर्थे निष्पन्ने परशक्तित्वस्याभिव्यंजकं श्रीचक्रनिर्माणं क्रियते भगवद्भिराचार्यैः तत्रश्लोकः " बिंदुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म, मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम् । वृत्तत्रयश्च धरणीसदनत्रयश्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः " ॥ श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥ इत्यादि वचनैः श्रीचक्रस्य शिवशक्त्यैकरूपत्वात् मुक्तिकांक्षिभिः सर्वैः श्रीचक्रपूजा कर्तव्येति सर्वेषां मोक्षफलप्राप्तये दर्शनादेव श्रीचक्रं आचार्यैर्निर्मितमिति ॥ पंचषष्टी प्रकरणं ॥

इस लिखनेसें यह सिद्ध होता है कि शंकरस्वामी वाममार्गीयोकाभी आचार्य था. जब ऐसा हूआ तबतो शंकरस्वामीने अनुचित कर्म किया होगा. शंकरस्वामीनेभी हिंसादीकों धर्म माना, पीछे शंकराचार्यकों राजा लोगोकों बहुत मदत मिली तब बौद्धोंसें लडाई करी और बौध लोगोंकी विना गुनाहके कतल कर डाला. यह कथन माधवाचार्य अपने बनाये दूसरे शंकरविजयमें लिखता है. वे श्लोक ये है–" आसेतुरातुषाद्रि बौद्धानां वृद्धबालकं। ना हंति यः स हंतव्यो भृत्यं इत्यवशं नृपाः ॥ न वेदावनीं भाषां प्राणैः

कंठगतैरपि। हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरं ॥ तद पिछे बौद्धधर्म हिंदुस्थानसें दूर हो गया और उपनिषदोंका मत चला परंतु सो मत लोगोंकों अछा नही लगा, तब लोगोंने भक्तिमार्ग निकाला. यज्ञके ठिकाने पूजा सेवा स्थापी और ब्राह्मण कर्मकांममें जहां दर्भ वापरता था तहां भक्तिमार्ग वाले तुलसीदल वापरनें लगें, और पुरोमाश अर्थात् यज्ञका शेष भागके बदले प्रसाद दाखल करा. और अग्निकी जगें विष्णु रामचंद्रजीकी स्थापना करी. और महाक्रतुकी जगें छपन भोग इत्यादि महोत्सव शुरू करे. और वेदोंके पाठके ठिकानें माला फेरणी ठहराई, और प्रायश्चित्तकी जगें नामस्मरण ठहराया, और अनुष्टानोंकी जगें उपर भजन ठहराया, और मधुपर्ककी जगें अर्घ्य अर्थात् पाणीका लोटा भरके देना ठहराया. उपनिषदके मतकों अद्वैतमत कहते है और भक्तिमार्गकों द्वैतमत कहते है, परंतु ये दोनों मत कर्मकांमके खंमन करने वाले है. और जैनमतभी वैदिक यज्ञादि कर्मका खंडन करने वाला है. तिस वास्ते ब्राह्मणोंका मत बहुत नष्ट हो गया तिससें ब्राह्मण पोकार करणे लगे कि कलियुग आया, वैदिक धर्म मूबने लगा, तब यह श्लोक लिख दीया.

"धर्मः प्रव्रजितः तपः प्रचलितं सत्यं च दूरं गतं
पृथ्वी मंदफला नृपाः कपटिनो लौल्यं गता ब्राह्मणाः ।
नारी यौवनगर्विता पररताः पुत्राः पितुर्द्वेषिणः
साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्रायः प्रविष्टे कलौ "॥ [1] १ ॥

१ धर्म चल गया, तप चलित हुवा, सत्य दूर हो गया, पृथ्वी मंदफल पामी हुइ, राजलोक कपटी हवा, ब्राह्मण लुब्ध हो गया, स्त्री यौवनका गर्व करने वाली ओर परासक्त हुइ, पुत्र पिताका द्वेषी हुवा. साधु दुखी है ओर दुर्जन सुखी होता है, एसा कलिकाल प्रविष्ट होनेसे हुवा है.

कर्मकांडकी निंदा करने वाला सर्व देशोंमें उत्पन्न हो गये, दक्षिण देशमें तुकाराम साधु हुआ तिसनें बहुत वैदिक कर्मकांडकी निंदा करी है तथा कमलाकर भट्ट निर्णयसिंधुके तिसरे परिछेदमें प्रथम प्रकरणमें अंतमें अनेक पुराणोंमें जो काम कलियुगमें नही करणे वे सर्व इस जगें एकठे करे है; तिनमेंसें कितनेक वचन लिखते है. ॥ १ ॥ समुद्रयातुः स्वीकारः कमंडलुविधारणं । द्विजानां सर्ववर्णानां सा कन्यापयमस्तथा ॥ देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः । मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥ दत्ताक्षतायाः कन्यायाःपुनर्दानं परस्य च । दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ॥ महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः । इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥ यद् बृहन्नारदपुराणे ॥ २ ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा । कलौ पंच न कुर्वीत भ्रातृजायां कमंडलुं ॥ हेमाद्रि ॥ ३ ॥ गोत्रान्मातृसपिंडाच्च विवाहो गोवधस्तथा ॥ नरमेधोऽश्व मखं च कलौ वर्ज्या द्विजातिभिः ॥ ब्राह्मे॥ ४ ॥ विधवायां प्रजोपत्तौ देवरस्य नियोजनं। बालायाः क्षतयोन्यास्तु न रेणान्येन संस्कृतिः ॥ कन्यानां सर्ववर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः। आततायिद्विजाग्र्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ॥ द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्याप्यसंग्रहम् । सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमंडलुविधारणं ॥ महाप्रस्थानगमनम् गोसंज्ञप्तिश्च गोसवे । सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणंच संग्रहः ॥ अग्निहोत्रहवन्याश्च लेहो लीढापरिग्रहः । वृत्तस्वाध्यायसापेक्ष्यमघ संकोचनं तथा ॥ प्रायश्चित्तविधानंच विप्राणां मरणान्तिकं । संसर्गदोषास्तेयान्यमहापातकनिष्कृतिः ॥ आदित्यपुराणे ॥ ५ ॥ वरातिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया । दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥ शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा कलौ कर्तैव लिप्यते ॥ इति व्यासोक्तेः ॥ महापापे रहस्यकृते-प्रायश्चित्तं नेत्यर्थः ६ अग्निहोत्रं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकं । देवरा-

च्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् ॥ संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानतः । यावद्वर्णविनागोस्ति यावद्वेदः प्रवर्त्तते ॥ संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौयुगे । एतेन चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च कलेर्यदागमिष्यन्ति तदा त्रेतापरिग्रहः ॥ स्मृतिचंद्रिकायां ॥

अर्थ—एक जगें लिखा है कलियुगमें यह काम नही करणे. समुद्रमें जाना १ सन्यास लेना २ नीच जातिकी कन्यासें विवाह करना ३ देवर पति करना ४ मधुपर्कमें जीव मारना ५ श्राद्धमें मांस खीलाना ६ वानप्रस्थाश्रम लेना ७ पुनर्विवाह करना ८ बहुत वर्षतक ब्रह्मचर्य पालना ९ मनुष्यका यज्ञ करना १० घोड़ेका यज्ञ करणा ११ जन्म तक यात्रा करणी १२ गायका यज्ञ करना १३. फेर दूसरी जगें कलिमें यह नही करणा लिखा है ॥ विधवाका पुनर्विवाह १ बड़े नाईको बडा हिस्सा देना २ सन्यास लेवी ३ नाइकी विधवासें विवाह करना ४ गोवध करना ५ ॥ तीसरी जगें यह लिखा है २ मामाकी बेटीसें विवाह करना १ गोवध करना २ नरमेध करना ३ अश्वमेध करना ४ मदिरा पिना ४ फिर चौथी जगें यह लिखा है ॥ देवरको पति करना १ स्त्रीका पुनर्विवाह करना २ नीच जातीकी कन्यासें विवाह ३ युद्धमें ब्राह्मणकों मारना ४ समुद्रयात्रा करनी ५ सत्र नामक यज्ञ करना ६ सैन्यासी बनना ७ जन्मतक यात्रामें फिरना ८ गोसव नाम यज्ञमें गोवध करना ९ सौत्रामणी यज्ञमें मदिरा पीना १० अग्निहोत्र ११ मरणप्रायश्चित्त संसर्गदोष १३. दत्त और औरस विना अन्य पुत्र करना १४ शामित्र अर्थात् यज्ञमें पशु मारनेंवाला पुरोहित १५ सोमविक्रय १६. पांचमी जगें यह कलिमें न करना लिखा है. अग्निहोत्र १ गौवध २ संन्यास ३ श्राद्धमें मांसभक्षण ४ देवरको

पति ५. इस मूजब कर्म नही करना और संसर्ग दोष नही और गना पाप होवे सो पाप नही गिनना. संन्यास तथा अग्निहोत्र वेद तथा वर्ण जहां तक रहे तहां तक करना.

उपरके लिखे कर्मोमेंसें कितनेक अब चलते है और कितनेक नही चलते है. जो चलते है वे ये है. मामेकी बेटीसें विवाह करते है १. बडे भाईको बडा हिस्सा देते है २. जावजीव ब्रह्मचारी रहते है ३. सन्यास है ४. अग्निहोत्री ब्राह्मण है ५. समुद्रमें जाते है ६. संसर्गदोष गिनते है ७. महाप्रस्थान अर्थात् जन्म तक यात्रा करते है ८. मांसभक्षणभी गौडब्राह्मण, सारस्वत, कान्यकुब्ज, मैथिल और कितनेक उत्कलभी करते है ९ पंचद्राविडमें यज्ञयागादिक कर्ममें मांसभक्षण करते है १०. कलियुगमें अश्वमेध करणका निषेध है तोभी राजा सवाई जयसिंहे जयपुरमें कराया ११. सोमविक्रय और शामित्र ये १२। १३ कितनीक जगें होते है. इस वास्ते सर्व शास्त्र ब्राह्मणोंनें स्वेछासें जो मन माना सो लिखके बना लीये. जहां कही अडचल पडी वहीं नवा शास्त्र अपने मतवालाका बनाके खडा कर दीया अथवा नव श्लोक बनाके पुराणे शास्त्रोमें मिला दीये. इस वास्ते एक पुराणकी प्रतिमें चार श्लोक अधिक है तो दूसरीमें दश अधिक है. जैसें जैसें काम पडते गये वैसें वैसें बनावटके श्लोक मिलाते गये. श्लोकबद्ध स्मृतियोंमेंभी ऐसी ही गरबड कर दीनी है. और इन पुराणोंमें ऐसे ऐसे कथन लिखे है कि जिसनें सुननेसें श्रोताभी लज्जायमान हो जावे. और सुननेवालेंको अधर्मबुद्धि उत्पन्न हो जावे. और ऐसे ऐसे उतपटंग लिखे है कि कोइ विद्वान सच्चा कर न माने. पुराणोहिमें नही बलके वेदोमें महाहिंसक लज्जनीय पुनरुक्त निरर्थक बहुत वचन है सो उपर लिख आये है. थोडेसें आगेभी लिख दिखाते है.

नमोस्तु सर्वेभ्यो ये केचन पृथ्वी मनु । ये अंतरीक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्वेभ्यो नमः॥ होता यक्षदाश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेता ँ हविहोतयजहोता यक्षसरस्वतीमेषस्य वपाया मे० होता यक्षादिंद्रमृषभस्य वपाया-मे० २१-४१ ॥

यास्मभ्यमरातीयाद्यश्चनो द्वेषते जनः निंद्राद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वतं भस्मसात्कुरु अध्याय ११ । ८० ॥

ये जनेषु मलिम्लवस्तेनासरतस्करावने ॥ यकक्षे वधा यनस्तांस्तदेधामि जंभयोः॥ अध्याय ११-१९ ॥ शुक्लयजुर्वेद संहिता ॥

भावार्थ—प्रथम मंत्रमें सर्पोंकी स्तुति, दूसरे मंत्रमें वपा अर्थात् कलेजेका यज्ञ करना. तीसरेमें शत्रुयोंके नाश करनेका मंत्र है, और चौथेमें चोरांके नाश करनेका वैदिक पुस्तकोंमें जे देवते है और तिनको उपासना प्रार्थना जो है सो गृह्यसूत्रकी दूसरे अध्यायकी चौथी कांडिकाके प्रथम सूत्रमें तर्पण करणेंके देवतायोंकी यादगीरी लिखी है, सो देख लेनी तिसका नमुना नीचे मुजब देते है. प्रजापति १ ब्रह्मा २ वेद ३ देव ४ ऋषि ५ सर्वाणि छन्दांसि ६ ॐकार ७ वषट्कार ८ व्याहृतयः ९ सावित्री १० यज्ञ ११ द्यावापृथिवी १२ अंतरीक्ष १३ अहोरात्र १४ संख्या १५ सिद्ध १६ समुद्र १७ नद्यः १८ गिरयः १९ क्षेत्रौषधिवनस्पतिगंधर्वाप्सरसो २० नाग २१ वयांसि २२ गावा २३ साध्या २४ विप्रा २५ यक्षा २६ रक्षांसि २७. इस समयके बुद्धिमान लोग कितनेक देवतायोंका छोड कोंढ और सर्प, नाग, पर्वत, नदी, वनस्पति, संख्या, व्याहृति,

वषट्कार, यज्ञ, इत्यादिकोंको कदापि देवता न मानेगें, यह भी वेदके सूत्रका कथन है.

तथा प्रार्थना करनेमें शतरुद्रीय कि जिसको रुद्री कहते है यह महामंत्र गिना जाता है. तिसमें शिवका वर्णन है. तिसके थोमेसें वचन आगे लिखते है.

नमोस्तु नीलग्रीवाय, सहस्राक्षाय मीढुषे, विज्यन्धनुकपर्दिनो नमो हिरण्यबाहवे, वनानां पतये निषंगीणस्तेनानां पतये, वंचते परिवंचते तस्कराणां पतये, नक्तं चरद्भ्यः, गिरिचरायतक्षेभ्यः ॥ असौयः ताम्रो अरुणः ॥ अहींश्च सर्वा जंभयं ॥ रथकारेभ्यः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यः श्वपतिभ्यः शितिकंठः कवचिने, आरात्तेगोघ्नउतपूरुषघ्ने, अग्रे वधाय दूरे वधाय, कुल्याय शष्पाय च पर्णाय, सिकताय, व्रजाय, इषुकृद्भ्यः धन्वकृद्भ्यः गव्हरेष्टाय धन्व कृद्भ्यः पशूनां माभेर्मा मारीरीषा मानस्तोकेमनाधि भेषधि विशिखासः असंख्यातानि सहस्राणि ये रुद्राः ये पंथा पथि रक्षये ये तीर्थानि प्रचरंति ये अन्नेषु विविध्यंति, दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोर्दीची र्दशोर्ध्वा यश्च नो द्वेष्टि त मेषां जंभे दधामि वाजश्च मे क्रतुश्च मे यज्ञेन कल्पताम्,ओजश्च मे शं च मे, रयिश्च मे, व्रिहयश्च मे अश्मा च मे, अग्निश्च मे आग्रयणश्चमे स्त्रुयश्च मे आयुर्यज्ञेन कल्पतां ॥ देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नं पुरुषं पशुं ॥ रुद्री नारायणसूक्त ॥

अर्थ—नमस्कार करुं तेरे ताइ तेरा कंठ काला है. तेरे हजार आंख है. फेर तु जलकी वृष्टि करनेवाला है. तेरा धनुष तैयार है. तुं जटावाला है, तेरे स्कंध नपर सुवर्णका अलंकार है. तुं जंगलका राजा है, तुं खड्गधारी है और गुप्त चोरोका सरदार है, तुं दगेबाजी करनेवाला और तुं चोरोंका स्वामी है. रात्रीमें फिरनेवाला पर्वतमें फिरनेवाला और सुतारजी तुं है, फेर तुं लाल और नगवांजी तुं है, सर्व जगेंके सर्पोंका मारणेवालाजी तुं है. गाम्री बनानेवाला तुं है, कुंजार तुं है, लुहारजी तुं है, तुं कुत्ता है और कुत्तोका पालनेवालाजी तुं है. तुं सफेद गलेवाला है और बकतर पहेरे हूये है, फेर तुं गायोंका मारनेवाला और पुरुषोंके मारनेवाला, सन्मुख आवे तिसका मारनेवाला और दूर होवे तिसका मारनेवाला झाडोमें रहनेवाला, और घासमें रहनेवाला तुं है. फेर मैदानमें रहनेवाला, रेतमें रहनेवाला, ढोरोंके टोलेमें तीर बनानेवाला, धनुष बनानेवाला, जंगलमें रहनेवाले जनावरोंको लडाना नही मारना नही मेरे बेटोंको न मारना. तुं वैद्य है. तेरे चोटी नही है. तेरी मूर्तियोंकी गिनती इतनी है. तुं रस्तेमें रहता है कितनेक तीर्थोंमें रहता है. कितनीक रसोइयोंमें विघ्न करते हो. पूर्व दिशमें तुम दश, दक्षिणमें दश, पश्चिममें दश, नत्तरमें दश. और आकाशमेंजी तुम दश हो. जो हमारा शत्रु होवे तिसको तुं दाढमें डालके पोसके चाबेगेर, अन्न दे, यज्ञ करनेकी शक्ति दें, यज्ञ करने योग्य कर, कल्याण दे, धन दे, सठी दे, तुं पत्थर दे, अग्नि दे, आग्रयण नामक यज्ञ करनेकी सामर्थ्य दे, यज्ञका पात्र दे, आयुष दे, यज्ञके काममें नपयोग आवे ऐसा कर, रुद्रीमें रुद्र देवकी प्रार्थना है. तिसमें यज्ञ करने वास्ते सर्व प्रकारकी सामग्री मुजको दे. और वो सामग्री वेरवे वार लिखी है सो आगे लिखते हैं.

इध्मश्च मे बर्हिश्च मे वेदिश्च मे धिष्णियाश्च मे० ॥ शतरुद्रीय ॥

ऊपर मंत्रका मूल बताया है परंतु मंत्रतो दो तीन वर्गतक लंबा है. इससें यज्ञमें काम आवे ऐसी सामग्री महादेवसें मांगी है. इससें ऐसा मालुम होता है कि आगे हिंसक यज्ञ करनेकी बहुत चाल थी.

प्रथमतो इस जगत भरतखंडमें इस अवसर्पिणी कालमें श्री आदीश्वर भगवाननें जैनमत प्रचलित करा तिस पीछे मरीचिके शिष्य कपिलनें अपनें अपनें आसुरी नामा शिष्यको सांख्य मतका उपदेश करा, तब सांख्य मतका षष्टि तंत्र शास्त्र रचा गया. तद पीछे नवमें सुविधिनाथ पुष्पदन्त अर्हतके निर्वाण पीछे जैन धर्म सर्व भरतखंडमें व्यवच्छेद हो गया. तिसके साथ चारों आर्य वेदभी व्यवच्छेद हो गये. तब जो श्रावक ब्राह्मणके नामसें प्रसिद्ध थे वे सर्व मिथ्यादृष्टी हो गये. चारों आर्य वेदोंकी जगे चार अनार्य वेदोंकी श्रुतियां बना दीनी. महाकालासुर शांडील्य ब्राह्मणका रूप धारके क्षीरकदंबक उपाध्यायके पुत्र पर्वतके साथ मिलके महाहिंसारूप अनेक यज्ञ सगर राजासें करवाये. पीछे व्यासजीनें सर्व ऋषि अर्थात् जंगलमें रहनेवाले ब्राह्मणोंसें पूर्वोक्त सर्व श्रुतियां एकठीयां करके ऋग्, यजुः, साम, अथर्वण नामक चार वेद रचें. फेर वैशंपायन व्यासका शिष्य तिसके शिष्य याज्ञवल्क्यनें वैशंपायनके साथ तथा अन्य ऋषियोंके साथ लढके शुक्ल यजुर्वेद बनाया. और व्यासके शिष्य जैमिनीनें मीमांसा सूत्र रचे. पीछे शौनक ऋषिनें वेदा उपर ऋग्विधान सर्वानुक्रम इत्यादिक ग्रंथ रचे है. और शौनक ऋषिके शिष्य आश्वलायननें ऋग्वेदका सारभूत आश्वलायन नामक १२ बारें अध्यायका सूत्र रचा. शौ-

नकस्य तु शिष्योऽनूत् नगवान् आश्वलायनः । कल्पसूत्रं चकाराथं महर्षिगणपूजितः "॥ इसी तरें अकेक शाखाकें अपने अपने वेदों नपर अनेक आचार्योंनें कात्यायन, लाटयायन, आपस्तंब, हिरण्यकेशी प्रमुख अनेक सूत्र रचे है. इन सूत्रोंमेंनी महा जीव हिंसा करनी लिखी है. इन सूत्रोंसे श्लोकबद्ध स्मृतियां बनाई गई है. वे मनु, याज्ञवल्क्य प्रमुख है. मनु १ याज्ञवल्क्य २ विष्णु ३ हरित ४ नशना ५ आंगिरस ६ यम ७ आपस्तंब ८ संवर्त ९ कात्यायन १० बृहस्पति ११ व्यास १२ शंखलिखित १३ दक्ष १४ गौतम १५ शातातप १६ वशिष्ट १७ इत्यादि अन्यनी स्मृतियां नवीन रची गई है. इनमेंनी हिंसा करनी लिखी है. स्मृतियोमें वेद और सूत्र एक सरीखे माने है. और ६ वेदके अंग माने है. तिसमें व्याकरण वेदका मुख कहेलाता है और सूत्र हाथ, ज्योतिष नेत्र, शिक्षा नाक, छंद पग, निरुक्त कानके कहे जाते है. इस तरेंसें वैदिक धर्म चलता रहा क्योंकि पूर्वके ऋषिलोक सर्वज्ञ ठहराये. नवके वचनोंमें कोई तकरार न करे. तिसको नास्तिक, वेदबाह्य, राक्षस इत्यादिक कर देते थे इस वास्ते बहुत वर्ष तक हिंसक यज्ञ याग करनेकी रीती चलती रही. जब बीच बीचमें जैनमतका जोर बढा तब लोगोंकी कर्म अर्थात् वैदिक हिंसक यज्ञोंसें श्रद्धा नठ गई. लोगोंकों हिंसा बुरी लगी तब विचार करा कि हजारों देव और हजारो अनुष्ठान और हिंसा ये ठीक नही तिससें ब्रह्मजिज्ञासा नत्पन्न हुई. तिस वास्ते नपनिषद बनाये और तिनमें यह वचन दाखल करे.

अधीहि भगवन् ब्रह्मेति ॥ नकर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमाशुः ॥ ब्रह्मविदाप्नोति परम् तद्वोजिज्ञासस्व यतो वा इमानि भूतानि जायंते ॥ अथातो

ब्रह्मजिज्ञासा ॥ इत्यादि ॥

फेरतो भी लोगोंकों संतोष न आया तब ईश्वरवादीयोंका मत निकला. यद्यपि इनोंनें वेदोकी निंदा अपने सूत्रोंमें नहीं करी तो-भी इनके मत वेदसें वहुत विरुद्ध है. न्यायका कर्त्ता गौतम १ योगका कर्त्ता पतंजलि २ वेदांतका कर्त्ता व्यास ३ वैशेषिकका कर्त्ता कणाद ४ इनोंनें एक ईश्वरकों एक माना और वेदोक्त देवताकों नही माना. इनोंके मत चलनेंसें वैदिक कर्मकांड वहुत ढीला पड गया. इनोंने अपनें मतके शास्त्रोंमें शम, दम, उपरति, तितिक्षा समाधि, श्रद्धा, नित्यानित्य वस्तुका विवेक इत्यादिक साधन लिखके लोगोंकी श्रद्धा दृढ करी. इनोंनें ज्ञानहीकों मुख्य साधन माना परंतु तीर्थादिकोंकों मानना छोड दीया. जैसें शिवगीतामें लिखा है.—

" तनुं त्यजंति वा काश्यां श्वपचस्य गृहेथवा। ज्ञानसंप्राप्तसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥ न कर्मणामनुष्टानैर्लभ्यते तपसापि वा। कैवल्यं लभते मर्त्यः किं तु ज्ञानेन केवलं " शिवगीता जो काशीमें चांडालकें घरमें जीसका शरीर छुटे सो ज्ञानप्राप्तिके समयमें मुक्त हो जाता है. कर्मका अनुष्ठानसें और तपसें मनुष्य कैवल्यकुं प्राप्त होता नहीं किंतु ज्ञानसें केवलकुं प्राप्त होता है.

ज्ञानपंथ वालोंने वर्णाश्रम और कर्मकांडका बहुत उपहास करा. कितनेक वर्षों तक यह ज्ञानमार्ग चला. जब जैनबौधमतका जोर बढा तब सर्व प्रायें लुप्त हो गये. फेर शंकरस्वामीनें अद्वैतपंथकों फिर बढाया. पीछे भक्तिमार्ग वालोंका पंथ निकाला. पीछे उपासना मार्ग उत्पन्न हूआ. अठारह पुराण और उपपुराण ये उपासना मार्गके प्रतिपादक है. तिसके अंदर शैव वैष्णव ये दो संप्रदाय है, सो बहुत वधी हूइ है. तिनमें शैव मार्ग पुरातन है. और

वैष्णव मार्ग तिसके पीछे निकला है. और वैष्णवमतमें मुख्य चार संप्रदाय है. रामानुज १ निंबार्क २ मध्व ३ विष्णुस्वामी ४. इन चारों जणानें शंकरस्वामीका अद्वैतमत स्थापन करा हूआ खंमन करके द्वैत मत चलाया. इनोने बहुत आधार पुराणोंका लीना, लीना, और श्रुतिके आधार वास्ते इनोंने कितनीक नवी नुपनिषद बनाइ है.

अनेक संप्रदायकी उत्पत्ति.

जैसें रामतापनी, गोपालतापनी, नृसिंहतापनी इत्यादि बना लीनी. परंतु असली वेदके मंत्रज्ञागमें नुपासना विषयक कुछज्ञी मालुम नहीं होता. तिसमें जो नुपासना है सो अग्निद्वारा और पांच ज्ञूतादिककी है. परंतु पुराणोंके अवतारोंकी नहीं. पुराणोंके अवतारोंकी नुपासना तो पुराण हुआ पीछे चली है.

उपास्य देवताकी जुदी जुदी मान्यता.

आगे नुपासनाके इतने फाले फूटे है जिनकी गिनती नही. कोइ शिवमार्गी, कोइ विष्णु, कोइ गणपती, कोइ राधाकृष्ण, कोइ बालकृष्ण, कोइ हनुमान इत्यादि अपणे अपणे नुपास्य देवतायोंकों परब्रह्म कहते है, और इन देवतायोंकों नुंचा नीचा गिनता है. तद्यथा॥ “गणेशं पूजयेद्यस्तुविघ्नस्तस्यनबाध्यते। आरोग्यार्थे च ये सूर्यं धर्ममोक्षाय माधवं॥ शिवं धर्मार्थमोक्षाय चतुर्वर्गाय चंमिकां॥ ज्ञावार्थ—जे गणेशकी पूजा करे नुनकुं विघ्न बाधा करते नहीं आरोग्यके वास्ते सूर्यकी, धर्म तथा मोक्षके वास्ते विष्णुकी धर्म, अर्थ, और मोक्षके वास्ते शिव और चतुर्वर्गके वास्ते चंमीकी पूजा करना. पीछे अनेक संप्रदाय वालोंने अपने अपने संप्रदायके चिन्ह ठहराये. शिवमार्गीयोंने ज्ञस्म, रुद्राक्ष, बाणलिंग, इत्यादिक रचे और वैष्णवोंने तप्त मुद्रा, तुलसी, गोपीचंदन, शालिग्राम इत्यादिक चिन्ह बनाये. वे चंदन विष्णुपादा-

कृति करते है, कोइ श्रीका चिन्ह धारण करता है. इन दोनो पंथोका परस्पर द्वेष बहुत बढा तब एकने दूसरेके विरुद्ध बहुत शास्त्र लिखे वैष्णवोने शैवोंकी और शैवोंने वैष्णवोंकी निंदा लिखी. पुराण और ऋषियोंकेभी दूषण लिखे. कितनेक पुराण तामसी और कितनेक सात्विक ठहराये वे ऐसे है. "सत्यं पाराशरं वाक्यं सत्यं वाल्मिकमेव च। व्यासवाक्यं कचित् सत्यं असत्यं जैमनीवचः ॥ सात्विका मोक्षदा प्रोक्ता राजसा स्वर्गदा शुभा। तथैव तामसा देवी निरयप्राप्तिहेतवे ॥ वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभं। गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं राजसं स्मृतम् ॥ अर्थ—पाराशर वचन सत्य है, वाल्मीकका वचन बी सत्यहै. व्यासका वचन कोइकज सच्चा है और जैमिनिका वचन असत्य है. हे देवी, सात्विक मोक्षदायक है, राजसी स्वर्गकुं देती है और तामसी नरकनी प्राप्तिका हेतु है, वैष्णव पुराण, नारदी पुराण और भागवत पुराण ए सात्विक है. गरुड पुराण, और पद्मपुराण तथा वराह पुराण राजस है.

इत्यादि एकने दूसरेके दूषण काढे है वे ये है. ॥ वैष्णवमतमें ॥ ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि। वर्जयेत्तादृशं देविमद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥ वेदांतचिंतामणौ ॥ त्रिपुंड्रं भंङकल्पानां शूद्राणां च विधीयते। त्रिपुंड्धारणाद् विप्रः पतितः स्यान्न संशयः ॥ २ ॥ यो ददाति द्विजातिभ्यश्चंदनं गोपिमर्दितं। अपि सर्षपमात्रेण पुनात्यासप्तमं कुलं ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वपुंड्रविहीनस्य स्मशानसदृशं मुखं। अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥ ४ ॥ यज्ञो दानं तपश्चैव स्वाध्यायः पितृतर्पणं। व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुंड्रं विना कृतं ॥ ५ ॥ शालिग्रामोद्भवो देवोदेवो द्वारावतीभवः। उभयोः संगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥ ६ ॥ शालिग्रामोद्भवं देवं शैलं चक्रांकमैन्दितं। यत्रापि नीयते तत्र वाराणस्यां शताधिकं ॥ ७ ॥ म्ले-

छदेशे शुचौ वापि चक्रांको यत्र तिष्ठति । वाराणस्यां यवाधिक्यं समंताद्योजनत्रयं ॥ ७ ॥ यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवताः । यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसीं तां नमाम्यहं ॥ ए ॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा । वासुदेवादयो देवा वसंति तुलसीदले ॥ १० ॥ तुलसीकाष्टमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः दृष्ट्वा नश्यंति दूरेण वातधूतं यथा रजः ॥ ११ ॥ तुलसीमालिकां धृत्वा यो भुंक्ते गिरिनंदिनि । सिक्थे सिक्थे स लभते वाजपेयफलं शुभं ॥ १२ ॥ तुलसीकाष्टमालां यो धृत्वा स्नानं समाचरेत् । पुष्करे च प्रयागे च स्नातं तेन मुनीश्वर ॥ १३ ॥ आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः । इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ १४ ॥ चक्रलांछनहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत् । क्रियमाणं च यत्कर्म वैष्णवानां विशेषतः ॥ १५ ॥ कृष्णमंत्रविहीनस्य पापिष्ठस्य दुरात्मनः । श्वानविष्टासमं चान्नं जलं च मदिरासमं ॥ १६ ॥

कुलीन और विद्वान् ब्राह्मण जो भस्मकु धारण करते है. सो ब्राह्मणकुं मद्यका उच्छिष्ट घमाकी माफक छोड देना चाहिए १. वेदांत चिंतामणिमें लिखता है कि–चंड कल्प और शूद्रलोककुं त्रिपुंड् धारण करनेसें ब्राह्मण पतित हो जाता है. इसमे कुछबी संशय नही है. २. जो ब्राह्मणोकुं गोपीचंदन आपते है सो गोपीचंदन मात्र सर्षवका दाणा जैसे होवे तोभी सात कुलकुं पवित्र करते है. ३. जे ऊर्ध्वपुंड्र (उभातीलक) सें रहित है, तिस का मुख श्मशान जैसा हे, तिनको देखनेंसे सूर्यका दर्शन करना चाहिए ४. बुद्धि, दान. तप, स्वाध्याय और पितृतर्पण ओ सब ऊर्ध्वपुंड्र विना करनेसें व्यर्थ होता है. ५ शालिग्राममें उत्पन्न होने वाले देव और द्धारिकाका देव ओ दोनुंका जिसमें संगम होवे, तिसमें मुक्ति होती है, इसमें कुछभी संशय नहो है. ६ शालिग्राम

कृति करते है, कोइ श्रीका चिन्ह धारण करता है. इन दोनो पंथोका परस्पर द्वेष बहुत बढा तब एकने दूसरेके विरुद्ध बहुत शास्त्र लिखे वैष्णवोने शैवोंकी और शैवोंने वैष्णवोंकी निंदा लिखी. पुराण और ऋषियोंकेजी दूषण लिखे. कितनेक पुराण तामसी और कितनेक सात्विक ठहराये वे ऐसे है. "सत्यं पाराशरं वाक्यं सत्यं वाल्मिकमेव च। व्यासवाक्यं क्वचित् सत्यं असत्यं जैमनीवचः ॥ सात्विका मोक्षदा प्रोक्ता राजसा स्वर्गदा शुन्ना। तथैव तामसा देवी निरयप्राप्तिहेतवे ॥ वैष्णवं नारदीयं च तथा न्नागवतं शुन्नं। गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं राजसं स्मृतम् ॥ अर्थ—पाराशर वचन सत्य है, वाल्मीकका वचन बी सत्यहै. व्यासका वचन कोइकज सच्चा है और जैमिनिका वचन असत्य है. हे देवी, सात्विक मोक्षदायक है, राजसी स्वर्गकुं देती है और तामसी नरकनी प्राप्तिका हेतु है, वैष्णव पुराण, नारदी पुराण और न्नागवत पुराण ए सात्विक है. गरुड पुराण, और पद्मपुराण तथा वराह पुराण राजस है.

इत्यादि एकने दूसरेके दूषण काढे है वे ये है. ॥ वैष्णवमतमें ॥ ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् न्नस्मधारी न्नवेद्यदि। वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योछिष्टं घटं यथा ॥ वेदांतचिंतामणौ ॥ त्रिपुंड्रश्वंड्कल्पानां शूद्राणां च विधीयते। त्रिपुंड्रधारणाद् विप्रः पतितः स्यान्न संशयः ॥ २ ॥ यो ददाति द्विजातिन्न्यश्चंदनं गोपिमर्दितं। अपि सर्षपमात्रेण पुनात्यासप्तमं कुलं ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वपुंड्रविहीनस्य स्मशानसदृशं मुखं। अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥ ४ ॥ प्रज्ञा दानं तपश्चैव स्वाध्यायः पितृतर्पणं। व्यर्थं न्नवति तत्सर्वमूर्ध्वपुंड्रं विना कृतं ॥ ५ ॥ शालिग्रामोद्भवो देवोदेवो द्वारावतीन्नवः। उन्नयोः संगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥ ६ ॥ शालिग्रामोद्भवं देवं शैलं चक्रांकमंकितं। यत्रापि नीयते तत्र वाराणस्यां शताधिकं ॥ ७ ॥ म्ले-

द्देशे शुचौ वापि चक्रांको यत्र तिष्ठति । वाराणस्यां यवाधिक्यं समंताद्योजनत्रयं ॥ ८ ॥ यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवताः । यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसीं तां नमाम्यहं ॥ ए ॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा । वासुदेवादयो देवा वसंति तुलसीदले ॥ १० ॥ तुलसीकाष्टमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः दृष्ट्वा नश्यंति दूरेण वातधूतं यथा रजः ॥ ११ ॥ तुलसीमालिकां धृत्वा यो भुंक्ते गिरिनंदिनि । सिक्थे सिक्थे स लन्नते वाजपेयफलं शुन्नं ॥ १२ ॥ तुलसीकाष्टमालां यो धृत्वा स्नानं समाचरेत् । पुष्करे च प्रयागे च स्नातं तेन मुनीश्वर ॥ १३ ॥ आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः । इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ १४ ॥ चक्र लांछनहीनस्य विप्रस्य विफलं न्नवेत् । क्रियमाणं च यत्कर्म वैष्णवानां विशेषतः ॥ १५ ॥ कृष्णमंत्रविहीनस्य पापिष्ठस्य पुरात्मनः । श्वानविष्टासमं चान्नं जलं च मदिरासमं ॥ १६ ॥

कुलीन और विद्वान् ब्राह्मण जो न्नस्मकु धारण करते है, सो ब्राह्मणकुं मद्यका उच्छिष्ट घमाकी माफक गेड देना चाहिए १. वेदांत चिंतामणिमें लिखता है कि—चंड कल्प और शूद्रलोककुं त्रिपुंड्र धारण करनेसें ब्राह्मण पतित हो जाता है. इसमे कुछनी संशय नही है. २. जो ब्राह्मणोकुं गोपीचंदन आपते है सो गोपीचंदन मात्र सर्षवका दाणा जैसे होवे तोन्नी सात कुलकुं पवित्र करते है. ३. जे ऊर्ध्वपुंड्र (उन्नातीलक) सें रहित है, तिस का मुख श्मशान जैसा हे, तिनको देखनेंसे सूर्यका दर्शन करना चाहिए ४. बुद्धि, दान, तप, स्वाध्याय और पितृतर्पण ओ सब ऊर्ध्वपुंड्र विना करनेसें व्यर्थ होता है. ५ शालिग्राममें उत्पन्न होने वाले देव और द्वारिकाका देव ओ दोनुंका जिसमें संगम होवे, तिसमें मुक्ति होती है, इसमें कुछन्नी संशय नही है. ६ शालिग्राम

देव और चक्रांकमंम्डित शैल सो जिस स्थानमें ले जाय, सो स्थान काशीसेंभी सौगणे अधिक है. ७ म्लेछके देशमें अथवा पवित्र देशमें जिस स्थानमें चक्रांक रहते है, सो वाराणसीका भ्रण यो जनसेंभी अधिक है. ८ जिसका मूलमें सर्व तीर्थो है जिसका मध्यमें सर्व देवता है, और जिसका अग्रभागमें सर्व वेद है एसी तुलसीकुं में नमस्कार करता हुं. ९ पुष्करादि तीर्थ, गंगा प्रमुख नदीयां और वासुदेव प्रमुख देवता तुलसीका पत्रमें रहेते है. १० पवनसें जैसें रज दूर होता है, तैसे तुलसीकाष्टकी माला देख कर यमराजका दूत दूरसें नाशते है. ११ हे पार्वति, जे पुरुष तुलसीकी माला धारण करके भोजन करतें है, सो पुरुष एक एक ग्रासे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करते है. १२. हे मुनीश्वर, जो पुरुष तुलसीकाष्टकीमाला धारण करके स्नान करते है, सो पुरुष पुष्कर ओर प्रयाग तीर्थमें स्नान करते है. १३ सर्व शास्त्रो देख कर और इसका पुनः पुनः विचार करनेसें एसा सिद्ध होता है के सर्वदा नारायणका ध्यान करना चाहीये. १४ जो ब्राह्मण चक्रका लांछनसे रहित है, उसका क्रियमाण कर्म सब निष्फल होता है वैष्णवोसें ओ विशेष जाणना " १५ जो पुरुष विष्णुका मंत्रसे रहित होता है, ओ पापी दुरात्माका अन्न श्वानकी विष्टा जैसा और उसका जलपान मदिरा जेसा समजना १६

शैवमतमें ॥ विना भस्मत्रिपुंड्रेण विना रुद्राक्षमालया । पूजितोऽपि महादेवो न तस्य फलदो भवेत् ॥ १ ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा चोपपातकैः । भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेंधनं ॥ १ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । शिवलिंगे च संत्येव तानि सर्वाणि नारद ॥ ३ ॥ महेशाराधनादन्यन्नास्ति सर्वार्थदायकं । अतः सदा सावधानं पूजनीयो महेश्वरः ॥ ४ ॥

अमितान्यपि पापानि नश्यंति शिवपूजया । तावत्पापानि तिष्ठंति न यावच्छिवपूजनं ॥ ५ ॥ लिंगार्चनविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः । ततः सर्वार्थसिद्ध्यर्थं लिंगपूजा विधीयते ॥ ६ ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां च कलौ पार्थिवमेव हि । लिंगं महीजं संपूज्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥ दर्शनाद् बिल्ववृक्षस्य स्पर्शनाद् वंदनादपि । अहोरात्रकृतं पापं नश्यति नात्र संशयः ॥ ८ ॥ अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकं । कुर्वन् विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवं ॥ ९ ॥ देवाधिदेवः सर्वेषां त्र्यंबकस्त्रिपुरांतकः । तस्यैवानुचराः सर्वे ब्रह्मविष्णवादयः सुराः ॥ १० ॥ विहाय सांबमीशानं यजंते देवतांतरं । ते महाघोरसंसारे पतंति परिमोहिताः ॥ ११ ॥ ते धन्याः शिवपादपूजनपरा अन्यो न धन्यो जनः सत्यं सत्यमिहोच्यते मुनिवगः सत्यं पुनः सर्वथा ॥ १२ ॥ शंखचक्रे तापयित्वा यस्य देहं प्रदह्यते । स जीवन्नकुपणस्त्याज्यः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ १३ ॥ यस्तु संतप्तमुद्राभिर्लिंगांकिततनुर्नरः । स सर्वयातनाभोगी चांडालो जन्मकोटिषु ॥ १४ ॥ भक्त्या पंचाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत् । सोऽपि गच्छेच्छिवस्थानं शिवमंत्रस्य गौरवात् ॥ १५ ॥ पंचाक्षरेण मंत्रेण बिल्वपत्रैः शिवार्चनं । करोति श्रद्धया युक्तो स गच्छेदेश्वरं पदं ॥ १६ ॥

शैवमतमें एसा लिखता है. भस्मका त्रिपुंड्र और रुद्राक्षकी माला विना शंकरकी पूजा करनेवालाकुं शंकर कुछभी फल नहीं आपते है. १ महापातक और उपपातक वाले पुरुषभी जो भस्मस्नान करे तब उसका पाप जैसे अग्नि इंधणाकुं दहन करे ऐसें दहन होता है. २ हे नारद, पृथ्वीमें जितना तीर्थ और पवित्र स्थान है, ते सर्व शिवका लिंगमें रहते है. ३ शंकरका आराधन जैसा सर्व अर्थ आपने वाला दुसरा नही है, तिसवास्ते सावधान होकर शंकरकी पूजा करनी चाइए ४ शिवपूजा करनेसें

अपरिमित पाप नष्ट हो जाता है. जबतक शिवका पूजन न होते है, तब लग पाप रेहेते है. ५ जो पुरुष शिवलिंगकी पूजासें रहित है उसकी सब क्रिया निष्फल होती है, तिसवास्ते सर्वअर्थकी सि-द्धिका अर्थ लिंगपूजा करनी चाइए ६ सर्ववर्णाश्रमवाले लोक कलि-युगमें पार्थिवलिंग पूजनेसें शंकरकी सायुज्यमुक्ति पामते है. ७. बीलीका वृक्ष देखनेसें स्पर्शकरनेसें और वंदन करनेसें अहोरात्रका पाप नाश पामते है. उसमें कुछभी संशय है नही. ८ जो ब्राह्मण रुद्राक्ष धारण कर्या विना जो कुछ वेदका कर्म करते है सो ब्राह्मण मोहसें नरकमें पमता है. ए तीन लोचनवाले और त्रिपुरका नाश करनेवाले शंकर सर्व देवोका देव है. ब्रह्मा विष्णु प्रमुख सर्व देवता इसकाज अनुचर है. १० सांब शंकरकुं छोड कर जो दुसरा देवता-की पूजा करते है, सो मोहसें घोर संसारमें पमते है. ११ हे मु-निवर, में सत्य केहेता हुं के शंकरका चरणकी पूजा करनेमें जो तत्पर होवे सो धन्य है, दुसरा धन्य नही है. १२ शंख और चक्र तपा कर जिसका देह दग्ध होता है, सो जीवता शब जैसा है. सर्व धर्मसें बाह्य सो पुरुष त्याग करनेकुं योग्य है. १३ जिसका शरीर तप्त मुद्रासें अंकित है, सो सर्व पीमाका भोगी होकर कोटी जन्ममें चांडाल होता है. १४ जो पुरुष भक्तिसें पंचाक्षर मंत्र साथ एक दफे शिवकी पूजा करते है, सो पुरुष शिवमंत्रका गौरवसें शिवका धाममें जाता है. १५ जो पुरुष श्रद्धासें पंचाक्षर मंत्र स-हित बीली पत्रसें शिवपूजा करते है, सो पुरुष शाश्वत स्थानमें जाते है. १६

तथा वल्लभाचार्यने इतनें शास्त्र सच्चे माने है—"वेदाः श्री-कृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि । समाधिभाषा व्यासस्य प्र-माणं तच्चतुष्टयं "॥ उत्तरोत्तरतो बलवान्—अर्थ—वेद, गीता, ब्रह्म-

सूत्र और भागवत ये चार एक एकसें बलवान अधिक माननें योग्य है.

और स्वामीनारायण सहजानंदनें अपनी लिखी शिक्षापत्रीमें कितनेक शास्त्रोंकों सच्चे प्रमाणिक ठहराये है तिनके नाम— "वेदाश्च व्याससूत्राणि श्रीमद्भागवताभिधं । पुराणं भारते तु श्रीविष्णोर्नामसहस्रकं ॥ ९३ ॥ धर्मशास्त्रांतर्गता च याज्ञवल्क्यऋषेः स्मृतिः । एतान्यष्ट ममेष्टानि सच्छास्त्राणि भवंति हि ॥ ९४ ॥ शिक्षापत्रिकाश्लोकः ॥ वेद, व्याससूत्र, श्रीमद्भागवत भारतमें श्रीविष्णुसहस्रनाम, पुराण धर्मशास्त्रमें याज्ञवल्क्य स्मृति ए आठ सत् शास्त्र हमारे इष्ट है. ९३–९४

विविध मतो- की उत्पत्ति.

इस तरें शास्त्र जूठे और सच्चे माने अनेक संप्रदाय निकाले. ऐसा घोर अंधकार भरतखंडके लोगोंके वास्ते खडा हूआ कि कोइभी सच्चे जूठे पंथ और शास्त्रोंका निर्णय नही कर सकता है. ऐसे घोरांधकारमें आकुल व्याकुल होकर भक्तिमार्गवालें तथा कबीरजी नानकसाहिब दादू प्रमुख अनेक जनोंनें मूर्तिपूजन छोड दिया, और अपनी बुद्धिके अनुसारे अपणें अपणें देशकी भाषामें भाषाग्रंथ रचे, और ब्राह्मणोंके सर्व मतों छोड दिया, वर्णाश्रमकी मर्यादाभी तोड दीनी. तिनमें नानकसाहिबका पंथ बहुत फेला कारणकि नानकसाहिबसें पीछे दशमें पाट उपर गोविंदसिंहजी हूये, तिनके काल करा पीछे मुसलमानोका राज्य मंद हो गया, और गुरु गोविंदसिंहके शिखोंका जोर राजतौरसें बढा. इतनेंहीमें लाहोरमें रणजीतसिंह राजा हो गया, तिसके राजतेजसें नानकसाहिबके पंथवालोंकी बहुत मदद मीली. ब्राह्मण, क्षत्रिय, रोडे, जाट प्रमुख लाखों आदमीयोंने शिर उपर केश रखाके गुरुके शिख बन गये. इनके स-

तमें मूर्तिपूजन नही. अपणें दशों गुरुयोंकी चित्रकी मूर्तियों तो रखते है परंतु मंदिरमें मूर्ति बनाके नहि पूजतेहै, परंतु गुरुके बनाये ग्रंथ साहिबकी बहुत विनय करते है. इनके मूल ग्रंथमें ईश्वरकी महिमा बहुत करी है और इस मतवाले साधुयोंकी बहुत भक्ति करते है, और हरेक भूखेको खानेकाभी देते है. इनके ग्रंथमें जीवहिंसा और मांस मदिरा खाना पीना निषेध करा है. परंतु कितनेक पापी शिष्य इस कामकों करतभी है.

नानकसाहिबके शिख अनुमानसे इग्यारह लाखके लग भग होंगे. ये लोक गुरुके ग्रंथ समान और किसी पुस्तकको उत्तम नही समजते है. और यह ग्रंथ साहिब साधारणसी पंजाबी भाषामें नानक गुरुके शिष्य अंगद साहिबने रचा है, और गुरु अर्जुन साहिबने कागजों उपर लिखा है. इस मतके गुरु दशाही क्षत्रिय होयें है. ब्राह्मण, मुसलमान, जैनी, सूफी, मुसलमान फकीर, जिनकों मारफतवालेभी कहते है इनके कुछ कुछ मतकी बातें लेकर रचा है. इनके मतवाले ब्राह्मणोंका बहुत आदर सन्मान नही करते है, जेकर धर्मार्थ जिमणवारभी करते है तो गुरुके शिष्योंकों भोजन कराते है.

कुकामतका स्वरूप.

इनके मतमेंसें एक रामसिंह नामा गुरुके शिष्यनें लोदीहानेंसे दश कोसके अंतरे भइणी गामके रहने वालेने एक नया पंथ निकाला है. तिसमें इतनी वस्तुका निषेध है—मूर्ति नहीं पूजनी १, जीवहिंसा नही करनी २, मांस नही खाना ३, मदिरा नही पीना ४, जूठ नही बोलना ५, चौरी नही करनी ६, परस्त्रीगमन नही करना ७, जूया नही खेलना८, दिन प्रतिमस्तकके केशां सहित स्नान करणा ९, ब्राह्मणसें विवाह नही करना १०, विवाहमें सवा रुपैया खरच करना ११; जबसें

इस पंथके चलाने वाले जाइरामसिंहको सरकार अंग्रेज पकडके ब्रह्माके देशमें ले गये है तबसें यह मत सुस्त पड गया है. तोजी एक लाखके करीब आदमी होंगे. लोकोनें इस पंथका नाम कूका रखा है. क्योंकि इस मतके जजन बोलने वाले कूक मारते है. इन मतमें ब्राह्मणोंका कदर है नही.

हमारे सुननेमें आया है कि पंजाब देशमें एक वटाला नामका नगर है. तिसका रहनेवाला एक उद्यालनेमि नामक ब्राह्मण काशीमें वेदांत शास्त्र पढा और रामघाट उपर जाकर स्नान करती हूइ नग्नस्त्रियोंकें अंगोपांग देखनेका लालची बहुत हुआ. विद्यागुरुनें मने करा तोजी न माना, तब गुरुने अपनी शालासें निकाल दीया,

वेदांतिओका प्रचार.

तब उद्यालनेमिनें क्रोधित होकर सर्व उपनिषद् और वाशिष्ट प्रमुख वेदांत ग्रंथोकी जाषा करके पंजाब देशमें ब्राह्मणसें लेकर जाट, चमार, जंगीयो तक वेदांत शास्त्र पढाया, ब्राह्मणोंकी बांधी सर्व मर्यादा तोड गेरी. इधर दिल्लीकेपास निश्चलदास दादूपंथीने विचारसागर और वृत्तिप्रजाकर ये दो वेदांतके ग्रंथ जाषामें रचके छपावके प्रसिद्ध करे. इनको वांचके कितनेक लोक वेदांती हो गये है. तिनमें कितकेकतो चालचलनके अच्छे है, परंतु दुराचारी नास्तिकोंके तुल्य बहुत हो गये है. अमृसरमें कितनेक निर्मलें फकीर और पुरुष स्त्रियां बडे दुराचारी है. मांस मदिराजी खाते पीते है. और नानकजीके उदासी साधुजी बहुत वेदांती हो गये है. तथा चकुकटे १ रोडे २ गुलाबदासी ये नास्तिकमती निकले है. तथा गुजरात देशमें स्वामीनारायणका एक नवा पंथ निकला है.

अब जो कोइ सच्चे धर्मको अंगिकार करा चाहे तो इन

मतोंमेंसें कौनसे मतको माने यह निर्णय करना बहुत मुश्किल है.

वेदोंका यज्ञोंमें हिंसा बहोतहै.

अब हम उपर लिखेकों फेर शोचते है वेदिक धर्मकी प्रबलतामें और वेदोंमें हिंसा बाबत कुछ तकरारही नही है. जानवरोंकी दया वेदोंमें नही, इतनाही नही बलकी मनुष्योंकि बलि देनी और नरमेध यज्ञकी बडी बडी विधिके भेद लिखे है.

और नरमेध जो हूए है तिनकी कथाभी वेदमें जगे जगे लिखी है. ऐतरेय ब्राह्मणमें शुनःशेपाख्यान है सो इसीतरांका है. भागवतमें जडभरतकी कथाभी इसी तरेंकी है. वैदीक धर्मकी प्रबलताके कालमें वैदिक धर्मवालोंके मनमें संशयभी नही था कि हिंसा पाप होता है की नही. शाक भाजीके काटनेमें जैसे इस कालमें बहुत लोक पाप नही समजते है तैसे तिस कालमें जनावरोंके वास्ते समजते थे. तिस कालमें तिस तरेंका व्यवहार था. दैवकार्यमें और पितृकार्यमें जनावर पशुका मारना इस बातको पुण्य समजते थे. केवल स्वर्ग जानेका साधन इसीको समजते थे. और मनुष्य अपने निर्वाहके वास्ते जीवांको मारके तिसका मांस खाना इसकों विधि मानते थे. इसमें पुण्य वा पाप कुछ नही समजते थे. इस तरेंका वेदका अनुशासन है. जब पिछली वेर जैनबौधमतका जोर बढा तब हिंसा अहिंसाका बडा झगडा खडा हूआ तिस वखत जैनबौधका बहुत लोगोंके दिलमें असर हूआ. तिस वखतमें महाभारत ग्रंथ बना मालुम होता है, क्योंकि महाभारतमें लिखा है कि

महाभारतकी उत्पत्तिका काल.

बुद्धरूपं समास्थाय सर्वरूपपरायणः ।
मोहयन् सर्व भूतानि तस्मै मोहात्मने नमः ॥ ८६ ॥

भीष्मस्तवराज भारते. ॥ अर्थ—सर्व रूपोंमें परायण ऐसा विष्णु बुद्धका रूप लेकर मोह करता है, ते मोहात्माकु नमस्कार है ॥ ७६

तथा ब्राह्मणोंनें वेद माननेका अभिमानतो नही छोड्याथा. परंतु जैन बौद्धमतका उपदेश इनके मनमें अछी तरें प्रवेश कर गयाथा. तिसं वास्ते भारतमें हिंसा सो क्या है. अहिंसा यह क्या है. मांस खाना के नही खाना इन बातोंमें बहु तकरार और प्रश्नोत्तर लिखे है. और तिन सर्वका तात्पर्य यह मालुम होता है कि वेदने जो कही हिंसा सो करणी, अन्यत्र अहिंसा पालनी, वेदविहित हिंसामें पाप नही,

भारतमें हिंसाका निषेध-

जैसे मुसलमान लोग कुरवाने ईद जिसको बकरी ईद कहतें है तिस दिन अवश्य जानवर मारके परमेश्वरको बलिदान देते है. सो ईद जिलहिज्ज महीनेमें आती है. जिलहिज अर्थात् मुसलमानोंकी जात्राका ठिकाणा जो मक्का तहां जानेका महिना, जो मुसलमान मक्के जा आता है तिसको हाजी कहते है. और जो जात्राकों जाते है वे तहां जात्रामें जीव मारके बलिदान करते है. और जिस वखत पशुका वध करते है तिस वखत बिसमिल्लाह कहके करते है. बिसमिल्लाह इस शब्दका यह अर्थ होता है, परमेश्वर दयालु है तथा शुरु करता हुं अल्लाहके नामसे. और बिसमिल्लाह कह विना जो जीव मारा जाता है तिसको वे लोक हराम कहते है, तिस पशुका भक्षण करना अपवित्र गिणते है. और बिसमिल्लाह कहके पशु वध करा जावे तो तिसका भक्षण करता हलाल अर्थात् पवित्र गिणते है.

हिंसामें मुसलमान लोगका दृष्टांत,

इसी तरें ब्राह्मण लोगोंमें जहां वैदिक कर्म होता है तहां

वेदमंत्रोसें आप्यायन संस्कार, प्रोक्षण संस्कार, उपाकरण संस्कार जिस पशुको हुआ हो तिसका मांस हव्य तथा कव्य समजके भक्षण करनेका निषेध नही मानते थे.

इस तरेंका वैदिक मत था इस वास्ते वेद हिंसक शास्त्र है बिचारे बेगुनाह, अनाथ. अशरण, कंगाल, गरीब, कल्याणास्पद, ऐसे जिवांको मारणा और मांसभक्षण करणा और धर्म समजना यह मंदबुद्धियोंका काम है. और जिस पुस्तकमें हिंसा करणेका उपदेश होवे और मांस मदिराका बलिदान करना लिखा होवे वे शास्त्रभी जूठा है, और वे देवतेभी मिथ्यादृष्टि अनार्य है, और तिस शास्त्रका प्रथम उपदेशकभी निर्दय, निर्लज और अज्ञानी, मांसमदिराका स्वादक और अन्यायशिरोमणि है. परमेश्वरके वचनतो करुणारसभरे, सत्यशील करके संयुक्त,निर्हिंसक तत्वबोधक, सर्व जीवांके हितकारक, पूर्वापर विरोध रहित, प्रमाण युक्ति संपन्न. अनेकांत स्वरूपस्यात् पद करी लांछित, परमार्थ और लौकिक व्यवहारसे अविरुद्ध इत्यादि अनेक गुणालंकृत भगवान अर्हंत परमेश्वरके वचन है. ये पुर्वोक्त लक्षण वेदोंमें नही. लक्षण तो दूर रहे, ऐसे ऐसे बेमर्याद वचन वेदोंमें है कि जो आज कालमें निच लोक होलीमें भी ऐसे निर्लज वचन नही बोलते है. जो कोई ब्राह्मणादि दया धर्म मानते है और प्ररूपते है वे वेदांके विरोधि है. क्योंकी वेदोंमें दयाधर्मकी मुशकभी नही है. जेकर वेदोंमें अहिंसक धर्मकी महिमा होती तो सौगतको काहेको कहेते " अहिंसा कथं धर्मो भवितु मर्हति " अर्थात् अहिंसा कैसे धर्म हो सकता है, अपि तु हिंसाही धर्म हो शकता है इसमें यह सिद्ध होता है कि शंकरस्वामीभी गाय, बलद, बकरा, ऊंट, सूयर, प्रमुख जीवांकों वे-

वेद हिंसक ठरते है,

वोक्त रीतीसें मारके इनका मांस कलेजा आदि नक्षण करनेमें धर्म समजता था.

उपर लिखे मुजब वेद हिंसक शास्त्र है, और जो कहते है वेदोंमें हिंसा नही वो हम सत्य नही समजते है. क्या शंकरस्वामी, उव्हट, महीधर, सायन इनकों वेदांका अर्थ मालुम न हूआ जो उनोनें हिंसाधर्म वेदोक्त माना, और आजकालमें जो स्वकपोलकल्पित वेदोंके नवीन अर्थ दयानंद आदि कहने और बनाने लग रहे है वे सच्चे हो जावेंगे ?

स्वामी दयानंद. यद्यपि दयानंद सरस्वतीनें वेदोके अर्थ जैन बौध धर्मसें बहुत मिलते करे है अर्थद्वारा वेदोंका असली अर्थ भ्रष्ट कर दीया है. यहनी एक जैनमतीयोंकों मदद मिली है. परंतु दयानंदजीने यह बहुत असमंजस करा जे अपनें मतके आचार्योंकों जूग उहराया. हां, जिस वखत वेद बनाये गये थे, जेकर उस वखत दयानंद सरस्वतीजी पास होते तो जरूर वेद बनाने वालोंसें झगमा करके अपने मनके माने समान वेद बनवाते वा आप रचना करते. परंतु इस वखतमें वा समय नही इस वास्ते दयानंदजीने अर्थही उलटपुलट करके अपना मनोरथ सिद्ध कर लिया. यथार्थ तो यह बात है कि वेदोंमें हिंसा अवश्यमेव है. सो उपर अछी तरेंसे लिख आये है. इस हिंसाकी जैनी निंदा करते है इस वास्ते ब्राह्मण लोक जैनीयोंको नास्तिक और वेदबाह्य कहते है, परंतु जैसे वैदिक हिंसाकी निंदा वेद माननेवालोंनें करी है तैसी जैनीयोंनें नही करी. जैनी तो वेदोंके परमेश्वरका कहेल पुस्तकही नही मानते है, क्योंकि वेद कालासुरनें लोगोंके नरक जाने वास्ते महाहिंसासंयुक्त बनाये है ऐसे जैनी लोग मानते है. जो वस्तु स्वरूपसेंही बुरी है फेर तिसकों जो

कोइ बुरी कहै तो इस बातमें क्या निंदा है. वेद माननेवालेभी वैदिक हिंसाकी निंदा करते है—तथा च श्रुतिः—

" प्लवाह्यते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म एतच्छ्रेयो येऽभिनंदंति मूढास्ते जरामृत्युं पुनरेवापि यांति " अर्थ—यह यज्ञरूपी प्लव जो नाव है सो अदृढ कहता दृढ नही और अठारह अध्वर्यु आदि पुरोहित यजमानादिक जो इनोंने करा ऐसा जो कर्म हिंसा रूप सो नीच कर्म है, तिस हिंसामय यज्ञके करने वाले पुरुष वारंवार जन्ममरणको प्राप्त होते है. यह श्रुति वेदकी पुरी 'निंदा' करती है. यह श्रुति किसी दयावान ऋषिनें जैन मतकी प्रबलतामें बनाई है. तथा वैदिक यज्ञ करने वाले मूर्ख अज्ञानी है ऐसेभी एक श्रुतिमें कहा है—" कश्चिद्भ्वा अस्माल्लोकात्प्रेत्य आत्मानं वेद अयमहमस्मीति कश्चित्स्वं लोकं न प्रतिजानाति अग्निमुग्धो हैव धूमतांत " इति—अर्थ—कोईक अपणा लोक जो ब्रह्मधाम आत्मतत्व वा तिसको जानता नही जो पुण्यरूप अवांतर फलमें परम फलका माननेंवाला अग्नि साध्य अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्ममें आसक्त होनेंसें नष्ट हो गया है विवेक जिसका, तिसको अंतमें धूममार्ग है अर्थात् पाप है. तथा ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणकी दूसरी पंचिकामें पुरुषमेध लिखा है, तिस पुरुषमेधकी यह श्रुति है.

" पुरुषं वै देवाः पशुमालभंत । "

देवताभी पुरुषकु पशुवत् आलभन करता है.

इस पुरुषमेधका निषेध भागवतके पंचम स्कंधके छवीसके अध्यायमें निषेधद्वारा नरकमें यम जो पीडा देता है सो लिखी है—

" तथाहि येत्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजंते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादंति तांश्च ताश्च ते पशव इह निहता यमसदने पातयंतो रक्षोगणाः सौनिक इव स्वधितिनाविदार्यासृक् पिबंति नृत्यंति गा-

यंति च हन्यमाणा यथेह पुरुषादाः ॥ १ ॥ इस लोकोंमें जो पुरुष पुरुषमेधका यज्ञ करते है. जो स्त्रीलोक मनुष्य पशुका मांस खाते है, सो पुरुष और स्त्रीयोंकुं ओ पशु राक्षस होकर, पीडते है. और यमराजका द्वारमें कसाइकी माफत उसका साधर पीते है. पीछे गाते है और हर्षसें नाचते हैं १

तथा सोमक नामा राजा था, तिसके एक पुत्र जंतुनामे था तिसको एक दिन कीमीयोंनें काटा तब तिसने चीसका रुक्का मारा तब राजाने शिर हलाया और कहा कि मेरे एक पुत्र है, सोज्ञी पुत्रोंमें नही. तब राजाके पास जो पुरोहित खमा था तिसनें कहा कि इस पुत्रकों यज्ञमें होमो तो बहुत पुत्र होंगे; तब राजानें कहा में होमुंगा, यज्ञ करो.

नरमेध यज्ञपर भारतकीकथा.

पीछे तीस ब्राह्मणनें यज्ञ करके राजाके पुत्रका होम करा. तद पीछे तिस राजाके १०१ पुत्र हूये. पीछे काल करके ब्राह्मण यज्ञ करानेवाला नरकमें गया, पीछे राजाज्ञी मरके नरकमें गया. तब तीस ब्राह्मण यज्ञ कराने वालेको देखके राजानें यमराजेको कहा जो तुनमें इस मेरे गुरु ब्राह्मणको किस वास्ते नरकमें गेरा है, तब यमराजानें कहा कि तुमनें पुरुषमेंध करा था तिसके पापसें तेरेंकों और तेरे गुरु ब्राह्मणकों नरक ज्ञोगनी पमेगी. यह कथा ज्ञारतके वनपर्वमें विस्तार सहित देख लेनी.

इससे यह सिद्ध हूआ कि वेदोक्त जो हिंसा करे सो नरकमें जावे इसी वास्ते तो वेद ईश्वरके कहे सिद्ध नही होते है.

तथा प्राचीन वर्हिष राजानें यज्ञ करके पृथ्वीका तला दर्न करके आच्छादित करा. ऐसा वेदोक्त कर्म करणेंमें जिसका मन आसक्त था ऐसे प्राचीन वर्हिष राजाको देखके कृपालु दयाधर्मी नारदजी तिसको प्रतिबोध करते हूये, हे राजन्! किन कर्मोंके

प्राचीनबर्हि राजाकी कथा. करनेंसे डुःखहानि ओर सुखकी प्राप्ति होती है. तब राजाने कहा, महाराज ! मुजको कुछ खबर नही. पीछे नारदजीने यज्ञमें जो राजानें पशु मारे थे वे सर्व प्रत्यक्ष दिखलाये, जे कुगार लेकर राजाके मारने वास्ते खमे है, तिनको देखके कंपायमान हूआ. उक्तं च महाज्ञागवते चतुर्थस्कंधे—" वर्हिषस्तु महाज्ञागो हाविर्ज्ञानिः प्रजापतिः । क्रियाकांमेषु निष्णातो योगेषु च कुरुद्धह ॥ १ ॥ यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः । प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुंधातलं ॥ २ ॥ प्राचीनवर्हिषं राजन् कर्मस्वासक्तमानसं । नारदोऽध्यात्मतत्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥श्रेयस्त्वं कतमद्राजन् कर्मणात्मन ईहसे । डुःखहानिः सुखावातिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥ ४ ॥ राजोवाच न जानामि महाबाहो परं कर्मापविद्धधीः । ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मज्ञिः ॥ ५ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः । न परं विंदते मूढो ज्राम्यन् संसारवर्त्मसु ॥ ६ ॥ श्री नारदउवाच, ज्नो ज्नो प्रजापते राजन् पशून् पश्य त्वयाध्वरे । संज्ञपितान् जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ७ ॥ एते त्वां संप्रतीक्षंते स्मरंतो वैशसं तव । संपरेतमयः कूटैश्छिंदंत्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरवाक्यं प्रथमस्कंधे, " यथा पंकेन पंकांज्नः सुरया वा सुराकृतं । ज्नूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ १ ॥

अर्थ—महाज्ञाग प्राचीनवर्हिराजा दाज्नवाला यज्ञोमें,कामधेनुरूप, कियाकांममें प्रजापतिरूप ओर योगविद्यामें प्रवीण होता देव यक्ष करनेवाला जीस राजाका प्राचीन (पूर्वदिशामें) जीसका अग्र ज्ञाग है, एसा दाज्नसे सब पृथ्वी आस्तृत होरहीथी एसा कर्ममें आसक्त ओ राजाकुं अध्यात्म तत्त्वकावेत्ता कृपालु नारदमुनि बोध करने लगे—" राजा, तुम अपना केसा कढ्याण कर्मसें प्राप्त कर-

नेकुं चाहते है ? दुःखकी हानि और सुखकी प्राप्ति ओ श्रेय एक-र्मसे नही मीलजाता है प्राचीन बर्हीराजा कहेते है—महाबाहु ना-रदजी, मेरी बुद्धि कर्मसे नष्ट हो गइ है, उसके लीएमें श्रेयकुं जानता नही है जीससें में कर्मसे मुक्त होजाउ, एसा निर्मल ज्ञान मुजकुं कहो कूट धर्मवाले घरोकी अंदर पुत्र, स्त्री, धन ओ अर्थकी बुद्धिवाला मूढ पुरुष संसारका मार्गमें भ्रमते है, परंतु ओ परमतत्वकुं नहीं प्राप्त करते है तब नारदमुनि कहेते है, हे प्रजापति राजा, देखले ओ पशुओकुं जो हजारो पशुओकुं तुम निर्दय होकर यज्ञमें मारडार्या है, ओ सब आहिं खडे है ओ पशुओ तेरी हिंसाकुं स्मरण करते तेरी राह जोते है मृ-त्यु पीछे ओ क्रोधसें लोहाका कुवाडेसें तुजकुं छेदेगा. ८

असलमें नारदजी जैनी थे क्योंकि जैनीयोंके शास्त्रमें नारदजी-

नारदका उप-देश जैनी जे-सां है.

कों जैनी लिखा है. यद्यपि नारदजीका वेष सन्यासी-का था तोभी श्रद्धा नवही नारदोंकी जैनमतकी थी. इसी वास्ते नारदजीनें मरुत राजाको हिंसक यज्ञ करनेसें हटाया, और इसीतरें प्राचीन वर्हिष राजाकों हिंसक यज्ञ करनेसें मना कि-या. नारदजीने बहुत जगें हिंसक यज्ञ दूर करे है.. इससेंभी यह सिद्ध होता है कि वेद हिंसक पुस्तक है, और ईश्वरके कथन करे हूए नही, जेकर ईश्वरोक्त वेद होते तो नारदजी क्योंकर वेदोक्त क-र्मका निषेध करते और वेदोक्त यज्ञ करनेवाले नरकमें क्योंकर मरके जाते? इस वास्ते वेद हिंसक जीवोंके बनाये हूए है.

भागवतका प्रथम स्कंधमें युधिष्ठिरनेंभी कहा है जैसे चीक-कडसें चीकड नही धोया जाता तथा जैसे मदिरेका भाजन मदिरेसें धोयां शुद्ध नही होता है तैसेंही जीवहिंसा करनेंसें शुद्ध नही होता है, इस वास्ते यज्ञमें जीवहिंसाके पापको दूर नही कर सकते है. तथा भारत मोक्षधर्म अध्याय ८१ में । “ प्रज्ञानामनु-

कंपार्थं गीतं राज्ञा विचख्नुना " ॥ १ ॥ टीका—प्रजानां पुरुषादि-पशूनां अर्थ—यज्ञमें होमता ऐसे जो पुरुषादि पशु तिन उपर दया करनेके अर्थे विचख्नु नामक राजाने कहा है.

विचख्नु राजाकी कथा.

सो विचख्नु नामक राजा तिसनें गवालंभ अर्थात् गौवध करणेके यज्ञमें काटा है जिसका शरीर ऐसा जो वृषभ बलद तिसको देखके गायोंका अत्यंत विलाप देखके यज्ञपाटमें रहे ऐसे जो निर्दय ब्राह्मण तिनको देखके विचख्नु राजानें ऐसा कहा—

भारते मोक्षधर्मे अध्याय ए१ में, " स्वस्ति गोभ्यस्तु लोकेषु ततो निर्वचनं कृतं । हिंसायां हि प्रवृत्तायामाशिरेषा तु कल्पिता॥ अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः । संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥ ४ ॥ आत्मा देहोऽन्यो वान्योऽपि कर्ताऽकर्ता वा अकर्तापि एकोऽनेको वा एकोपि संगवानसंगो वा. " अर्थ—विचख्नु राजानें जो निवर्चन करा सो यह है. गायोंको स्वस्ति कल्याण निरुपद्रव होवे, कोइ किसी प्रकारसेंभी इनकी हिंसा नकरे क्योंकि हिंसाकी प्रवृत्ति अर्थात् यज्ञोमें जीवोंका वध करणा मर्यादा रहितोंनें और मूर्खोंनें और नास्तिकोनें और आत्मा देहही है अथवा देहसें अन्य है, अन्यभी है तो कर्ता वा अकर्ता है, अकर्ताभी एक है वा अनेक है, एकभी है तो क्या संगवान है वा असंग है ऐसे ऐसे संशयवालोनें हिंसक यज्ञका वर्णन करा है, वैदिक हिंसक यज्ञोंको श्रेष्ट ठहराते है.

इस कथनसेंभी यह सिद्ध होता है कि वेद " बेमर्यादे मूर्ख और नास्तिकोंके और अज्ञानियोंके " बनाये हूए है.

तथा नारदपंचरात्रे च—

न तच्छास्त्रं तु यच्छास्त्रं वक्ति हिंसामनर्थदां ।

यतो नवति संसारः सर्वानर्थपरंपरः ॥ "

अर्थ—वो शास्त्रही नही है जो हिंसाका नपदेश करे, कसी है हिंसा, अनर्थकी देनेवाली है तिस हिंसासें संसार सर्व अनर्थ परंपररूप होता है. इत्यादि बहुत शास्त्रोमें हिंसक यज्ञोंकी 'निंदा' करी है. यह 'निंदा' करनेवाले अध्यात्मवादी और प्राये वैष्णवमतवाले है. परंतु कर्मकांडियोंने वैदिक यज्ञकी 'निंदा' किसी जगेनी नही करी. हमनें जो इस ग्रंथमें हिंसक यज्ञोंकी 'निंदा' लिखी है सो ब्राह्मणोके शास्त्रानुसार लिखी है, परंतु जैनमतीयोंके शास्त्रोंसें नही लिखी है. जैनमतके शास्त्रोमें तो सर्वोत्कृष्ट 'निंदा' यह लिखी है—

उत्तराध्ययनमें जयघोष और विजयघोषकी कथा है.

बनारसमें दो नाई वेदोके पढे हूए रहते थे. बमेका नाम जयघोष था और गोटेका नाम विजयघोष था. तिनमेंसें जयघोष जैनमतका साधु हो गया था. और विजयघोष वेदोक्त यज्ञ करनें लग रहा था. तिसके प्रतिबोध करने वास्ते जयघोष मुनि विजयघोषके यज्ञपामेमें आये. दोनो नाईयोंकी बहुत परस्पर चर्चा हूई. तब विजयघोषनें वैदिक यज्ञ गोम दीनें, और नाईके पास दीक्षा ले लेनी. यह सर्वाधिकार विस्तार पूर्वक देखनो होवे तो श्री नत्तराध्ययनके पच्चीसमें अध्ययनमें देख लेना. तिसमें वेदो बाबत जयघोषमुनिनें जो विजयघोषको कहा है सो यहां लिखा जाता है.

" पशुबंधा सव्व वेय जठं च पाव कम्मणा नतंतायंति दुस्सीलं कम्माणि बलवंति हा. उत्तराध्ययन " २६ अ.

टीका—" पशूनां गागादीनां बंधो विनाशाय नियमनं यैर्हेतुनिस्तेऽमी पशुबंधाः " श्वेतं गागमालनेत वायव्यां नूतिकाम इत्यादि वाक्योपलक्षिताः । न तु आत्मारे ज्ञातव्यो मंतव्यो निदि-

श्यालितव्य इत्यादि वाक्योपलक्षिताः सर्ववेदःऋग्वेदादयः जहंति इष्टं यजनं चः समुच्चये पापकर्मणा पापहेतुज्ञूतपशुबंधाद्यनुष्ठानेन न नैव तं वेदाध्येतारं यष्टारं वा त्रायंते रक्षंति ज्ञवादिति गम्यं। किं विशिष्टं दुःशीलं ताज्यामेव हिंसादि प्रवर्तनेन दुराचारं यतः कर्माणि बलवंति दुर्गतिनयनं प्रति समर्थानीह ज्ञवदागमाज्निहिते वेदाध्ययने यजने च ज्ञवंतीति गम्यते पशुवधप्रवर्त्तकत्वेन तयोः कर्मपोषकत्वादिति ज्ञावः ततो नैतद्योगात्पात्रज्ञूतो ब्राह्मणः किंतु पूर्वोक्तगुण एवेति ज्ञावः ॥

अर्थ—वेद जो है ऋग्वेदादि वे सर्व छागादि पशुयोंकें वधके हेतु है, क्यों कि वेदोंमें ऐसी ऐसी श्रुतियां लिखी है " श्वेतं छागमालज्ञेत वायव्यां ज्ञूतिकामः " इस वास्ते सर्व वेद पशुवधके हेतुज्ञूत वेद है. और यज्ञ जो है वे सर्व पापके हेतुज्ञूत है. इस वास्ते वेद, पढनेवाले और यज्ञ करने वालोंकि रक्षा संसारमें नही कर सकते है. क्यों कि कर्म बमे बलवान है, वेद पढनेंसें और यज्ञ करनेंसें पापकर्म उत्पन्न होता है वो पाप दुर्गतिका हेतु है. इस वास्ते पूर्वोक्त गुणवानही ब्राह्मण हो सकते है.

जैन मतमें वेदका विचार.

जैन मतके आगम शास्त्रोमें वेदों बाबत इतनाही लिखा है यह लिखना उनके शास्त्र मुजब ठीक है. क्योंकि जैनीयोके शास्त्रमें अहिंसा परमधर्म लिखा है और हिंसा करनी बहुत बुरी बात लिखी है. इसी तरें वेद माननें वालेनेंज्ञी हिंसक यज्ञोंकी ' निंदा ' बहुत शास्त्र ज्ञारत ज्ञागवत नारद पंचरात्रि प्रमुखमें लिखी है. जब हिंसाकी ' निंदा ' लखी तब चोरकी ' निंदा ' साथही हो गई. जेकर कोई कहे वेदोमें हिंसा करनी नही लिखी क्योंकि ज्ञारतके मोक्षधर्म नामक ए२

में अध्यायमें ऐसे ही लिखा है—" सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृशरौदनम् । धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ॥ मानान्मोहाच्च लोनाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्. " अर्थ—सुरा—मदिरा मच्छ मधु अहित मांस और आसव एक प्रकारका मद्य इन वस्तुयोंका नक्षण करणा धूर्तोंने प्रवर्तीया है, यह कथन वेदमें नही है. मोहसें, लोनसें, मानसें, लौलपणासें इन पूर्वोक्त वस्तुयोंका नक्षण करना कल्पित करा है इत्यादि अनेक जगें अनेक शास्त्रोंमें हिंसक यज्ञ और मांस मदिरेकों नक्षण निषेध करा है. इस वास्ते हम जानते है और हमारे वेदोंमें हिंसा करणेका और मांस मदिरादिकके नक्षणका नपदेश नही तो हम पूछते है जो नव्वट महीधर सायन माधव प्रमुख जो नाष्यकारक हूये है तिनोंनें वेदोंके अर्थ करे है तिनमें तो साफ लिखा है कि वैदिक यज्ञमें इस तरेंसें पशुका वध करणा और तिसके मांसका होम करके शेष मांस नक्षण करणा, सौत्रामणी यज्ञमें मदिरा पीना और आश्वलायन सूत्र तथा कात्यायनसूत्र तथा लाट्यायनसूत्रादि सूत्रकारोंनें और नारायण हरदत्तादि वृत्तिकारोंनेंनी वेदोक्त यज्ञोंमें तथा मधुपर्क अनुस्तरणी आदि अनुष्ठानोंमें बहुत जीवोंका वध करणा लिखा है. यह कथन नपर हम विस्तार सहित लिख आये है तहांसें देख लेना; तो फेर हम क्योंकर मान लेवे के वेदोंमें हिंसा करणी नही लिखी है ?

हिंसाका विषयमें पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष

पूर्वपक्ष—ये पूर्वोक्त नाष्यकार सूत्रकार और वृत्तिकार मूर्ख अज्ञानी थे. इस वास्ते नकों वेदोंका सच्चा अर्थ नही प्रतीत हूआ, इस वास्ते जो मन माना सो लिख मारा. हम नके लिखे अर्थोंकों सच्चे नही मानते है.

उत्तरपक्ष—नला इनको तो तुमनें जूठे असत्यवादी माने

परंतु मनु और याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकारोंनें वेदोक्त रीतीसें पशु-वध करके तिसके मांसभक्षण करणेमें दोष नही लिखा है, किंतु पूर्वोक्त रीतीसें मांसभक्षण करे तो धर्म लिखा है, और मनुस्मृतिका निषेध तुम किसी तरेंभि नही कर सकते हो क्योंकि तुमारे वेदोमें मनुकी बहुत तारीफ लिखी है. " मनुर्वै यत्किंचिदवदत्तद्भेषजं " । छांदोग्यब्राह्मणे. जे कोइ मनुस्मृतिकों जूठी मानेगा तिसकों वेदभी जूठे माननें पर्मेंगे. जे कर कोइ कहे मनुस्मृति आदि शास्त्रोंमें जो हिंसक श्लोक है वे सर्व पीछेसें मांसाहारियोंनें प्रक्षेप कर दीये है, परंतु मनुजीनें हिंसक श्लोक नही रचे है क्योंकि भारतके मोक्षधर्म अध्याय ८१ में लिखा है—

सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।
कामकाराद्धि हिंसंति बहिर्वेद्यां पशून्नराः ॥

अर्थ—धर्मात्मा मनु सर्व कर्म ज्योतिष्टोमादि यज्ञने विषेभी अहिंसाहीका व्याख्यान करता भया, नर जो सो काम कारणसेंही बहिर्वेदीने विषे पशूने मारता है परंतु शास्त्रसें नही. विषेषार्थ देखना होवेतो इस श्लोककी टीका देख लेनी. टीकामें श्रुति लिखी है सोभी हिंसक यज्ञका निषेध करती है. इस वास्ते मनुस्मृत्यादिकमें जो हिंसक श्लोक है वे पीछेसें हिंसक और मांसाहारियोंने प्रक्षेप करे है.

उत्तरपक्ष—यह कहना ठीक नही, क्योंकि जब वेदोहीके बीचमें हिंसक यज्ञ करनेवालोंकी अनेक तरेंकी कथा प्रशंसारूप लिखी है तो फेर मनुमें हिंसक यज्ञोके विधिविधानके श्लोक प्रक्षेपरूप कैसें संभव हो सकते है. ऐसें मान लेवें कि जैनधर्मकी प्रबलतामें जो मनुस्मृत्यादिक शास्त्र बनाये गये है तिनमें दयाधर्मका कुछ कुछ कथन है. ऐसा तो संभवभी हो सकता है. तथा

जब भारतका कर्त्ता व्यासजी भारतमें लिखता है कि धर्मात्मा मनु सर्व जगे अहिंसाको श्रेष्ठ कहता है तो फेर जीवहिंसा करनेवाले राजायोंकी प्रशंसा और ब्राह्मणोंके वास्ते शिकार मारके जीवांका लाना यह कथन और युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें इतने पशु मारे गये कि जिनकी गिणती नही और ब्राह्मणोंनें मांस खाया और घोडेका कलेजा काटके राजानें राणीके हाथमें दीना तब राजाका सर्व पाप दूर हो गया; यह सर्व कथन जो भारतमें लिखा है, क्या इससें व्यासजी दयाधर्मका कथन करनेवाला सिद्ध हो जावेगा ? जेकर कहोगे के भारतका अर्थ यथार्थ करना किसीका आता नही तो तुमारे मतमें आजतक कोइभी सच्चे अर्थका जाननेवाला पीछे नही हूआ ? क्या यह सत्ययुगादि अच्छे युगांका माहात्म्य था और आज कालमें सच्चे अर्थ मालुम हो गये यह कलियुगका माहात्म्य होगा इसमें क्या उत्तर देना चाहिये.

तथा जो कोइ कहते हैं वेदोंमें हिंसा करनेका उपदेश नही तो शंकरविजयमें जो आनंदगिरिनें सौगतकी चर्चामें लिखा है कि जीवहिंसा अर्थात् वेदोक्त यज्ञ करणेमें जो पशुयोंका वध करा जाता है सो धर्म है, तिससें कल्याण सुखकी प्राप्ति होती है, इस हिंसाके करणेमें वेदोंकी हजारों श्रुतियांका प्रमाण है. तिस शंकर विजयका पाठ है–" हिंसा कर्तव्येत्यत्रवेदाः सहस्रं प्रमाणं वर्तंते " अब विचार करना चाहिये जब शंकरस्वामी कहता है कि हिंसा अर्थात् वैदिक यज्ञमें जो हिंसा करी जाती है सो हिंसा करणे योग्य है. इस कथनकी हजारों श्रुतियां प्रमाण देती है तो फेर वेद निर्हिंसक क्योंकर माने जावे ? यातो हिंसाकी 'निंदा' के जो श्लोक उपनिषद स्मृति पुराणोंमें लिखे है वे जूठे है या सूत्रकार भाष्यकार टीकाकार व्यास शंकरस्वामी प्रमुख वैदिक हिंसाको अछी माननेवाले जूठे है.—

दयानंद सरस्वतीका वेद संबंधे विचार

तथा हमारे समयमें जो दयानंद सरस्वतीजीने नयी तरेंका मत निकाला है सो एसा सुनने और पढनेमें आया है कि दयानंद सरस्वती वेदांकी संहिता और ऐक इशावास्य उपनीषद वर्जके और किसी पुस्तकको परमेश्वरका रचा नही मानता है. इनोंनें वेदोंकें ब्राह्मण और आरण्यक भागभी माननें छोड दीये. कारण इनके माननेंसें उनके मतमें कुछ खलल पहुंचता होगा परंतु दयानंद सरस्वतीजीनें जो अपने बनाये सत्यार्थप्रकाश भाषा ग्रंथमें और अपने बनाये वेदभाष्यभूमिकामें और अपनें बनाये ऋग्वेद यजुर्वेद भाष्यमें जो शतपथ ब्राह्मण और एतरेय ब्राह्मण और तैत्तरेय आरण्यक और निघंटु निरुक्त बृहदारण्यक तैत्तरेय उपनिषद प्रमुखोंका जो प्रमाण लिखा सो क्या समझके लिखा है ? क्या वेद संहितामें वो कथन नही था, इस वास्ते पूर्वोक्त ग्रंथोका प्रमाण लिखा ? अथवा जो लोक पूर्वोक्त ग्रंथोकों मानते थे उनकों अपनी वेदभाष्यकी सच्चाइ दृढाने वास्ते प्रमाण लिखा ? वा अजाण लोगोकों भूल भूलयेमें गेरनेकों पूर्वोक्त ग्रंथोके प्रमाण लिखे ? वा वे ग्रंथ जूठ सच्चसें मिश्रित है उनमेंसें जो सच्चा अंश था सो प्रमाणिक जाणके तिसमेंसें प्रमाण लिखे? अथवा जो दयानंद सरस्वती लिख देवें सो सर्व सच्च और ईश्वरके कहे समान है इस वास्ते लिखा है ? जे कर प्रथम पक्ष मानोंगे तबतो वेद पूरे पुस्तक नही क्योंकि जिनमें सर्व वस्तुयोंका कथन नही वो पुस्तक ईश्वर पूर्ण ज्ञानीका रचा हूआ नही. जे करे सर्व वस्तुयोंका कथन होता तो अल्पज्ञोंके बनाये पुस्तकोकां काहेको शरणा लेना पडता. जैसें दयानंद सरस्वतीनें अपने बनाये वेदभाष्य भूमिकामें मुक्तिके स्वरूप विषे लिखा है, यद्यपि हमकों पूर्वले वैदिक हिंडुयेंके मतानुसार दयानंद सरस्वतीके करे वेदोंके अर्थ

सच्चे नही मालुम होते है तोन्नी इस ग्रंथके पढणेवालोंकी न्याय बुद्धिकी बुद्धि वास्ते दयानंदके बनाये अर्थानुसार लिखते है, दयानंद सरस्वतीजीनें अपनी वेदन्नाष्यन्नूमिकाके पृष्ट १८१ सें मुक्तिका स्वरूप लिखा है. तिसमें पतंजलीके करे योगशास्त्रका इग्यारे वा बारें सूत्रांके प्रमाण लिखे है. तथा गौतमरचित न्यायशास्त्रके तीन सूत्रांके प्रमाण लिखे है. और पीछे व्यासकृत वेदांत सूत्रादि ग्रंथोका प्रमाण लिखा है. पीछे शतपथ ब्राह्मणका प्रमाण लिखा है. पीछे ऋग्वेदके एक मंत्रका प्रमाण लिखा है. पीछे यजुर्वेदके एक मंत्रका प्रमाण लिखा है.

अब बुद्धिमानोकों विचार करना चाहिये के पतंजलीने ज, मुक्तिस्वरूप लिखा है तिस स्वरूपकी गंधन्नी ऋग्वेद और यजुर्वेदके मंत्रोमें मुक्तिस्वरूपमें नही है. और जो गौतमजीनें न्याय सूत्रोंमें मुक्ति स्वरूप निरूपण कीया है तिसकीन्नी पूर्वोक्त वेदमंत्रोंमें गंध नही, क्योंकि गौतमजीकी मुक्तिमें ज्ञान बिलकुल नही माना है, पाषाणतुल्य स्वपरन्नानरहित और सुखदुःख रहित मुक्ति मानी है और आत्माको सर्वव्यापी मानते है और न्नेदवादी है, क्योंकि आत्मा गिणतीमें अनंत मानते है. और दयानंद सरस्वती अपनी वेदोक्त मुक्तिमें लिखते है कि उस मोक्ष प्राप्त मनुष्यकों पूर्व मुक्त लोग अपने समीप आनंदमें रख लेते है और फिर वे परस्पर अपने ज्ञानसें एक दूसरेको प्रीतिपूर्वक देखते है और मिलते है ॥ पृष्ट १८९ और ४ तक, और इसी पृष्टमें पंक्ति ८ में. विद्वान लोग मोक्षकों प्राप्त होके सदा आनंदमें रहते है. अब गौतमकी मुक्तिमें तो मुक्तात्मा न कहीं जाता है न कहींसें आता है. क्यों के वो सर्व व्यापी है. सुख आनंदसें रहित होता है. अब दयानंदके वेद कहते है, जब जीव मोक्ष प्राप्त होते है

तब तिनकों जो आगे मुक्त जीव है वे अपने समीप रख लेते है. क्या उसका हाथ पकडके अपने पास बिठला लेते है. क्या मुक्ति हूआके हाथ पग शरीरादिभी होते है? अथवा जो नवीन मुक्तरुप हूआ है वो आगले मुक्तरूपवालोंमें घुस नही सक्ता है. क्या वो उनसें डरता है कि मुझकों अगले मुक्त जीव अपनी पंक्तिमें घुसन देंगे के नही तथा आगे जो मुक्तरूप हो गयें वे क्या ठानेदार बन गये है जो उसकों अपने पास रखते है? अथवा जो नवीन मुक्त हूआ है वो जगा स्थान नही जाणता है मेरेको कहां रहना है, इस वास्ते पूर्व मुक्त लोग उसको अपने पास रखते है तथा उन पूर्व मुक्त लोगोंकों ईश्वरकी तर्फसें हुदा मिला हुआ है और परवाना मिला हुआ है जो कमुक अमुक नवीन मुक्तकों तुमने अपने अपनें समीप रखना? जेकर कहोगे पूर्व मुक्त लोग प्रीतसें नवीन मुक्तकों अपने पास रखते है तो क्या मुक्त लोगोंकोंभी रागद्वेष है? जब प्रीति होवेगी तब रागद्वेष अवश्य होवेंगें. तबतो नवीन मुक्तकों सर्व पूर्वमुक्त अपने अपने पास रखना चाहेंगे, तब तो खेंचातानसें नवीन मुक्तकी कमबक्त आ जावेगी वे किसके पास रहेगा! कहां तक लिखे बुद्धि जुवाब नही देती है. यह दयानंद सरस्वतीजीकी वेदोक्त मुक्तिका हाल है. और गौतमोक्त मुक्तिमें पूर्वोक्त दूषण नही क्योंकि गौतमजी तो आत्माकों सर्वव्यापी मानते है, इस वास्ते आणा और जाणा कि तेभी नही. न ईश्वरके बीचमें घुस बेठना है क्योंकि सर्वव्यापी है, और न पूर्वमुक्त नवीन मुक्तकों अपने पास रख सक्ते है क्योंकि समीप दुर कुछभी नही, सर्वही सर्व व्यापी है. आपसमें प्रतिभी नही क्योंकि रागद्वेष करके रहित है, और ज्ञानसें परस्पर देखभी नही सक्ते है क्योंकि मुक्तावस्थामें ज्ञान माना नही और सदा आनंद सुख और सुख भोगनेकी इछा ये तीनों मुक्तावस्थामें

माने नही. इस वास्ते गौतमोक्त दयानंदकी वेदोक्त मुक्तिसें विलक्षण है. इससें दयानंद सरस्वतीजीकी वेदोक्त मुक्तिकों कुछभी सहारा नही पहुंचता है. हम नही जानते के दयानंदजीने गौतम मतकी मुक्तिका सूत्र किस वास्ते लिखे है! फिर दयानंदजीनें वेदांत मतकी मुक्तिके सूत्र और उपनिषदकी मुक्ति लिखी है. तिनका एसा अर्थ लिखा है—पृष्ट १०५ और १०६ में १०७ में दयानंद लिखता है—

अब व्यासोक्त वेदांत दर्शन और उपनिषदोंमें जो मुक्तिका स्वरूप और लक्षण लिखे है सो आगे लिखते है (अभावं) व्यासजीके पिता जो बादरी आचार्य थे उनका मुक्ति विषयमें ऐसा मत है कि जब जीव मुक्त दशाको प्राप्त होता है तब वह शुद्ध मनसें परमेश्वरके साथ परमानंद मोक्षमें रहता है और इन दोनोंमें भिन्न इंद्रियादि पदार्थोंका अभाव हो जाता है ॥ १ ॥ तथा भावं (जैमिनी०) इसी विषयमें व्यासजीके मुख्य शिष्य जो जैमिनी थे उनका ऐसा मत है कि जैसें मोक्षमें मन रहता है वैसेंही शुद्ध संकल्प मय शरीर तथा प्राणादि और इंद्रियोंकी शुद्ध शक्तिभी बराबर बनी रहती है क्योंकि उपनिषदमें (स एकधा भवति द्विधा भवति त्रिधा भवति) इत्यादि वचनोंका प्रमाण है कि मुक्त जीव संकल्पमात्रसेंही दिव्य शरीर रच लेते है और इच्छामात्रसेंही शीघ्र छोडभी देते है और शुद्ध ज्ञानका सदा बना रहता है ॥ २ ॥ (द्वादशाह०) इस मुक्ति विषयमें बादरायण जो व्यासजी थे उनका ऐसा मत है कि मुक्तिमें भाव और अभाव दोनोंही बने रहते है, अर्थात् क्लेश अज्ञान और अशुद्धि आदि दोषोंका सर्वथा अभाव हो जाता है और परमानंद ज्ञात शुद्धता आदि सब सत्य

मुक्तिसे भाव और अभाव दोनोंहि है.

गुणोंका न्नाव बना रहता है. इसमें दृष्टांतन्नी दिया है कि जैसें वानप्रस्थ आश्रममें बाहर दिनका प्राजापत्यादि व्रत करना होता है उसमें थोमा न्नोजन करनेसें क्षुधाका थोमा अन्नाव और पूर्ण न्नोजन करनेसें क्षुधाका कुछ न्नावन्नी बना रहता है, इसी प्रकारसें मोक्षमेंन्नी पूर्वोक्त रीतीसें न्नाव और अन्नाव समज लेना. इत्यादि निरूपण मुक्तिका वेदांत शास्त्रमें किया है ॥ ३ ॥ इस अर्थके ये सूत्र लिखे हैं—

अथ वेदांतशास्त्रस्य प्रमाणानि ॥ अभावं बादरिराहह्येवम् ॥ १ ॥ भावं जैमनिर्विकल्पामननात् ॥ २ ॥ द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोतः ॥ ३ ॥ अ० ५ ॥पा० ४ सू० १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

इनका अर्थ उपर लिखा है, और दयानंदजीनें उपनिषदकारोंके मतसें बारांतरेंकी श्रुतियोंसें मुक्ति लिखी है तिनका संस्कृत पाठ यह लिखा है ॥ "यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुधिश्च नविचेष्टत तामाहुः परमां गतिम् ॥१॥ ता योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् । अप्रमत्तस्तदा न्नवति योगो हि प्रन्नवाप्ययौ ॥ २ ॥ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो न्नवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥३॥ यदा सर्वे प्रन्निद्यन्ते हृदयस्येह ग्रंथयः । अथ मर्त्योऽमृतो न्नवत्येतावदनुशासनम्" ॥ ४ ॥ कठो० अ० २ वल्ली ६ मं० १०—११—१४—१५ ॥ दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषा ँ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वा ँश्च लोकानाप्नोति सर्वा ँश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य जानातीति है प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥ यदन्त-

रापस्तद् ब्रह्म तदमृतꣳस आत्मा प्रजापतेः समावेश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोऽहमनु प्रापत्सि सहाहं यशसां यशः ॥ ७ ॥ छान्दोग्योपनी० प्रपा० ७ ॥ अणुः पन्था विततः पुराणो माꣳस्पृष्टो वित्ता मयैव ॥ तेनधीरा अपि यन्ति ब्रह्मविद उत्क्रम्य स्वर्गलोकमितो विमुक्ताः ॥ ८ ॥ तस्मिञ्छुक्लमुतनीलमाहुः पिंगलं हरितं लोहितं च ॥ एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनेति ब्रह्मवित्तैजसः पुण्यकृच्च ॥ ९ ॥ प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रमन्नस्यान्नं मनसो ये मनो विदुः ॥ ते निचक्युर्ब्रह्म पुराणमग्रयमनसैवाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ॥ १० ॥ मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यह इह नानेव पश्यति । मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम् ॥ ११ ॥ विरजः पर आकाशात् अज आत्मा महाध्रुवः तमेव धीरा विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ॥ १२ ॥ श० का० १४ अ० ७ ॥

इनका अर्थ दयानंदजीने ऐसा लिखा है—अब मुक्ति विषयमें उपनिषद्कारोंका जो मत है सोभी आगे लिखते है, (यदापंचाव०) अर्थात् जब मनके सहित पांच ज्ञानेंद्रिय परमेश्वरमें स्थिर होके उसीमें सदा रमण करती है और जब बुद्धिभी ज्ञानसें विरूद्ध चेष्टा नही करती उसीको परमगति अर्थात् मोक्ष कहते है ॥ १ ॥ (तां योग०) उसी गति अर्थात् इंद्रियोंकी शुद्धि और स्थिरताको विद्वान् लोग योगकी धारणा मानते है. जब मनुष्य उपासना योगसें परमेश्वरको प्राप्त होके प्रमाद रहित होता है तभी जानोकी वह मोक्षकों प्राप्त हूआ. वह उपासना योग कैसा है कि प्रभव अर्थात् शुद्धि और सत्यगुणोंका प्रकाशकरनेवाला (अप्यय:) अर्थात् सब अशुद्धि दोषों और असत्य गुणोंका नाश करनेवाला है. इस लिये केवल उपासना योगही मुक्तिका साधन है ॥ २ ॥

(यदासर्वे०) जब इस मनुष्यका हृदय सब बुरे कामोंसें अलग होके शुद्ध हो जाता है तभी वह अमृत अर्थात् मोक्षकों प्राप्त होके आनंद युक्त होता है.

प्रश्न—क्या वह मोक्षपद कहीं स्थानांतर वा पदार्थ विशेष है, क्या वह किसी एकही जगतमें है, वा सब जगतमें?

उत्तर—नही ब्रह्म जो सर्वत्र व्यापक हो रहा है वही मोक्षपद कहाता है और मुक्त पुरुष उसी मोक्षको प्राप्त होते है॥ ३ ॥ तथा (यदासर्वे०) जब जीवकी अविद्यादि बंधनकी सर्व गांठे छिन्नभिन्न होके टूट जाती है तभी वह मुक्तिकों प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रश्न—जब मोक्षमें शरीर और इंद्रियां नही रहती तब वह जीवात्मा व्यवहारकों कैसे जानता और देख सक्ता है?

उत्तर—(दैवेन०) वह जीव शुद्ध इंद्रिय और शुद्ध मनसें इन आनन्दरूप कामोंकों देखता और भोक्ता भया उसमें सदा रमण करता है क्योंकि उसका मन और इंद्रियां प्रकाश स्वरूप हो जाती है ॥ ५ ॥

प्रश्न—वह मुक्त जीव सब सृष्टिमें धुमता है अथवा कहीं एकही ठिकाने बेठा रहता है?

उत्तर—(य एते ब्रह्मलोके०) जो मुक्त पुरुष होते है वे ब्रह्मलोक अर्थात् परमेश्वरकों प्राप्त होके और सबके आत्मा परमेश्वरकी उपासना करते हूए उसीके आश्रयसें रहते है. इसी कारणसे उनका जाना आना सब लोक लोकांतरोंमें होता है. उनके लियां कहीं रुकावट नही रहती और उनके सब काम पूर्ण हो जातेहै, कोई काम अपूर्ण नही रहता इस लिये मनुष्य पूर्वोक्त रीतीसें परमेश्वरकों सबका आत्मा जाणके उसकी उपासना करता है वह अपनी संपूर्ण कामनाओंकों प्राप्त होता है यह वात प्रजापति

परमेश्वर सब जीवोंके लिये वेदोंमें बताता है ॥ ६ ॥ पूर्वे प्रसंगका अभिप्राय यह है कि मोक्षकी इच्छा सब जीवोंकों करनी चाहिये (यदन्तरां०) जो कि आत्माकाभी अंतर्यामी है उसीको ब्रह्म कहते है और वही अमृत अर्थात् मोक्ष स्वरूप है और जैसें वह सबका अंतर्यामी है वैसें उसका अंतर्यामी कोईभी नहीं किंतु वह अपना अंतर्यामी आपही है. ऐसे प्रजानाथ परमेश्वरके व्याप्तिरूप सभा-स्थानकों में प्राप्त होऊं और इस संसारमें जो पूर्ण विद्वान ब्राह्मण है उनके बिचमें (यशः) अर्थात् कीर्त्तिको प्राप्त होऊं तथा (राज्ञां) क्षत्रियों (विशां) अर्थात् व्यवहारमें चतुर लोगोंके बीचमें यशस्वी होऊं. हे परमेश्वर! में कीर्त्तियोंकाभी कीर्त्तिरूप होके आपकों प्राप्त हूआ चाहता हूं. आपभी कृपा करके मुझकों सदा अपने समीप रखिये ॥७॥ अब मुक्तिके मार्गका स्वरूप वर्णन करते है. (अणुः पन्था०) मुक्तिका जो मार्ग है सो अणु अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म है. (वितर) उस मार्गसें विमुक्त मनुष्य सब दोष और दुःखोंसें पार सुगमतासें पहुंच जाता है, जैसें दृढ नोकासें समुद्रको तर जाते है. तथा (पुराणः) जो मुक्तिका मार्ग है वह प्राचीन है, दूसरा कोई नही मुझकों (स्पृष्टः) वह इश्वरकी कृपासें प्राप्त हूआ है उसी मार्गसें विमुक्त मनुष्य सब दोष और दुःखोसें छूटे हूये (धीराः) अर्थात् विचारशील और ब्रह्मवित् वेदविद्या और परमेश्वरके जाननेवाले जीव (उत्क्रम्य) अर्थात् अपने सत्य पुरुषार्थसें सब दुःखोंका उल्लंघन करके (स्वर्गलोकं) सुखस्वरूप ब्रह्मलोककों प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ (तस्मिञ्छुक्ल०) अर्थात् उसी मोक्षपदमें (शुक्ल) श्वेत (नील) शुद्ध घनश्याम (पिंगल) पीला श्वेत (हरित) हरा और (लोहित) लाल ये सब गुणवाले लोक लोकांतर ज्ञानमें प्रकाशित होते है. यही मोक्षका मार्ग परमेश्वरके साथ समागमके पीछे प्राप्त होता है. अन्य प्रकारमें नही ॥ ९ ॥ (प्राण-

स्य प्राण०) जो परमेश्वर प्राणका प्राण, चक्षुका चक्षु, श्रोत्रका श्रोत्र, अन्नका अन्न, और मनका मन है, उसको जो विद्वान् निश्चय करके जानते है वे पुरातन और सबसें श्रेष्ठ ब्रह्मको मनसें प्राप्त होनेके योग्य मोक्ष सुखको प्राप्त होके आनंदमें रहतें है. (नेहना०) जिस सुखमें किंचित्ज्री डुःख नही है ॥ १० ॥ (मृत्योः स मृत्यु०) जो अनेक ब्रह्म अर्थात् दो तीन चार दश बीस जानत है वा अनेक पदार्थोके संयोगसें बना जानता है वह वारंवार मृत्यु अर्थात् जन्म मरणकों प्राप्त होता है क्योंकि वह ब्रह्म एक और चेतन मात्र स्वरूपही है. तथा प्रमाद रहित और व्यापक होके सबमें स्थिर है. उनकों मनमेंही देखना होता है, क्योंकि ब्रह्म आकाशसेंज्री सूक्ष्म है ॥ ११ ॥ (विरजः पर आ०) जो-परमात्मा विक्षेप रहित आकाशमें परम सूक्ष्म (अजः) अर्थात् जन्म रहित और महाध्रुव अर्थात् निश्चल है. ज्ञानी लोग उसीको जानके अपनी बुद्धिकों विशाल करें, और वह इसीसें ब्राह्मण कहाता है ॥ १२ ॥

तथा याज्ञवल्क्यकी कही मोक्ष लिखी है.

सहोवाच एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्य स्थूलमण्वेवाह्रस्वदीर्घमलोहितमस्नेहलमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसंगमस्पर्शमगंधमरसमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखमनामागोत्रमजरममरमभयममृतमरजोऽशब्दमविवृतमसंवृतमपूर्वमपरमनंतमबाह्यं न तदश्नोति कंचन न तदश्नोति कश्चन ॥ १३ ॥ श० कां० १४ अ० ६ । कं० ८ ॥ अथ वैदिक प्रमाणम् ॥ य यज्ञेन दाक्षिणया समक्ता इंद्रस्य सख्यममृतत्वमनशे तेभ्यो

भद्रमंगिरसा वा अस्तु प्रतिभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ १ ॥ ऋ० अ० ८ अ० २ व० १ म० १ ॥ स नो बंधुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा यत्र देवा अमृतमानाशानास्तृतीयधामन्नध्यैरयन्त ॥ २ ॥ य० अ० ३२ मं० १० ॥

अथ याज्ञवल्क्यकी कही मुक्ति दयानंद सरस्वती लिखता है (सहोवाच ए) याज्ञवल्क्य कहते है, हे गार्गि ! जो परब्रह्म नाश, स्थूल, सूक्ष्म, लघु, लाल, चिक्कन, छाया, अंधकार, वायु, आकाश, संग, शब्द, स्पर्श, गंध, रस, नेत्र कर्ण, मन, तेज, प्राण, मुख, नाम, गोत्र, वृद्धावस्था, मरण, भय, आकार, विकाश, संकोच, पूर्व, अपर, भीतर, बाह्य, अर्थात् बाहिर इन सब दोषओर गुणोंसें रहित मोक्ष स्वरूप है. वह साकार पदार्थके समान किसीकों प्राप्त नही होता ओर न कोई उसको मूर्त्ति द्रव्यके समान प्राप्त होता है, क्योंकि वह सबमें परिपूर्ण, सबसें अलग अद्भुत स्वरूप परमेश्वर है, उसकों प्राप्त होनेवाला कोई नही हो सकता है, जैसें मूर्त्तद्रव्यकों चक्षुरादि इंद्रियोंसें साक्षात् कर सकता है, क्योंकि वह सब इंडियोंके विषयोंसे अलग और सब इंद्रियों आत्मा है. उसी मार्गसें ब्रह्मका जाननेवाला तथा (तैजसः) शुद्धस्वरूप और पुण्यका करनेंवाला मनुष्य मोक्ष सुखको प्राप्त होता है, तथा अब दयानन्दजी अपनें ऋग्वेद और यजुर्वेदकी कही मुक्ति लिखतें है. (यज्ञेन) अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञानरूप यज्ञ ओर आत्मादि द्रव्योंकी परमेश्वरकों दक्षिणा देनेसें वे मुक्तलोग मोक्षसुखमें प्रसन्न रहते है. (इंद्रस्य) जो परमेश्वरको सख्य अर्थात् मित्रतासें मोक्षभावकों प्राप्त हो गये है उन्हीके लिये भद्रनाम सब सुख नियत किय गये हैं, (अंगिरसः) अर्थात्

नुनके जो प्राण है वे (सुमेधसः) नुनकी बुद्धिकों अत्यंत बढाने-वाले होते है और नुस मोक्ष प्राप्त मनुष्यकों पूर्व मुक्तलोग अपने समीप आनंदसें रख लेते है और फिर वे परस्पर अपने समीप आनंदसें रख लेतें है और फिर परस्पर वे अपनें ज्ञानसें एक दूसरेंकों प्रीतिपूर्वक देखतें और मिलतें है, (सनोबंधु०) सब मनुष्योंकों यह जानना चाहिये की वही परमेश्वर हमारा बंधु अर्थात् फुःखका नाश करनेंवाला है तथा वही सब कर्मोंका पूर्ण कर्त्ता और सब लोकोंके जाननेवाला है कि जिसमें देव अर्थात् विद्वान् लोग मोक्षको प्राप्त होके सदा आनंदमें रहते है और वे तीसरें धाम अर्थात् शुद्धसत्वसें सहित होके सर्वोत्तम सुखमें सदा स्वच्छंदतासें रमण करते है ॥ ५ ॥ इस प्रकार संक्षेपमें मुक्तिका विषय कुछ तो वर्णन कर दिया और कुछ आगेनी कहीं कहीं करेंगे सो जान लेना, जैसें (वेदाहमेत) इस मंत्रमेंनी मुक्तिका विषय कहा गया है ॥ इति मुक्तिविषयः संक्षेपतः ॥ यह दयानंद सरस्वतीकी मानी हुइ मुक्ति है.

अब हम इस पूर्वोक्त मुक्तिकों विचारतें है, प्रथम वेदांतकी मुक्तिमें झगमा पड रहा है. व्यासजीके पिता बादरीजीतो मुक्तिका स्वरूप कितनी वस्तुयोंके अनाव होनेसें मानतें है, और जैमिनी व्यासका मुख्य शिष्य बादरीजीसें विपरीत मुक्ति स्वरूप मानतें है, और व्यासजी इन दोनोंहीसें निन्न तीसरी तरेंमी मुक्ति मानतें है. इससें यह सिद्ध होता है कि वेदोंमें मुक्ति स्वरूप अच्छी तरेंसें नही कथन करा है जे कर करा होता तो इन पूर्वोक्त तीनों आचार्योंका अलग अलग मुक्ति विषयमें मत न होता, जे कर कहोगे वेदोहीमें मुक्ति तिन तरेंकी कही है, तब तो वेद एक ईश्वरके बनाये हूये नही है, किंतु तीन जणोंके बनाए हूये है. जैसी जैसी तिसकी

प्राचीन मुक्तिका विचार,

समझ थी उसने वैसा वैसा लिख दिया तब तो मुक्तिके स्वरूपमें संशय होनेंसें पूर्वोक्त मुक्ति तीनों तरेंकी प्रेक्षावानोंकों उपादेय नही, तो फेर दयानंदजीनें इनमेंसें कौनसी मुक्तिकों स्वीकार करा यह नही मालुम होता. और तीनो तरोकी मुक्ति मानें तो पस्पस्पर विरोध आवे है, और वेदांतियोंके भाष्यादि शास्त्रोंसें दयानंदके करे हूये अर्थ विरुद्ध है, न तो ऐसे अर्थ वेदांती मानतें है, और न एसे शांकर भाष्यादिकमें लिखें है. हम नही जानते के दयानंदकी कल्पना क्योंकर सत्य हो सकती है जेकर कसीके शाक्षा मंडपको रासभ चरें तो देखनेंवालेकी क्या हानि है, हानितो कुछ नही परंतु अनुचित काम देखनेंसें मनको अच्छा नही लगता है, जिनके शास्त्रांका उलटा कर्थ करा है वेही दयानंदजीसें पूछना होवेगा तो पूछ ले वेंगे हमतो जैसें अर्थ दयानंदसरस्वतीजीनें लिखे है उनहीका विचार करते है, दयानंदसरस्वती लिखता है कि मुक्त लोगोंका जाना आना सब लोक लोकांतरमें होता है. मुक्त लोक जो सब जगे आते जाते है और घूमते है इसमें क्या हेतु है, क्या उनके एक जगे रहनें से हाथ पग शरीरादि अकड जाते है उनके खोलने वास्ते लोक लोकांतरमें घूमते है इसमें १ अथवा उनका एक जगें चित्त नही लगता है? २ अथवा एक जगें रहना अपने आपकों कैदी समजतें है इस वास्ते लोक लोकांतरमें दौडते फिरतें है? ३ अथवा मुक्त होकेभी उनके मनमें लोक लोकांतरके तमाशे देखने वास्ते सब जगें दौडना पडता है इस वास्ते उडे उडे फिरते है? ४ अथवा मुक्त हूआं पीछे उनकों पूर्ण ज्ञान नही होता है और वस्तुयांके देखनेकी इच्छा बहुत होती है सो वस्तुके समीप गया बिना देख नही सकता है इस वास्ते हरेक जगें भटकते फिरते है? ५ अथवा एक जगें रहनेसें वहांकी आब हवा बिगड जाती है इस वास्ते अछी

आब हवाकी जगेमें जाते है? ६ अथवा विनाही प्रयोजन वाव-लोकीतरें फिरते है? ७ इन सातोंही पक्षोमें अनेक दूषण है. इन पक्षोमेंसें एकजी पक्ष माना जायेगा तो मुक्त सिद्ध तो किसी तरें जी नही हो सकेगा परंतु मुक्तिकी खरावी तो सिद्ध हो जावेगी क्या जाने इस मुक्तिके माननेवालेकी एसी मनसा होवेकि यहां तो देश देशांतर जानेमें रेलादिकका जाम्हा देना पम्ता है और जब हम मुक्त हो जावेंगे तब तो पक्षीयोंकी तरे जहांका तमाशा देखना होगा तहां चले जावेंगे तो इस वातकों कौन मना कहता है. परंतु प्रेक्षावान् तो युक्तिविकल मुक्तिको कदापि नही मानेगे. तथा मुक्त होके चलना फिरना, देशदेशांतरमें जाना आना, ऐसी मुक्ति तो पतंजलि गौतम बादरि जैमिनि व्यास याज्ञवल्क्यादि-कोंनें किसीनेंजी नही मानी तो फेर जनके मतके शास्त्रोंसे मुक्ति स्वरूप लिखनेसें क्या प्रयोजन सिद्ध होता है, और दयानंद सर-स्वतीजीनें जो वेदोक्त मुक्ति लिखी है जसमेंजी मुक्त लोगोंका लोकांतरमें जाना आना नही लिखा है तो फेर यह जम्हे फिरने लोक लोकांतरमें जाना आनेवाली मुक्ति सरस्वतीजीनें कहांसें निकाला लीनी. तथा फेर दयानंदजी लिखते है मुक्त हूयां पीछे जनके सब काम पूर्ण हो जाते है, कोइ काम अपूर्ण नही रहता है, तो फेर हम पूछते हैकि मुक्तलोग लोकलोकांतरमें किस वास्ते जाते आते है? प्रयोजन तो जनका कोइजी बाकी नही रहा है. यह पूर्वापर-व्याहति है. फेर दयानंदजी लिखते हैकि पूर्वोक्त मुक्ति प्रजापति पर-मेश्वर सब जीवाके लिये वेदोमें बताता है तो हम पूछते है, ऐसी चलने फिरने वाली मुक्ति परमेश्वरने कौनसे वेदमें बताइ है. जो तुमने ऋग्वेद, यजुर्वेदके दो मंत्रसें मुक्ति स्वरूप लिखा है तिसमें तो चलने फिरनेवाली मुक्ति नही लिखी है. तथा फेर दयानंदजी लिखते है मुक्तिस्थान परमेश्वरहीहै, अन्य कोइ मुक्तिस्थान नही तो

हम कहेंगे जैसें आकाश सर्व व्यापी है तेंसेही ईश्वर मुक्तस्थानरूप सर्व जगें व्यापक है, तिसमें मुक्तलोग स्वछंदतासें चलते ऊमते फिरते है तो हम पूछते है चील कौये तो अपने ऊक्षादिकी तलासमें फिरते है परंतु मुक्तलोग तो सर्व कामसें पूर्ण है तो फेर उनकों देश देशांतर जानेसें क्या प्रयोजन है. अब इस लिखनेसें यह सिद्ध हुआकि जो दयानंदजीनें मुक्तिके स्वरूप वास्ते योग न्याय वेदातांदि मतोकि साक्षी लिखी है वह वेदोंमें मुक्ति स्वरूपके अधूरेका पुरे करने वास्ते लिखी है. उसनें तो वेदोक्त मुक्तिको पुरा तो नही करा बलकि वेदोक्त मुक्तिका खंमन कर दीया और वेद अधुरो कथन करनेसं सर्वज्ञ इश्वरके बनाये हूए सिद्ध नही होती है. इति प्रथम पक्षः ॥ १ ॥

द्वितीय पक्ष.

दूसरा पक्ष तो संभवही नही हो सक्ता है क्योंकि हमनें बहुत जगें पंमित ब्राह्मणोसें सूना हैकि दयानंदजीके बनाये वेदभाष्यभूमिकादि ग्रंथ सच्चे प्रतीत करने योग्य नही है. प्रतीति और प्रमाणिकता तो दूर रही बलकी दयानंदकी न्यायबुद्धि बाबत बाबू शिवप्रसाद सतारे हिंदनें अपने दूसरे निवेदन पत्रमें ऐसा लिखा है. दूसरे निवेदन पत्रका पाठ—राजा शिवप्रसाद कहता है, कि जब मैंने गौतम और कणादके तर्क और न्यायसें न अपने प्रश्नका प्रमाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराजकी वाक्यरचनाका उससे कुछ संबंध देखा मराकि कहीं स्वामीजी महाराजनें किसी मेम अथवा साहिबसें कोइ नया तर्क और न्याय रुस अमेरिका अथवा और किसी दूसरी विलायतका न सीख लिया हो ? फरङ्गिस्तानके विद्वज्जनमंडलीभूषण काशीराज स्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्तर टीबो साहिब बहादुरको दिखलाया बहुत अचरजमें आये और कहने लगे हम तो स्वामी जी महाराजकों बमे पंमित जानतेथे फेर अब उनके मनुष्य हो-

नेमें संदेह होता है, दूसरा निवेदन पत्र पृष्ट ५–६ ॥ अन्य पंडित तथा विलायती पंडित दयानंद सरस्वतीजीके बाबत यह लिखते है. न्यायसें दूसरेपक्षका संज्ञव नही होता है ॥ २ ॥

तृतीय पक्ष. तिसरे पक्ष तो संज्ञव होज्ञी सक्ता है परंतु सत्पुरुषांको ऐसा लिखना उचित नही ॥ ३ ॥

चतुर्थ पक्ष. चौथा पक्ष प्रतीत करनेके योग्य नही क्या जानें सच्चकी जगें जूठही हाथ लगा होवे ॥ ४ ॥

पंचम पक्ष. पांचमा पक्ष अप्रमाणिक और न्याय बुद्धिसें हीन तो कदाचित् मानज्ञी लेवें परंतु प्रेक्षवान् कदापि नही मानेगें ॥ ५ ॥ हिंदुस्थानमें बहुतोंने अपने मतके पंथ चलानेसें आर्य लोकोंकी बुद्धि कुंठ होगइ है. मिथ्यात्व घोर अंधकार सागरमें संशय ज्ञरे डूबे डुब रहे है. कितनेकतो क्रिश्चियन हो गये है और कितनेक मुसलमान बन गये है और कितनेक स्वकपोलकल्पित ब्रह्म समाजादि पंथ निकाल बैठे है और कितनेक किसी मताज्ञी नही मानते है और–कितनेक दयानंद सरस्वतीजीके मतमें दाखिल हो गये है. और साधु फकीरतो हल छोड छोडके, इतने जाटादि हो गये है, गृहस्थ लोगोंकों ज्ञीख देनी मुशकल होगइ है, बहुत साधु फकीर लोग लोज्ञी है, धन रखते है, रांडज्ञी रखते है, लोगोंसें लडते है, गांजे चरसकी चिलमें उडाते है, ज्ञांग अफीम धतुरा खाते है और लोगोंसें गाल देते हे तथा कितनेक नगरोंमें डेरे धांध बैठे है, लोगोंकों लुंटते लुच्चेपणे करते हैं, परस्त्रीयों गमन करतेहै, मांस मदिराज्ञी कितनेक खाते पीते है. इस फिकीरीसें तो गृहस्थ रहते और न्यायसें पैसा पैदा करके अपने बाल बच्चोंकों पालें, दीन दुखी ज्ञूके प्यासेंकों देवेतो अच्छाकाम है. साधु उसीकों होना चाहिये जो तन मात्र वस्त्र और ज्ञूख मात्र अन्न लेवे, शील पाले

और लोगोंकों जूठ, चोरी, कपट, छल, दंभ, अन्याय व्यापार अ- नुचित प्रवृत्तिसें उपदेश द्वारा बचावें नहीतो साधु होनेसें कुछ लाभ नही.

दयानंदमतसमीक्षा.

दयानंद सरस्वतीजीने प्रथम " सत्यार्थ प्रकाश " बनाया था, तिसमें चार्वाकका मत लिखके लिख दियाकी ये श्लोक जै- नोके बनाये हूए है. तिनकी बाबत जब दयानंदकों पूछा गया तब पत्रद्वारा धमकीयां शिवाय और अंमबंमके शिवाय कुछभी उत्तर न दीया. तिन पत्रोकी नकल " दयानंदमुखचपेटिका" नामक ग्रं- थमें लिखी और छप गइ है. अब दयानंदजीने नवीन सत्यार्थप्र- काश रचा है, तिसमेंभी कितनीक मिथ्या वातां लिखके फेर जै- नमतकों जूठा ठहराया है. इस वास्ते दयानंदजीने जो ईश्वरमुक्ति संसारकी रचना प्रमुख बाबत जो इंद्रजाल रचा है सो खंमन करके दिखाते है.

प्रथम जो दयानंदजी अपने स्वरूपमें परमहंस परिव्राज- काचार्य लिखते है सो मिथ्या है. क्योंकि जो परमहंसोकी वृत्ति शास्त्रोमें लिखी है सो दयानंदजीमें नही है. परमहंसको परि- ग्रह अर्थात् धन रखना नही कहा है, और दयानंदजी रखते है. परमहंसको तो माधुकरी भिक्षा करनी कही है, और दयानंदजी रसाई करवाकर खाते है. परमहंसको असवारीका निषेध है और दयानंदजी असवारी उपर चमता है. इत्यादि अनेक बा- तोंसें दयानंदजीमें परमहंसके लक्षण नही है तो फेर परमहंस परिव्राजकाचार्य क्योंकर हो सक्ते है. और कौनसें वै परमहंस है जिनका दयानंदजी आचार्य है. इसवास्ते जो अपनेको परम- हंस परिव्राजकाचार्य लिखा है सो मिथ्या है. राजा शिवप्रसाद

सतारे हिंदने अपने दूसरे निवेदनपत्रमें लिखा है कि फरङ्गिस्तानके विद्धज्जनमंम्फलीज़ूषण काशीराज स्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्तर टीबो साहिब कहता है, हमतो बमा पंडित जानते थे पर अब ज्ञनके मनुष्य होनेंमें संदेह होता है. मैं इतनेंतक नही जाता हूं. मेरा कहना इनके ग्रंथोंके संबंधमें है.

दयानंदजीनें जो जो ग्रंथ वेदज्ञाष्यज्रूमिका वेदज्ञाष्यादि रचे है, वे सर्व ज्ञारतवर्षीय प्राचीन वैदिक धर्मसें विरुद्ध है. प्राचीन वैदिक धर्मके नष्ट करने वास्तेही दयानंदजीका सर्व ज्ञद्यम है,

ओंकारका अर्थमें दयानंदका भ्रम.

प्रथम जो ज्ञनोंनें ॐकारका स्वरूप लिखा है सो मिथ्या है, क्योंकि हमनें बहुत पंडितोसें सुना है कि 'अ' 'ज' और 'म्' इन तीनों वर्णोंसें ॐ बनता है, और ये तीनों अक्षर क्रमसें विष्णु, शिव, ब्रह्मा इनके वाचक है. जेकर दयानंदजीज्ञी इस तरें मान लेता तो इनका काकंददग्ध हो जाता क्योंकि दयानंदजी इन तीनों अर्थात् विष्णु, शिव, ब्रह्माको देव ईश्वर नहि मानतें है. इस वास्ते दयानंदजीनें ॐकाररूप पीठ बांधने वास्ते मृषा अर्थरुप पथ्थरोकी सामग्री एकठी करके पीठिका बांधी है. सो यह है—दयानंदजी लिखते वै, अकारसें विराट्, अग्नि और विश्वादि, ज्ञकारसें हिरण्यगर्ज्ञ, वायु और तैजसादि, मकारसें ईश्वर, आदित्य प्राज्ञादि नांमोंका वाचक और ग्राहक है. अब विचार करके देखिये तो यह कथन मिथ्या है क्योंकि तीन अक्षरोंसें जब ॐकार बना है तब तो इन तीनो अक्षरांका जो वाच्यार्थ है तिसके समुदायका नाम ईश्वर हूआ, परंतु वास्तवमें एक वस्तुका नाम ॐकार नही है. तथा दयानंदजी लिखता है इन तीनो अक्षरोंसें परमेश्वरके विराट्, अग्नि, वायु आदि जे नाम है वे सर्व ग्रहण करे है. यह लखना मिथ्या है, क्योंकि किसी को-

शर्मेंजी परमेश्वरके नाम वायु, अग्नि आदिक नही है. जेकर व्युत्पत्तिद्वारा वायु, अग्नि आदि परमेश्वरके नाम माने जावे, तबतो जलूल, अकिंचित्कर, विडाल, यक्ष, अहि, वृश्चिक, इत्यादि लाखो नाम परमेश्वरके हो जावेगे; तबतो परमेश्वरकों खल, खर, गदर्ज, श्वा, कुक्कर, योनि, स्त्री, मरि, जगंदर, चौरादि नामसें कहना चाहिये. यह व्युत्पत्तिस्वरूप पंमितोमें उपहास्य होवे, इस वास्ते पूर्वोक्त परमेश्वरके वायु, अग्नि आदि नाम सर्व मिथ्या कल्पित है. और जो दयानंदजीने ॐकारकी व्युत्पत्ति लिखी है सोजी मिथ्या है. " अवति रक्षतीति ॐ, " जब रक्षा करे तब सर्व जीवांकी करे, जेकर सर्व जीवांकी रक्षा करे तो जो जीव जूख, तृषा, मरी, रोग, चोरादिकोंके उपद्रवोंसें मरते है तिनकी अथवा अगम्यगमन, चोरी, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, असत्यजाषण, अन्याय इत्यादि कुकर्म करनेवालोकी फांसी, कैद नरकपातादिसें रक्षा क्यों नही करता है. जेकर कहोगे पापी जीवाने पाप करे है इस वास्ते वे डुःख जोगते है तिनकी ईश्वर क्या रक्षा करे; जब डुःखीयोंकी रक्षा नही करता है तो रक्षक कैसे सिद्ध होवेगा ?

ईश्वर अन्यायी ठरतेहैं.

जेकर कहोगे जो जैसा पुण्य पाप करता है तिसको ईश्वर तैसाही फल देता है, यही उसका रक्षकपणा है, तो हम पूछते है प्रथम ईश्वर जीवांको पापकर्मही करणा बंद क्यों नही करता है ? क्या ईश्वरको पापीयोंको पाप करणेसें बंध करणेकी शक्ति नही है? जेकर कहे शक्ति है, तो पाप करणा बंद क्यों नही करता ? जेकर कहोगे, ईश्वरमें पाप करणेके बंद करणेकी शक्ति नही, तो ईश्वर सर्वशक्तिमान नही, और जब पापीयोंका पाप करता बंद न करे और पापके फल जूख, तृषा, रोग, शोकादिसें मुक्त न करे तो ईश्वर दयालु क्योंकर हो सक्ता

है ? जैकर कहोगे, पापीको पाप फल और पुण्यवान्को पुण्यफल देता है, जैसें राजा सज्जनोंको साधुकार देता है और पापी चौरादिकों दंड देता है तैसें ईश्वरभी करता है. यही ईश्वरकी दयालुता और न्यायता है यह कहना महामिथ्या है, क्योंकि राजा लोकोंमें चौरादिकोंकों बंद करणेकी शक्ति नही है इस वास्ते चोरादिकको बंद नही कर सकता है. ईश्वरको तो तुम सर्व शक्तिमान मानते हो तो फेर पापीयोंकों पाप करणेंसें बंद क्यों नही करता है ? पापीयोंको पाप करणेंसें बंद न करणेसें ईश्वर दयालु नही है, और ईश्वरही जानके पाप कराता है; फेर दंड देता है. इस वास्ते तुम्हारा ईश्वर अन्यायीभी सिद्ध होता है; जैकर ईश्वर पापकरताकों नही जानता है तो अज्ञानी सिद्ध होता है. जानता है और रोकता नही तबतो निर्दय, असमर्थ, पक्षपाती, रागी, द्वेषी सिद्ध होता है. हम प्रत्यक्ष देखतें है सर्व जीव जड चैतन्यके निमित्तसें अपने अपने करे पुण्य पापका फल सुख दुःख भोगतें है तो फिर काहेको ईश्वरको फलप्रदाता कल्पन करके अन्यजीवांको भ्रमांधजालमें गेरे है ? जब हम अपने पुण्यपापानुसारी फल भोगते है तब तो जैसें दुकानदारसें अपनें पैसेसे लेकर वस्तुका भोगणा है तिसमें दुकानदारनें हमको क्या अधिक फल दिया ? कुछभी नही दिया; तैसेही निमित्तरुप दुकानदारसें हमनें अपने अपने पापपुण्यका फल भोगा तो तिसमें ईश्वरनें हमको क्या दिया ? इस वास्ते ईश्वर जगतका रक्षक नही.

ईश्वरका खं नामका खंडन

तथा दयानंदजी कहते है ईश्वरका नाम 'खं' और 'ब्रह्म' भी है, सर्वत्र आकाशकी तरें व्यापक होनेसें खं, और सबसें बडा होनेसें ब्रह्म है. यह लिखनाभी मिथ्या है, क्योंकि जो सर्व जगें व्यापक होता है वो अक्रिय होता है, जो अक्रिय होता है वो अकिंचित्कर होता

है, आकाशवत्. और सबसे बमा तब होवे जब आकाशसेंजी बडा होवे, सो है नही, क्योंकि आकाश सर्व व्यापक माना है. इस वास्ते ईश्वरका नाम ब्रह्मजी नही, किंतु स्वकपोलकल्पित है. और ईश्वरकों सर्व व्यापक माननेसें पुरीषादि सर्व मलीन वस्तुयोंमें व्यापक होनेसें ईश्वरकी बहुत दुर्दशा सिद्ध होती है.

सत्यार्थ प्रकाशसो असत्यार्थप्रकाश होता है.

दयानंदजीनें जो ईश्वरका नाम ॐकार लिखा सो तो सत्य है, परंतु अ, उ और म् सें जो वायु अग्नि आदिकोंका ग्रहण करा है सो अनघटित पथ्थरोंके समान है, अप्रमाणिक होनेसें. क्या ऐसी ऐसी असत्कल्पना जिस ग्रंथमें होवे तिस ग्रंथका नाम सत्यार्थ प्रकाश कोइ बुद्धिमान् मानेगा, क्योंकि प्राचीन वैदिक मतवालेतो पूर्वोक्त रीतीसें ॐकार मानते है, तिनके माननेमेंजी शंका उत्पन्न होती है, क्योंकि जब तीनो अवताररूप होके ॐकारनें जगतमें माताके उदरसें अवतार लीना, तब ॐकारके तीन खंम हो गये, और इन तीनोंके शिवाय अन्यकोइ ॐकार नही है. अकार रजोगुणरूप विष्णु, उकार सत्वगुणरूप ब्रह्मा, मकार तमोगुणरूप शंकर, इन तीनो अक्षरोंसें ॐकार बना तबतो अकारमेंभी तीनो गुण सिद्ध होवेंगे. इस वास्ते यह कथनजी यथार्थ मालुम नही होता है, तो दयानंदजीका कल्पित अर्थ कग्नि वायु आदि क्योंकर ॐकार बन सकता है ?

जैनमतमें ॐकारका अर्थ.

सत्य ॐकारका स्वरुपतो यह है—

अरिहंता असरीरा आयरिय उवज्झाय मुणिणो पंचस्वर निष्पन्नो ॐकारो पंचपरमेष्ठि.

अस्यार्थः—अरिहंत पदकी आदिमें अ है सो लेना. और अशरीरी सिद्धपदका नाम है तिसकी आदिमेंजी अकार है सो लेना,

तथा आचार्य पदकी आदिमें दीर्घ आकार है सो लेना, और उपाध्याय पदकी आदिमें उकार है सो लेना, और मुनि पदकी आदिमें मकार है सो लेना, तब यह पांच अक्षर भये-अ, अ, आ, उ, म्, व्याकरण सिद्ध हैम, जैनेंद्र, कालापक, शाकटायनके सूत्रोंसें "समानांतेन दीर्घः" इस सूत्र करके तीनो अकारोंका एक दीर्घ आकार हूआ, तब आ, उ, म्, एसा रुप सिद्ध हूआ. तब पूर्वोक्त व्याकरणके सूत्रोंसे आकार उकारके मिलनेसें ओकार सिद्ध होता है और पूर्वोक्त व्याकरणोंके सूत्रोंसें मकारका बिंदुरूप सिद्ध होता है. तब ॐकार सिद्ध होता है. यह पंच परमेष्ठिकोंही ॐकार कहते है क्योंकि अरिहंत उसकों कहते है जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अष्टादश दूषणोंसें रहित, पृथिवीमें जीवांको सदागमका उपदेष्टा है; और; अशरीरी उसकों कहते है जो सिद्ध, बुद्ध, अमर, अजर, परमात्मा, ईश्वर, निरंजनादि अनंत गुणां करके संयुक्त मुक्तस्वरूप होवे आचार्य उसको कहते है जो पांच आचार पाले, जगत्को सत्शास्त्रका उपदेश करे; उपाध्याय उसकों कहतें है जो सत्शास्त्रका पठण पाठण करावे; मुनि उसको कहते है जो पंचमहाव्रत और सत्तर भेद संयमके धारक होवे; इन पांचोके शिवाय जीवांकों अन्य कोई वस्तु उपास्य नही है. इनही पांचोके आद्य अक्षरोंसें ॐकार सिद्ध होता है. यह सत्य ओंकारका स्वरूप है. मिथ्याकल्पना कल्पित ॐकारसें सत्य ॐकारकी महिमा घट नही सकती है.

जपमालाका स्वरूप.

तथा सर्व आर्य लोकोंके जप स्मरण वास्ते माला रखनेका व्यवहार सर्व प्राचीन मतोमें प्रसिद्ध है, तिस मालाके १०८ मणिये होते है. तिसका निमित्त पूर्वोक्त सत्य ॐकारके १०८ गुण है, अरिहंत पदके बार गुण, अशरीरी

अर्थात् सिद्धपदके ८ गुण; आचार्य पदके ३६ गुण; उपाध्यायपदके २५ गुण और मुनिपदके २७ गुण है. ये सर्व एकठे करे १०८ गुण होते है; सत्य ॐकारके १०८ गुण स्मरण करनें वास्ते अष्टोत्तरी माला जगतमें प्रसिद्ध हूई है.

दयानंदका मतकी गोदडी.

तथा दयानंद सरस्वतीनें अपनें मनोकल्पित मतकी गोदम्ी बनाई है. सो रंगविरंगी विढंगी है, क्योंकि प्रथम जो सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक मतोंकी प्रक्रियाके सूत्र है वे रंग विरंगी है; परस्पर तिनका कहना मिलता नही है, क्योंकि सांख्य तो प्रकृति पुरुष मानता है, मीमांसक कर्म और ब्रह्म अद्वैत मानता है; न्याय सोला और वैशेषिक षट् पदार्थ मानता है. उनका खंमन परस्पर एकैकने अपने शिवाय सर्वका कीया है. और सदागमवालोंनें सम्मति, द्वादशसार नयनचक्रसें पूर्वोक्त सूत्रोंका खंमन यथार्थ किया है. तिससें यह अनमिल रंग बिरंगी तर्क प्रमाण बाधित जीर्ण हूई श्रुति सूत्रोंको लेके मतकी गोदम्ी बनाई है. और इनपूर्वोक्त श्रुति सूत्र स्मृतिसूक्तोंके स्वकपोल कल्पित अर्थ बनानेसें गोदम्ी रंगविरंगी और विढंगी बनी है. देखिये, नवीन सत्यार्थप्रकाश पृष्ट २१९, " सूर्याचंद्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्, । दिवं च पृथिवीं चांतरीक्षमथोस्वः " ॥ ऋग्वेद मंमल १, सूत्र १९ मंत्र ३. इस मंत्रमें लिखा है ईश्वरनें आकाश बनाया, रचा है.पृष्ट २१५ में दयानंदजी लिखता है आकाश नित्य है. पृष्ट २०९ में एक सांख्य मतका सूत्र लिखा है, तिसमें आकाशकी उत्पत्ति लिखी है. इस तरें बहुत श्रुतियोंमें आकाशकी उत्पति लिखी है. पृष्ट २१० "तदैक्षत बहुःस्यां प्रजायेयेति । १ । सोऽकामयतबहुः स्यां प्रजायेयेति " । २ । अर्थ—आत्मा देखकर विचार करत है के में प्रजासें बहोत हुं. आत्मा ऐसी इच्छा करता है कि में प्रजाके

वास्ते बहोत हुं " यह तैत्तरेयोपनिषद्का वचन है हो नही मानना " सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन. " यहजी उपनिषद्का वचन है इसकों मिथ्या मशकरीसें कहता है, सो मशकरी यह है—यह वचन ऐसा है जैसाकि कहींकी ईट कहींका रोडा नेनमतीनें कुडवा जोडा, ऐसी लीलाका है. इस तरें सेंकमो श्रुतियाकों मिथ्या ठहराई है, और सेंकमोंके स्वकपोल कल्पित अर्थ करें है. कहीं कहीं सांख्य, वेदांत, न्याय स्मृतिके वचन ग्रहण करें, कहीं स्वकपोलकल्पित कर्थ करें, और कहीं मिथ्या ठहराये; इस कथनसें सत्यार्थप्रकाश जरा पमा है. इस वास्ते दयानंदकी मतगोदमी ओढनें योग्य नही.

ईश्वरका नामकी कल्पित व्युत्पत्ति.

दयानंदनें जो व्युत्पत्तिद्वारा ईश्वरके अग्नि, वायु, रुद्र, सरस्वती. लक्ष्मी आदि नाम सार्थक करे है वे कोई विद्वान नही मानेगा. दयानंदजी अपनें सत्यार्थप्रकाशके प्रथम समुल्लासमें " खं १ अग्नि २ मनु ३ इंद्र ४ प्राण ५ गरुत्मान् ६ मातरिश्वा ७ सुपर्ण ८ जूमि ९ विराट् १० वायु ११ आदित्य १२ मित्र १३ वरुण १४ अर्यमा १५ बृहस्पति १६ सूर्य १७ पृथ्वी १८ जल १९ आकाश २० सविता २१ कुबेर २२ अन्न २३ अन्नाद २४ अत्ता २५ वसु २६ चंद्र २७ मंगल २८ बुध २९ बृहस्पति ३० शुक्र ३१ शनैश्चर ३२ राहु ३३ केतु ३४ होता ३५ यज्ञ ३६ बंधु ३७ पिता ३८ माता ३९ आचार्य ४० गुरु ४१ गणेश ४२ गणपति ४३ देवी ४४ शक्ति ४५ श्री ४६ लक्ष्मी ४७ सरस्वती ४८ धर्मराज ४९ यम ५० काल ५१ शेष ५२ कवि ५३ इत्यादि ईश्वरके नाम लिखे है. जला यह नाम कबीजी ईश्वरके हो सक्के है? अगर जो हो सक्के है तो हम पूछते है कि यह नाम कोनसे कोशके आधारसें लिखे है अगर जो कोश फोस कुछ नहीं

मानते है हमतो अपने ज्ञानके बलसे बनाते है तबतो तुमारे मुखसेंही सिद्ध हूआ कि यह ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश नहीं किंतु असत्यार्थ प्रकाश है, क्योंकि सत्यबातके प्रकाश करणेंके स्थलोंमें तो व्याकरण काव्य कोश अलंकारके अनुसारही रचना करनी कविजनोंके वास्ते लिखी है तबही शास्त्रके अर्थका और शब्दकी शक्तिका ग्रहण हो सकता है. तथाहि–" शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च । वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदंति, सांनिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः " ॥

अर्थ—शब्दकी शक्तिका ग्रहण व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार. शेष वाक्य, विवृति, सिद्धपदकी सानिध्यता इत्यादिकोंके अनुसार होता है. केवल व्युत्पत्ति मात्रसें नहीं होता है. जेकर केवल व्युत्पत्ति मात्रसेंही शब्दकी शक्तिका ग्रहण होवे तबतो यह नीचे लिखे हुवेभी नाम परमेश्वरके होने चाहिये.

१ " अंन्हिः—पुल्लिंग–संसारवृक्षस्य अंन्हिः कोर्थः मूलं तदिव यो वर्तते स अंन्हिः "–अर्थ–संसारवृक्षके मूलकी तरें होनेंसें ईश्वरका नाम अंन्हि है.

२ " अकिंचित्करः—पुं. न किंचित् करोति इति अकिंचित्करः कस्मात् कृतकृत्यत्वात्. " अर्थ—कृतकृत्य होनेंसें कुछभी नही करता है तिस लिये ईश्वरका नाम अकिंचित्कर है.

३ " अकृत्यः पु. न विद्यते कृत्यं यस्य कृतकृत्यत्वात् इति अकृत्यः " अर्थ—कृतकृत्य होनेसे बाकी कुछभी करणेंका नही रहा है तिस लिये ईश्वरका नाम अकृत्य है.

४ " उल्लूकः पु. उद्लति सर्वत्र समवैति व्याप्नोति वा इति उल्लूकः " अर्थ—सर्व जगें व्यापक होनेंसें ईश्वरका नाम उल्लूक है.

५ गर्दभः. पु. गर्दति वेदशब्दं कारयति इति गर्दभः ”
अर्थ—वेदशब्दके करानेंसे ईश्वरका नाम गर्दभ है.

६ बिडालः पु. वेडति शपति दुष्टान् इति विडालः ”
अर्थ—दुष्ट जनोंकु श्राप देणेंसें ईश्वरका नाम विडाल है.

७ “ कुक्कुरः. पु. कौ पृथिव्यां भक्तजनप्रबोधाय वेदध्वनिं कारयति इति कुक्कुरः ” अर्थ—इस पृथ्वीपर भक्तजनोंके बोधके लिये वेदध्वनीके करानेसें ईश्वरका नाम कुक्कुर है.

८ “ यमः. पु. यमयति शुभाशुभकर्मानुसारेण जंतून् दंडयति इति यमः. अर्थ—भले बूरे कर्मोके अनुसार जीवोंके तांड दंड देनेसें ईश्वरका नाम यम है.

९ “ वृश्चिकः. पु. वृश्चति छिनत्ति भक्तजनपापानि इति वृश्चिकः. अर्थ—भक्तजनोंके पापोंका छेदन करनेंसे ईश्वरका नाम वृश्चिक है.

१० “ भारवाहकः. पु. जगतः भारं वहति इति भारवाहकः
अर्थ—जगतका भार वहन करनेंसें ईश्वरका नाम भारवाहक है.

११ “ विट्. पु. विटति आक्रोशं करोति दुष्टान् इति विट् ”
अर्थ—दुष्टोंका उपर आक्रोश करणेंसे ईश्वरका नाम विट् है.

१२ “ मंदः. पु. मंदते मोदते ऐश्वर्यपदे इति मंदः ”. अर्थ-अपनें ऐश्वर्यपदमें नित्य खुशी रहनेसं ईश्वरका नाम मंद है.

१३ “ विश्वकाकः. पु. विश्वे काकः कोऽग्र्यः तिलकमिव वर्तते इति विश्वकाकः. ” अर्थ—इस पृथ्वीरूपी भामिनीके भालस्थलमें तिलककी तरें होनेसें ईश्वरका नाम विश्वकाक है.

१४ “ गरलं न. गिरति प्रलयकाले सर्वेषां शरीराणीति गरलं. ” अर्थ—प्रलयकालमें जीवोंके शरीरोका नाश करनेंसें ईश्वरका नाम गरल है.

१५ " खलः. पु. खलति सृष्टयादिरचनायां स्वस्वज्ञावात् इति खलः " अर्थ—सृष्टि आदि कालमें अपनें स्वज्ञावसें ख-लायमान होनेसें ईश्वरका नाम खल है.

१६ " कुविंदः. पु. कुं पृथ्वीं विंदति कोऽर्थः प्राप्नोति स-र्वत्र व्यापकत्वात् इति कुविंदः. " अर्थ—सर्वत्र व्यापक होनेसे सब पृथ्वीका लाज्ञ हुआ है इस लीये ईश्वरका नाम कुविंद है.

१७ " पापंमीः. पु. पापं खंमयति इति पापंमी. "अर्थ— ज्ञक्तजनोके पापको खंमन करणेसे ईश्वरका नाम पापंमी है.

१८ " बलदः. पु. ज्ञक्तजनान् बलं ददाति इति बलदः." अर्थ—ज्ञक्त जनोंके तांइ बलका दाता होनेसे ईश्वरका नाम बलद है.

१९ " ज्ञगंदरः पु. ज्ञक्तजनानां योनिं कोऽर्थः दुष्टयोनिषु उ-त्पत्तिं दारयति इति ज्ञगंदरः. " अर्थ—ज्ञक्तजनोंकी दुर्गतिको दूर करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम ज्ञगंदर है.

२० " महिषः. पु. मह्यते जनैरिति महिषः. " अर्थ–जनोके समुदाय करके पूज्य होनेसे ईश्वरका नाम महिष है.

२१ " श्वाः, पु. श्वयति कोर्थः वेदध्वनिं प्रापयति इति श्वा. " अर्थ–वेदध्वनिको प्राप्त करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम श्वा है.

२२ " अहिः पु. आहंति ज्ञक्तजनपापानि इति अहिः, " अर्थ–ज्ञक्तजनोके पापोंका नाश करनेसें ईश्वरका नाम अहि है.

२३ " स्त्री. स्त्री. स्यते वेदध्वनीं कारयते इति स्त्री. अर्थ–इस पृथ्वी पर वेदध्वनिकुं प्रगट करनेंसे ईश्वरका नाम स्त्री कहेज्ञी ठीक है.

२४ अज्ञः पु. "नजानाति स्वस्य आदिं इति अज्ञः " अर्थ—अपनी आदिके न जाननेसें ईश्वरका नाम अज्ञ है.

२५ " अंधः पु. अंधयति कोर्थः चर्मचक्षुषा न पश्यति इति अंधः " अर्थ—ईश्वर पोते अपने चरमचक्षुयोसें अपनी इंद्रियोंका द्वारा नही देखनेवाला होनेसें ईश्वरकानामअंधभीकहनाभीठीकहै.

२६ " अमंगलः पु. नास्ति मंगलं कोर्थः पयोजनं यस्य सः अमंगलः " अर्थ—किसी बातका प्रयोजन न होनेसें ईश्वरका नाम अमंगल है.

२७ " गर्दभी. स्त्री. गर्दयति वेदशब्दं कारयति इति गर्दभी" अर्थ—इस पृथ्वी उपर वेदशब्दोंका करानेसें ईश्वरका नाम गर्दभी है.

२८ " गाण्ठी. पु. ज्ञानग्रन्थिरस्यास्ति इति गाण्ठी. " अर्थ-ज्ञानग्रंथिवाला होनेसे ईश्वरका नाम गाण्ठी है.

२९ "चंडालः पु. चंडति दुष्टान् इति चंडालः." अर्थ—दुष्ट जनोंके उपर कोप करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम चंडाल है.

३० " चौरः पु. चोरयति दुष्टानां सुखधनं इति चौरः " अर्थ—दुष्टोंका सुख रूप धन ले लेनेसें ईश्वरका नाम चौर है,

३१ "तुरगः पु. तुरेण वेगेन सर्वत्र व्याप्नोति इति तुरगः."अर्थ-वेगसें सर्वत्र व्यापने वाला होनेसें ईश्वरका नाम तुरग है.

३२ "दुःखं:. न. दुःखयति दुष्टान् इति दुःखं. " अर्थ-दुष्टोंकों सदा दुःख देनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम दुःख है.

३३ " दुर्जनः पु. दुष्टो जनो यस्माज्जायते कस्मात् सर्वोत्पत्ति-कारणत्वात् ईश्वरस्य. " अर्थ-दुष्ट जनोंकी उत्पत्ति इश्वरसें होनेसें इश्वरका नाम दुर्जन है. इति अलं प्रपंचेन.

अब बुद्धजनोकुं विचार करना चाहियेकि केवल व्युत्पत्तिमात्रसें तो यह उपर दिखाये हूये महा खराब नामभी ईश्वरके हो सक्ते है. इस वास्ते दयानंदजीका कहना महामिथ्या है. जो जो

परमेश्वरके सत्य नाम है वे आगे भव्यजनोंके जानने वास्ते लिखते है.

" अर्हन् जिनः पारगतस्त्रिकालवित् क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वरः । शंभुः स्वयंभूर्भगवान् जगत्प्रभुः तीर्थंकरस्तीर्थकरो जिनेश्वरः ॥ स्याद्वाद्यभयदसार्वाः सर्वज्ञः सर्वदर्शिकेवलिनौ । देवाधिदेवबोधिदपुरुषोत्तमवीतरागाप्ताः " ॥ २ ॥

इन दोनों काव्योके अर्थ साथे ईश्वर परमात्माका यथार्थ नामो बतलाते है.

१ " अर्हन्. पु. चतुस्त्रिंशतमतिशयान् सुरेंद्रादिकृतां पजां वा अर्हति इति अर्हन्." मुगृद्विषार्हः सत्रिशतुस्तुत्य इति शृप्रत्ययः अरिहननात् रजोहननात् रहस्याभावाच्चेति पृषोदरादित्वात् अर्हन्. " अर्थ—अद्भूतरूप आदि चौंतीश अतिशयोंके योग्य होनेसें और सुरेंद्रनिर्मित पूजाके योग्य होनेसें तीर्थंकरका नाम अर्हन है. मुगृद्विषादि जैनेंद्र व्याकरणके सूत्रसें यह अर्हन् शब्द सिद्ध होता है. अब दूसरी रीतीसेंभी अर्हन् शब्दका अर्थ दिखलाते है जैसे अष्टकर्मरूप वैरियोंको हननेसें और इस जगतमें तिनके ज्ञानके आगे कुछभी गुप्त नही रहनेसें तिस ईश्वर परमात्मा तीर्थंकरका नाम अर्हन् है.

२ " जिनः. पु.जयति रागद्वेषमोहादिशत्रून् इति जिनः " अर्थ--राग, द्वेष, महामोह आदि शत्रुवोंकु जितनेसें तिस परमात्माका नाम जिन है.

३ " पारगतः पु. संसारस्य प्रयोजनजातस्य पारं कोर्थः अंतं अगमत् इति पारगतः. " अर्थ—संसारसमुद्रके पार जानेसें और सब प्रयोजनोका अंत करनेसें तिस परमात्माका नाम पारगत है,

४ " त्रिकालवित्, पु. त्रीन् कालान् वेत्ति इति त्रिकालवित् "

अर्थ—ज्ञूत, ज्ञविष्यत्, वर्त्तमान, येह तिन कालमें होनेंवाले पदार्थोंका जाननेवाला होनेसें तिस ईश्वर परमात्माका नाम त्रिकालवित् है.

५ " क्षीणाष्टकर्मा. पु. क्षीणानि अष्टौ ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि यस्य इति क्षीणाष्टकर्मा. " अर्थ—क्षीण हो गये है ज्ञानावरणीय आदि अष्ट कर्म जिनके तिस परमात्माका नाम क्षीणाष्टकर्मा है.

६ " परमेष्टी. पु. परमे पदे तिष्टति इति परमेष्टी परमात् तिकिदिति इनि प्रत्यये ज्ञीरुष्टानादित्वात् षत्वं सप्तम्या अलुक् च. अर्थ—परम उत्कृष्ट ज्ञान दर्शन चारित्रमें स्थित होनेसें ईश्वर परमात्माका नाम परमेष्टी है.

७ " अधीश्वरः. पु. जगतामधीष्टे इत्येवंशीलोऽधीश्वरः स्थसज्ञासपिसकसोवर इति वरः. " अर्थ—जगतजनोंकुं आश्रयज्ञूत होनेसें तिस परमात्माका नाम अधीश्वर है.

८ " शंज्नुः. पु. शं शाश्वतसुखं तत्र ज्नवति इति शंज्नुः " शंसंस्वयंविप्रोदुवोडुरिति डुः. अर्थ—सनातन सुखके समुदायमें होन करके ईश्वर परमात्माका नाम शंज्नु है.

९ " स्वयंज्नूः. पु. स्वयं आत्मना तथाज्नव्यत्वादिसामग्रीपरिपाकात् न तु परोपदेशात् ज्नवति इति स्वयंज्नूः. " अर्थ—अपनी ज्नव्यत्वपनाकी स्थिति पूर्ण होनेसें स्वयमेव पैदा होता है इस लिये तिस ईश्वर परमात्माका नाम स्वयंज्नू है.

१० " ज्नगवान्. पु. ज्नगः कोर्थः जगदैश्वर्यं ज्ञानं वा अस्ति अस्य इति ज्नगवान् " अतिशायिने मतुः " अर्थ—इस जगतका सब ऐश्वर्य और ज्ञानहै जिसकुं ऐसे परमात्माका नाम ज्नगवान् है.

११ " जगत्प्रभुः. पु. जगतां प्रभुः जगत्प्रभुः. " अर्थ—इस जगतका स्वामी होनेसें ईश्वरका नाम जगत्प्रभु है.

१२ " तीर्थंकर. : पु. तीर्यते संसारसमुद्रोऽनेन इति तीर्थं प्रवचनाधारश्चतुर्विधः संघः तत् करोति इति तीर्थंकरः." अर्थ-जिस करके संसार समुद्र तरीए सो तीर्थ; तिसकुं करनेवाला होनेसें ईश्वर परमात्माका नाम तीर्थंकर है.

१३ " तीर्थकरः. पु. तीर्थं करोतीति तीर्थकरः. " अर्थ--पूर्वोक्त संसारसमुद्रसें तारनेवाला तीर्थका प्रवर्त्तक होनेसें ईश्वर परमात्माका नाम तीर्थकर है.

१४ " जिनेश्वरः पु. रागादिजेतारो जिनाः केवलिनस्तेषामीश्वरः जिनेश्वरः. " अर्थ—रागद्वेषादि महा कर्मशत्रुवोंके जितनेवाले सामान्यकेवली तीनोंकाभी ईश्वर होनेसें परमात्माका नाम जिनेश्वर है.

१५ " स्याद्वादी. पु.स्यादिति अव्ययमनेकांतवाचकं"ततः स्यादिति अनेकांतं वदतीत्येवंशीलः स्याद्वादी " स्याद्वादोऽस्यास्तीति वा स्याद्वादी यौगिकत्वादनेकांतवादी इत्यपि पाठः. " अर्थ–सकल वस्तुस्तोम अपने स्वरूप करके कथंचित् अस्ति है और परवस्तुके स्वरूप करके कथंचित् नास्तिरूप है ऐसा तत्व प्रतिपादन करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम स्याद्वादी है.

१६ " अभयदः. पु. भयमिहपरलोकादानाकस्माद्आजीवमरणाश्लाघाभेदेन सप्तधा एतत्प्रतिपक्षतोऽभयं विशिष्टमात्मनः स्वास्थ्यं निःश्रेयसधर्मनिबंधनभूमिकाभूतं तत् गुणप्रकर्षादचिंत्यशक्तियुक्तत्वात् सर्वथा परार्थकारित्वाद्ददाति इति अभयदः. " अर्थ–सर्वथा अभयका देनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम अभयद है.

१७ " सार्वः. पु. सर्वेभ्यः प्राणिभ्यो हितः सार्वः. " अर्थ–सर्व प्राणीके पर हितकारी होनेसें ईश्वरका नाम सार्व है.

१८ " सर्वज्ञः. पु. सर्वं जानातीति सर्वज्ञः. " अर्थ—सर्व पदार्थोंकुं अपने ज्ञानद्वारा जाननेवाला होनेसें ईश्वरका नाम सर्वज्ञ है.

१९ " सर्वदर्शी. पु. सर्वं पश्यतीत्येवंशीलः सर्वदर्शी. " अर्थ—अपने अखंम ज्ञानद्वारा सर्व वस्तुको देखनेका स्वजाव है जिसका इस लीये ईश्वरका नाम सर्वदर्शी है.

२० " केवली. पु. सर्वथाऽऽवरणविलये चेतनस्वजावाविर्जावः केवलं तदस्यास्तीति केवली. " अर्थ—सर्व कर्म आवरणके दूर होनेसें चेतनस्वजावका प्रकट होना सो केवल. ऐसा केवलका धारक होनेसें ईश्वर परमात्माका नाम केवली है.

२१ " देवाधिदेवः. पु. देवानामप्यधिदेवो देवाधिदेवः. " अर्थ—देवताकाजी देव होनेसें ईश्वरका नाम देवाधिदेव है.

२२ " बोधिदः. पु. बोधिः जिनप्रणीतधर्मप्राप्तिस्तांददाति इति बोधिदः. " अर्थ—जिनप्रणीत शुद्ध धर्मरूप बोधिबीजका देनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम बोधिद है.

२३ " पुरुषोत्तमः. पु. पुरुषाणां उत्तमः पुरुषोत्तमः. " अर्थ—पुरुषोंके बिच सर्वोत्तम श्रेष्ठता धारण करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम पुरुषोत्तम है.

२४ " वीतरागः. पु. वीतो गतो रागोऽस्मात् इति वीतरागः. " अर्थ—दूर हो गया है अंगनादिकोंसें राग जिसका इस लिये ईश्वर परमात्माका नाम वीतराग है.

२५ " आप्तः. पु. जीवानां हितोपदेशदातृत्वात् आप्त इव आप्तः. " अर्थ—जीवोके तांइ हितोपदेश करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम आप्त है.

यह नामो सत्य परमेश्वरके है.

जगतकर्ता ई- श्वरका खंडन. आगे दयानंदजीने जो जगतका कर्ता ईश्वर माना है तिसका खंडन लिखते है.

सर्व जगतके बनानेसें ब्रह्मा परमेश्वरका नाम है. यह गुण परमेश्वरमें कबी कही हो सकता है. क्योंकि दयानंदजी सत्यार्थप्रकाशमें लिखता है, पृष्ट २२२ में, जब सृष्टिका समय आता है, तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थोंकुं एकठा करता है. जला अनंतशक्तिवाला होकर परमात्मा पामरोंकी तरें पदार्थ एकठे करे है. फेर उनसें महतत्व बनावे है, तिनसें अहंकार, तिससें पंचतत्वमात्र इत्यादि क्रमसें सृष्टि बनाता है तो हम पुछते है इतनी मेहनत करके जो ईश्वर सृष्टि बनाता है परमात्माकों कोइ जरूरता है वा वे पदार्थ ईश्वर आगे विनति करते है. प्रथम पक्ष मानोंगेतो ईश्वर कृतकृत्य नहि रहेगा, कर लिये है करने योग्य काम जिसनें उसका कृतकृत्य कहते है. ईश्वरका तो बडा जारी काम रहता मालूम होता है जो इतनी मेहनतसें सृष्टि बनाना स्वीकार कीया है. जेकर कहोगे ईश्वरको कोइ प्रयोजन नही तो फेर काहेको इतनी मेहनत उगाता है, विना प्रयोजनतो मंद पुरुषजी नही प्रवृत्त होता है. जेकर कहोगे ईश्वर दयालु है, दया करके प्रलयमें स्थित जीवांको प्रलयसें निकाल कर उनका सुख देने वास्ते नवीन शरीर बना कर उनके साथ संबंध कर देता है तो हम पूछते है प्रलयमें उनका क्या दुःख था, जेकर कहोगे वहां सुखजी क्या था वहतो सुषुप्तिक सदृश है, तो हम पुछते है जला जिन जीवांकोतो सुखी रचा उनकों तो सुख दीया परंतु जिन जीवांको दुःखी रचा उनकों क्या सुख दीया. जो कुष्ट, जगंदर, जलोदर, शरीरमें कृमि पडे हूवे, महादुःख जोग रहे है, खानेको टुकडाजी नही मिलता है, शरीरमें रोग हो रहा है, मस्तकोपरि लकडीयांका जार उगाया हूवा है, इत्यादिक परम दुःखोंसें पी-

भित हो रहे है इनों उपर ईश्वरनें क्या दया करी. इस दया करनेसेंतो ना करनी अच्छी थी. बिचारें गरीब जीव सुखसें सोये हुवे थे उनका ईश्वरकी दयानें विपदामें डाल दिया. किसी आदमी सोतेकों जगादेवे तो वो मनमें दुःख मानता है. उन जीवांको तो ईश्वरकी दयानें सोताकों जगाकर नरकमें डाल दीया, वे बिचारें जीव तो ईश्वरकी दयाकी बहुत स्तुति करते होगे. सुज्ञ जनों! देखीये, यह दया है कि हिंसा है. हम नही जानते ऐसी दया माननेवाले कौनसा मोहको प्राप्त हो रहे है. जे कर कहोगे ईश्वर क्या करे वे जीव ईश्वर आगे विनती करते है, ईश्वर उनकी प्रार्थनाको क्योंकर नंग करे; यह कहेनानी अज्ञानताका सूचक है. क्योंकि प्रथमतो उन जीवांके शरीर नही है, वे तालु आदि सामग्री विना बोलनी नही सकते, विनती करनीतो दुर-रही, नला, जीनं जीवोंको सुखी रचा उननेंकी तो विनती करनीनी बन सक्ती है, जिन जीवांको दुःखी रचा वे जीव अपने दुःखी होने वास्ते कैसे विनति करते होंगे. जेकर कहे वे जीव विनती नही करते परंतु उन जीवोंके साथ जो कर्म लगे हुवे है उनका फल नुगताने वास्ते ईश्वर सृष्टि रचता है तो हम पुछते है जेकर ईश्वर उमकों कर्मोंका फल न नुगतावे तो क्या वे कर्म ईश्वरको दुःख देते थे, जो उनके दुःखसे डर कर सृष्टि रचता है जेकर कहोगे ईश्वरको जीवांके कर्मोनें क्या दुःख देना था. वो तो अनंतशक्तिमान् है. ईश्वर तो फक्त क्रीडावास्तेही सृष्टि रचता है. वाह! अच्छा ईश्वर तुमने माना है जो अपनी खेल वास्ते जीवांको अनेक दुःखोंमें गेरता है अपनी खेल वास्ते गरीब जीवांको नरकमें गेरना, रुवाना, पिटाना, रोगी दरिद्री करना यह दयावान्‌का काम नही. सच है कि चिडियोंकी मौत गवांरोंकी हांसी. जेकर वगर विचारें कहे ईश्वर खेल वास्ते

नही सृष्टि रचता, किंतु ईश्वरका स्वन्नावही अनादि कालमें सृष्टि रचनेका है, तो निष्प्रयोजन परजीवांकों दुःख देनेके स्वन्नाववाला है, वो कबी ईश्वर नही हो सकता है, जैसे कमवे स्वन्नाववाला नींब मीसरी नही हो सकता है. अब जब सृष्टि बनानेका प्रयोजन नही तो सृष्टि ईश्वरनें बनाई है यह क्योंकर सिद्ध होवेगा. जब कोईन्नी प्रयोजन ईश्वरकें सृष्टि बनानेंमें न मिला तब दयानंदजीनें सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २१३ में नही बनानेंमें क्या प्रयोजन है ऐसा लिखा. बमे शोककी बात है दयानंदजी ऐसे बुद्धिवान् नाम धरा कर ऐसा प्रश्न पुबा, जिसका उत्तर बालकन्नी दे सकते है; प्रयोजनका अन्नाव यह न बनानेका प्रयोजन है; यह बात सब सामान्य लोकन्नी जानते है, जिस काम करनेका कुब प्रयोजन नही उस कामको कोई नही करता.

फेर पृष्ठ २१३ में स्वामीजी लिखता है न बनाना यह आलसी और दरिद्र लोगोंकी बाते है, पुरुषार्थीकी नही, और जीवांको प्रलयमें क्या सुख वा दुःख है ? जो सृष्टिके सुखदुःखकी तुलना की जाय तो सुख केई गुना अधिक होता है, और बहूतसें पवित्रात्मा जीव मुक्तिके साधन कर मोक्षके आनंदकोन्नी प्राप्त होते है. प्रलयमें निकम्मे जैसे सुषुप्तिमें पमे रहते है वैसे रहते है और प्रलयके पूर्वसृष्टिमें जीवोंके कीये पाप पुण्य कर्मोका फल ईश्वर कैसे दे सक्ता और जीव क्योंकर न्नोग सकते तिसका उत्तर—न्नला जो काम निकम्मा होवे जिसका प्रयोजन कुब न होवे. करनेंमें अनंत जीवांकों दुःख उत्पन्न होवे, ऐसे कामके करनेवालेकों न्नला मानस और न करनेवालेको दरिद्री कौन बुद्धिमान् कह सक्ता है; कोइन्नी नही. और जो लिखा सुख केई गुना अधिक होता है बहुत पवित्र जीव मुक्तिके आनंदको प्राप्त होते है, न्नला! जिन

जीवांको दुःख उत्पन्न हो गया, नरकमें अनंत दुःख भोगना पडा, उनको निकाल कर क्या सुख दीया? उन जीवां वास्ते तो ऐसा पुरुषार्थी ईश्वर नहोता तो अच्छा था, वाह! यही ईश्वरका पुरुषार्थ है जो बिना प्रयोजन जीवांको दुःख देना? फेर जो दयानंदजी लिखता है, प्रलयमें निकम्मे सुषुप्ति जैसें पडे रहते है तो हम पूछते है परमेश्वरका निकम्मे देखकर क्या पेटमें शूल उठावे. नहीं कुछ काम करतेथे तो परमेश्वरका कौनसा गाडा अडका हूवा था. जब प्रलयसें निकालनेसें काम करने लगे तब कौनसा दुःख मिट गया. अलबतां उनकों नरक, स्वर्ग, सुख दुःख, पशु पक्षी इत्यादिक अनेक तरेका फल देनेका टंटातो गलेमें जरूर पड गया. यह कहनी दयानंदके ईश्वरकों लागू पडी निकम्मी नायनका टटू मूंडे. फेर जो लिखा है प्रलयके पूर्व सृष्टिमें जीवोंके किये पाप पुण्य कर्मोंका फल ईश्वर कैसै दे सक्ता. सक्ता है हम पुछते है ईश्वर उनको फल न देता तो क्या उनके पापोका फल ईश्वरको भोगना पडता था. जेकर कहोगे, नहीं, तो फेर किस लियें उनको दुःखमें डाला. जेकर कहोगे ईश्वर न्यायी है, जेकर उनको कर्मोका फल न देवेतो ईश्वरका न्याय नहीं रहता है. जैसे अबभी जो कोई चोरी, यारी, खून वगैरे करता है. उनके करनेंसें राजाको कोईभी दुःख नही होता है तो भी अपनें न्याय वास्ते राजा उनको दंड देता है. यहभी तुमारा विना विचारका कथन है. क्योंकि जब किसी एक पुरुषनें दुसरेका धन लूट लीया और उसको मार दिया जेकर राजा उसको दंड न देवे तो उनको देख कर दूसराभी ऐसें करे, दुसरेको देख कर तीसराभी ऐसें करे, राजाका तो भय है नहि तबतो आगेको वे विशेष करके उपद्रव करें, कितनेक लोक परस्पर लड कर मर जावे, बहुत लोक दुःखी होकर उस राजाकों नपुंसक जानकर उस राजाके

राजाकों छोडकर दूसरे राजाके राज्यमें जा वसे, तबतो उस राजेकों राज्य नष्ठ हो जावे जब उसके संपूर्ण सुख नष्ठ हो जावे; तुमारा ईश्वर जेकर उनकों दंम न देता तो उसकेन्नी सुख नष्ठ हो जाते थे ? उस राजाकी प्रजा एक दूसरेकों देखकर उप-इवन्नी कर सक्ती है. वे जो जीव सुषुप्तिकी तरें प्रलयमें पडे है वे तो कुछन्नी नही करते, न आगेको करनेके है. उनकों दंम न देनेसें ईश्वरका कौनसा राज्य नष्ठ हो जाता था. जे कर कोई नास्तिक ऐसें कहे ईश्वरकातो कुछन्नी नष्ट नहीं होता था प-रंतु जेकर ईश्वर दंम न देवे तो ईश्वरका न्यायीपणा नही रह-ता है. हम पूछते है, ईश्वरको न्यायी किसनें बनाया है कि तुम हमारा न्याय करा करो. जेकर तुम कहोगे अनादि न्यायी है तो हम पूछते है जैसे ईश्वर अनादि है ऐसे जीवन्नी अनादि है यह क्यों कर न्नेद पड गया, एक जीव न्यायी, शेष सर्व अन्यायी, एक जीव स्वतंत्र, शेष सर्व परतंत्र, एक जीव सर्वज्ञ, शेष सर्व असर्वज्ञ. जेकर कहोगे जैसे आकाश और जीव दोनो अनादि है तदपि एक चेतन है, एक जड है ऐसा ईश्वर जीवन्नी न्यायी अन्यायी है. यहन्नी कहना तुमारा मि-थ्या है. क्योंकि जीव और आकाश न्निन्न न्निन्न जातिवाले प-दार्थ है. इनके न्नेद होनेमें जातिका न्नेद कारण है. ईश्वर और जीव एक आत्मतत्व जातिवाले पदार्थ है. इनके स्वरूपमें न्नेद कन्नी नही बन सक्ता, जेकर कहोगे इनके स्वरूपमें तो न्नेद नही. जैसें पुण्य पापकी न्यूनाधिकतासें जीवोंका परस्पर न्नेद है ऐसे पुण्य पापके अन्नावसें जीव ईश्वरका न्नेद है तो हम पूछते है, ईश्वरमें पुण्य पापका अन्नाव कब हूवा, जेकर तुम कहोगे ईश्वर अनादिसें पुण्य पापसें रहित है, तो हम पूछते

है तुल्य जाति वाले होनेसें जीवन्नी अनादिसें पुण्य पापसें रहित क्युं नहीं हुवे ? इससें एकला ईश्वर कन्नी न्यायी नहीं सिद्ध होता है. जेकर नास्तिक कहे जेकर तुल्य जाति करके न्नेद न मानोंगे तो अनादिसें सर्व जीव पापवाले अथवा पुन्यवाले होने चाहीये थे परंतु हम देखते है केई जीव पापवाले है, केई पुण्यवाले है ऐसेही ऐसेही कोई जीव अनादिसें पुण्य पापसें रहित सिद्ध हो जावेगा. हे नास्तिक ! यह तेरा कहेना अति मूर्खपणेका सूचक है क्यों कि कोई ऐसा जीव नही जो केवल पुण्यवालाही है और ऐसान्नी को जीव नही जो केवल पापवाला है. किंतु पापपुण्य दोनों करी संयुक्त सब जीव अनादि कालसें चले आते है. जो जीव मुक्तिके साधन करता है वो पाप पुण्यसें रहित हो जाता है. अनादि न्यायी कन्नी पाप पुण्य करके युक्त नही था. ऐसा नास्तिकोंका ईश्वर कन्नी नही सिद्ध हो सक्ता. अब कहना चाहिये तुमारे ईश्वरकों किसनें न्यायी बनाया है, हे नास्तिक ! न्यायी उसका नाम है जो सचको सच, जूठकों जूठ कहे, किसीका पक्षपात न करे. परंतु तुमारा ईश्वर ऐसा नही हो सक्ता है, क्यों कि जो पहले तो जीवांको पाप करतेको न रोके, जब पाप कर चूके तो पीछे झट दंम देनेकों तैयार हो जावे. ऐसे अन्यायीको कौन बुद्धिमान न्यायी मान सक्ता है ? इस न्यायसें तो आधुनिक राजेन्नी अछे है. जो इनकों खबर हो जावे इस मनुष्यनें चोरी करनी है वा खून करना है, उसकों पकम कर पहलेही उसकी जामीनी आदि बंदोबस्त कर लेते है. जेकर नास्तिक कहे वेदका उपदेश देकर ईश्वरनेंन्नी पहलेही सब जीवांको पाप करनेंसें रोका है, तो हम पूछते है जो ईश्वरके उपदेशकों न मानकर पाप करते है क्या वे ईश्वरसें जोरावर है जो ईश्वर उनको पापकरतेको देख कर उसी वखत उनको बंद

नहीं करता, उनका मन नहीं फेरता, उनके हाथ पग नहीं तोडना, इत्यादि करके पाप करनेंसें पहलेही क्यों नही उनको बंद करता ? जेकर कहोगे पहले ईश्वरमें सामर्थ्य नही तो पीछे कहांसें आई ? और सदा अनंतशक्तिवाला क्यों कर सिद्ध होगा ?

तथा हे नास्तिक ! प्रलय कालमेंजी जीव पाप पुण्य करी संयुक्त होते है उस कालमें ईश्वर फल क्यों नहीं देता ? जेकर कहोंगे उस कालमें कर्मफल देनेंसें उन्मुख हो जाते है तो ईश्वरकों फलदाता मानना निरर्थक है. फल देने न देने वालेतो कर्म हूए.

नास्तिक और आस्तिकका संवाद.

नास्तिक—कर्म तो जड है यह क्यों कर अपनें आप फल दे सके है.

आस्तिक—जहरतो जड है यह क्यों कर अपने आप फल खाने वालेको मार देता है.

नास्तिक—ईश्वर जेकर फल न देवेतो ईश्वरमें जो अनंत सामर्थ्य है वो सृष्टि रचे विना क्यों सफल होगी?

आस्तिक—ईश्वरमें जो सृष्टि रचनेकी सामर्थ्य सृष्टि रचे विना सफल न होवे तो मनुष्यका अवतार धार कर स्त्रियोंसें जोग करना, परस्त्रियोंके कपडे चुराने, उनकों अपने सन्मुख नग्न खडी करना, स्त्री आगे नाचना, अपनी बेटिसें जोग करना, सतीयाके शील भ्रष्ट करने वास्ते जिखारीका रूप धारन करना, इत्यादिक अनेक कुकर्म करके पीछे निराकार निरंजन परमात्मा बन बयठना इत्यादिक जो ईश्वरमें सामर्थ्य है तो इन कामोंके कीये विना क्योंकर सफल होगी. जेकर कहोगे यह सामर्थ्य ईश्वरमें नही, तो हे नास्तिक ! सृष्टि रचनेकी सामर्थ्य कैसे होगी ? जेकर कहोगे ईश्वरमें अनंत शक्ति है इस वास्ते सृष्टि रच सका

है, तो पूर्वोक्त काम करन कालमें क्या वो अनंत शक्ति नष्ट हो जाति है ?

नास्तिक—ईश्वर असंभवकाम नही करता. पूर्वोक्त काम असंभव है. इस वास्ते ईश्वर नही करता.

आस्तिक—सृष्टिका रचनाभी असंभव है यह क्यों कर करता है ?

नास्तिक—ईश्वरके कीये हुवे नियम जैसे अग्नि उष्ण, जल, शीतल इत्यादि इनकों ईश्वरभी नही बदल सक्ता है, इस लिये सर्व शक्तिमान्‌का अर्थ इतनाही है कि परमात्मा, बिना किसीके सहायक सब कार्य पूर्ण कर सक्ता है.

आस्तिक—जब ईश्वरमें अपने करे हुवे नियमोके बदलनेकी सामर्थ्य नही तो वह नियम ईश्वरनें करे है यह क्योंकर सिद्ध होगा ?

नास्तिक—विना कर्त्ताके कोईभी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नही बन सक्ता. जिन पृथ्वी आदि पदार्थोमें संयोग विशेषसें रचना दीखती है वे अनादि कभी नही हो सक्ते. इससें सृष्टिका कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है.

आस्तिक—पृथ्वी आदि पदार्थोकी जो रचना है उनका कर्त्ता पृथ्वीकायकादि जीव है, ईश्वर नही. यह रचना प्रवाहसें अनादि अनंत है, पर्यायकी अपेक्षासें सादिसांत है.

नास्तिक—संयोग कोईभी अनादि नही हो सक्ता है.

आस्तिक—हे नास्तिक ! तुमारे ईश्वरके अंशोके संयोगकी जो रचना है उसका कौन कर्त्ता है ?

नास्तिक— ईश्वरतो निरंश. है. जेकर ईश्वरका अंश होवे तो उनके संयोगद्वारा ईश्वरकी रचनाका कर्त्ताभी कोई सिद्ध होवे.

आस्तिक–जेकर ईश्वर निरंश होवे तो घटपटादि सर्व पदार्थोंमें व्यापकनही सिद्ध होगा, क्योंकि एक परमाणुमें ईश्वर सर्वात्मा करके रहता है के एक अंश करके? जेकर सर्वात्मा करके रहता है तो एक परमाणु प्रमाण ईश्वर सिद्ध होगा, जेकर कहोगें एक अंश करके रहता है तो सिद्ध हुवा ईश्वर अंशो वाला है, निरंश नही..

नास्तिक–ईश्वरके अंशोका संयोग अनादि है.

आस्तिक—पृथ्वी आदि पदार्थोंके संयोगकों अनादि कहतेको क्या लज्जा आती है?

नास्तिक—आदि सृष्टि मैथुनी नही होती.

आस्तिक—यह तुमारा कहना असंभव है. इसमें कोइभी प्रमाण नही.

नास्तिक—जो कोई पदार्थको देखता है तो दो तरेंका ज्ञान होता है. एक जैसा वह पदार्थ हैं. दूसरा उसकी रचना देखकर बनानें वालेका.

आस्तिक—इंद्र धनुष्य देखकर इंद्रधनुष्यका ज्ञान होता है यह किसीने बनाया है ऐसा कीसीकोभी ज्ञान नही होता है.

नास्तिक—यह पृथ्वी परमेश्वरनें धारण करी हूई है.

आस्तिक— मूर्त्त पदार्थोंको अमूर्त्त कभी धारण नही कर सक्ता, जेकर करता है तो आकाशमें पृथ्वीसें एक गज उंची ईंट देख कर तो दिखावो.

नास्तिक—ऐसातो कोई मूर्त्त पदार्थ नही अधरमें मूर्त्त पदार्थकों धारण करे.

आस्तिक—तृणादि अनेक पदार्थोंकों धारन करता हुवा वायु तुमकों नही दीखता जो ईश्वरके माथे उपर इतना भार देकर अपना मजूर बनाते हो.

सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ४३० में दयानंदने ऐसी गप्प मारी है

दयानंदका कु-तर्क.

कि जैनी कहते है पृथ्वी नीचे नीचे चली जाती है. हम पूछते है जैनशास्त्रमें तो ऐसा लेख नही है. दयानंदनें कौनसें जैनशास्त्रमें देख कर यह लिखा है ? हमकों आश्चर्य होता है कि दयानंदजी ऐसा निःकेवल जूठ लिख कर जूठ बोलने वालोमें अग्रणीकी पदवी लेते जिसने अपने वेदके अर्थ पूर्वाचार्योंके कीये हुवे छोड कर मनोकल्पना करके जूठे मन माने बना लीये है वो दूसरे मतकें शास्त्रोका अर्थ क्यों न जूठा करेगा ? ऐसेही सत्यार्थप्रकाशमें और अनेक जूठ बातें लिखी है.

जैन मतकी बाबत जो दयानंदजीने जैनीयोंसें बहूत दुःखी होके जैन मतका कितनाक गबड सबड लिखके खंडन लिखा है तिसका कारण यह है. संवत १९३७ का चौमासा हमारा पंजाब देशके गूजरांवाले नगरमें था. तहां दयानंदजीका बनाया हुवा प्रथम सत्यार्थप्रकाश जब देखने में आया तब तिसमें दयानंदजीने स्वकपोलकल्पित बातोंसें जैन मतका खंडन लिखा देखा. तिसमें एक ऐसी बडी गप्प अनघड लिखीके चार्वाक आभाणकके बनाये श्लोक (लिखके लिख दिया के ये श्लोक) जैनोंके बनाये है. तिसकी बाबत पंजाब निवासी लाला ठाकुरदासनें पत्रद्वारा दयानंद सरस्वतीजीकों पूछाकि तुमनें अपनें सत्यार्थप्रकाशमें जो श्लोक जैन मतके लिखे है तिनका स्थान बतलाओ कौनसें जैन मतके शास्त्रके है. दयानंदजीनें सीवाय धमकियांके अन्य कुछभी उत्तर नही दिया. अनुमानसें दो वर्षतक पूर्वोक्त प्रश्नमें ठाकुरदाससें पत्र व्यवहार रहा. अंतमें ठाकुरदासनें मुंबई जाकर दयानंदजी योग्य मेसर्स स्मीथ और फ्रिअर सोलिसिटर्सकी मार्फत नोटीस दिया. तिसका उत्तरभी संतोषकारक न मिला. तब ठाकुरदासनें दया-

नंदजीके साथ जो परस्पर पत्रव्यवहार हूआ था तिनमेंसें प्रथम पत्रोंको एकत्र करके दयानंदमुखचपेटिका नाम पुस्तकका प्रथम न्नाग उपवाके प्रसिद्ध करा. इत्यादि कारणोंसें दयानंद सरस्वतीजी नें बहुत खीज करके दूसरें सत्यार्थप्रकाशमें पूर्वोक्त श्लोकोकों ठिकाने लगाया परंतु कितनीक बाते स्वकपोलकल्पिक करके जैन मतियोंकों तिरस्कार करनेवाले वचनोंकी वर्षा करी है. तिनका उत्तर यहां हम लिखते है.

नवीन सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ४०१ में जो दयानंदजी लिखता है कि आन्नाणक चार्वाकनें जो लिखा है वेदके कर्ता न्नांम धूर्त और निशाचरवत् पुरुषोंनें बनाये है यह जूठ है, ! हां न्नांम धूर्त निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हूए है, उनकी धूर्तता है वेदोकी नही. इसका उत्तर, दयानंदजीके लिखने मूजब तो जो आन्नाणक चार्वाकनें लिखा है कि धूर्तोंकी रचना, अति बिन्नत्स कार्य करना कराना धूर्तोके विना नहीं हो सक्ता १० और जो मांसका खाना लिखा हे वह वेद न्नाग राक्षसका बनाया है ११ पृष्ट ४०१ में, यह कहना आन्नाणकका सत्य मालुम होता है. क्योंकि यजुर्वेदकी टीकामें वेदश्रुतियोंका वैसाही अर्थ महीधर आदिकोंनें करा है और जैसे वेदश्रुतियोंके अर्थ महीधर, उव्वट, रावण सायन, माधव आदिकोंने करे है तैसेंही आर्यावर्त्तके प्राचीन वैदिक मतवाले मानते चले आये है, तो फेर इस कथनमें आन्नाणकनें क्या जूठ लिख दिया है जिसको वांचके स्वामीजी कूदते और गन्नराते है. हां, दयानंदकी रची स्वकपोलकल्पित न्नाष्य जेकर आन्नाणक बांचता और सच्ची मानता तो ऐसा न लिखता; इस वास्ते वेदकी रक्षा करने वास्ते दयानंदजीके ईश्वरनें दयानंदजीको सत्य न्नाष्य बनाने वास्ते सर्व न्नाष्यकारोसें पहिला जन्म न दिया यह दयानंदजीके ईश्वरकी न्नूल है. तथा दयानंदके ईश्वरनें अपने

बनाये वेदोंके झूटे अर्थ बनाते हूए लिखते हूए महीधर आदि-कोंकी हस्तांगुलियों न स्तब्ध करी, जिव्हा आकर्षण न करी, आदि सत्यानाश न करा यह दयानंदजीके ईश्वरकी असमर्थता वा अज्ञता सिद्ध होती है. तथा दयानंदजीनें महीधरादिकोंको वाममार्गी और कुकर्मी लिखे है परंतु हम तो ऐसा वचन नही लिख सक्तेहै.

दयानंदजी लिखते है कि बमा शोक है कि जैनाचार्योंनें वेदकी संहिता नही पढी थी, जिससें वेदकी निंदा कर गये और करते है. उत्तर, भगवंत श्रीमहावीरके बडे शिष्य गौतम आदि इग्यारे गणधर सर्व विद्यायोंके पारगामी अग्निहोत्री ब्राह्मण थे. तथा इनके शिवाय शय्यंभवभट्ट आदि सैंकमो जैनाचार्य चार वेदके पाठी थे. इस वास्ते वेदांको हिंसकशास्त्र जानकर, तिनको त्याग कर परमदयामय जैनधर्म अंगीकार करा. हां, दयानंदजीकी स्वकपोलकल्पित भाष्य हमारे आचार्योंनें नही पठन करी थी, न होनेसें. जो तिनके समयमें दयानंदजी वेदभाष्य बनाते तो छि छि तो करते. दयानंदजीकी भाष्य वांचकर मैरा निश्चय खूब दृढ हूआ कि इसीतरें स्वकपोलकल्पनासें आर्य वेदोंके नष्ट होनेसें ऐसे वेद हो गये है. बृहस्पति चार्वाकमतका आचार्य था, वोभी चार वेदका पाठी था, परंतु वेदरचनाकों अयौक्तिक जानके नास्तिक मत वेद श्रुतियोंसे निकाला मालुम पमता है, तिन श्रुतियोंमेंसें यह एक श्रुतिका नमुना है.

" विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येव अनु विनश्यति न प्रेतसंज्ञा अस्ति । "

अर्थ—विज्ञानघन आत्मा इन भूतोंसें उत्पन्न हो करके तिन भूतोंको कायाकारसें नाश होतोंके साथही नाश हो जाता है इस वास्ते प्रेतसंज्ञा अर्थात् परलोक नामकी संज्ञा नही है.

बृहस्पति मतका आर्यसमाजका मतकी साथ कुछ साधर्म्य-भी मालुम होता है. बृहस्पति पांच भूत मानता है, और दयानंदजी पांच भूत मानता है; बृहस्पति मनुष्य तिर्यंच पशुकी गति शिवाय नरक और स्वर्गगति अर्थात् नारकी देवतायोंके रहनेका नरक स्वर्ग इस जगतके शिवाय कहीं नही लिखता है, ऐसेही दयानंदजी मानता है; जैसे बृहस्पति सदामुक्त नही मानता है, तैसें दयानंदजी सदामुक्त रहता नही मानता है; इत्यादिक कितनीक वस्तुयेंके माननेसें चार्वाकका मत दयानंदका सधर्मी मालुम पमता है.

और जो दयानंदजी चार्वाकमतकों जैनमतका संबंधी लिखता है तथा जैन बौद्धमतको एक लिखता है तिसमें राजा शिवप्रसादके इतिहासतिमिरनाशककी गवाही लिखता. तिस वास्ते हमने बाबु शिवप्रसादकी हस्ताक्षरकी पत्रिका मंगवाई सो यहां दर्ज करते है.

बाबु शिवप्रसादकी हस्ताक्षर पत्रिका.

श्री ५ सफल जैन पंचायत गुजरावालोंको शिवप्रसादका प्रणाम पहुंचे. कृपापत्र पत्रों सहित पहुंचा.

१ जैन और बौद्धमत एक नहीं है. सनातनसें भिन्न भिन्न चले आये है. जर्मन देशके एक बमे विद्वाननें इसके प्रमाणमें एक ग्रंथ छापा है.

२ चार्वाक और जैनसें कुछ संबंध नही. जैनको चार्वाक कहना ऐसा है जैसा स्वामी दयानंदजी महाराजको मुसलमान कहना.

३ इतिहासतिमिरनाशकका आशय स्वामीजीकी समजमें

नही आया. उसकी भूमिकाकी (१) नकल इसके साथ जाती है. उससे विदित होगाकि, संग्रह है, बहुत बात खंडनके लिये लिखी गई, मेरे निश्चयके अनुसार उसमें कुछभी नही है.

४ जो स्वामीजी जैनको इतिहासतिमिरनाशकके अनुसार मानते है तो वेदोंकोंभी उसके अनुसार क्यौं नही मानते.

बनारस १ जान्युआरी आपका दास
सन १८७३ ई० शिवप्रसाद.

इस राजा शिवप्रसादके लेखसें जो दयानंदजी जैन बौद्ध चार्वाक मतको एक कहता है सो महामिथ्या है. दयानंद सरस्वतीजीकी हुंडी कहींभी नहीं सिकरती है.

तथा दयानंदजी जगे जगे ऐसें लिखता है जैनीयोमें विद्या नही थी. तथा अन्यमतवालोंकोंभी ऐसेही लिखता है. यह लिखना ऐसा है जैसा मारवाडमें पद्मिनी स्त्रीका होना. जैसे मारवाड में एक काली, कुदर्शनी, दंतुरा, चिपटी नासिका, विरूप रूप वाली, एक स्त्रीकों किसीने पुछा कि तुमारे गाममें पद्मिनी स्त्री सुनते है तिसको तुं जानती है ? तब वो दीर्घ उच्छवास लेके कहती है कि मेरे सिवाय अन्य पद्मिनी स्त्री कोई नही, मुजको बहुत शोक है कि मेरे समान कोई पद्मिनी न हूई न होगी. मेरे मरण पीछे जगतमें पद्मिनी स्त्री व्यवच्छेद हो जावेगी. भला, यह बात कोई शुद्ध जन मान लेवेगा कि जैनमतमें वा अन्य मतमें कोईभी विद्वान् नही हूआ है ?

सप्तभंगीमें दयानंदका कुतर्क.

दयानंदजी सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ४१० में लिखता है, बौद्ध और जैनी लोग सप्तभंगी और स्याद्वाद मानते है. यह लेख निः

केवल जूठ है बौद्ध लोगतो सप्तभंगी स्याद्वादके शत्रु है. वांचक वृंद ! तुमने कभी जैन मतके सिवाय अन्य मतमें स्याद्वाद सप्तभंगी सुनी है ? तत्वलोकालंकार, स्याद्वादरत्नाकर, अनेकांतजयपताका आदि जैन मतके शास्त्रोमें पूर्वपक्षमें बौद्ध लोकोंनें जैनके शत्रु होके बहुत जैनमय स्याद्वाद सप्तभंगीका खंमन लिखा है. अब दयानंद लिखता है बौद्ध लोग स्याद्वाद सप्तभंगी मानता है यह केवल दयानंदका जैनमतानभिज्ञता और विवेकविकलता सिद्ध करता है. स्याद्वाद इस पदका यथार्थ अर्थ जैनीयोंके शिष्य बने विना अन्य प्रकारसें नहीं आवेगा. गोविंद, कुमारीलभट्ट नुदयनकी तरें जैनीयोंके शिष्य बनके शिखे तो कदाचित् आवी जावे.

आगे भी व्यासजीनें ब्रह्मसूत्रमें "नैकस्मिन्नसंभवात्" इस सूत्रमें सप्तभंगीका खंडन करा है. इस सूत्रकी शारीरिक भाष्यमें शंकराचार्यनें सप्तभंगीका खंमन लिखा है. पीछे सायन, माधव, विद्यारण्यनेंभी सप्तभंगीका खंमन लिखा है; सप्तभंगी जिसतरें जैन मानते है और जैसा खंमन व्यास शंकरने करा है और व्यास शंकरके खंमनका खंडन द्वितीय खंडमें लिखेंगे तहांसें जान लेना. जब व्यास और शंकर, सायन. माधव जैसेकोभी सप्तभंगीकी समज यथार्थ नही पमी तो दयानंदको क्या खबर पमे.

पृष्ठ ४११ में लिखता है, सप्तभंगी अन्योन्य अभावमें समासकती है, यह लेखभी अज्ञानताका है क्योंकि जब सप्तभंगीका स्वरूपही दयानंदकी समजमें नही आया तो आगे लिखना सब मिथ्या है.

काल संख्या मानने में दयानंदजीका कुतर्क.

आगे दयानंद पृष्ट ४२० में जैनी जिसतरें कालकी संख्या मानते है सो लिखता है. हां, हमारे सदागममें जो कालका स्वरूप लिखा है सो हम सर्व सत्य मानते है क्योंकि जब हमनें जगत अनादि सिद्ध कर दया है तो इस जगतमें अनंत कालका वर्तना संभव हो सक्ता है. और जो दयानंद अपने अनुयायी गणितविद्यावालोकों पूछता है तुम जैनके कालकी संख्या कर सक्ते हो वा ईस संख्याको सत्य मान सक्ते हो ? ऐसा लिखके पीछे हमारे तीर्थंकरोका उपहास्य करा है तिसका उत्तर—तुमसें पूछते है तुम समुद्रके पानीके, खसखससेंभी बहूत सूक्ष्म जलबिंदुयोकी गिनती करके बता सक्ते हो ? नही. तथा इस सृष्टिसें अनंत काल पहिलां जो दयानंदके ईश्वरनें सृष्टि रचीथी उसके वर्ष कह सक्ते हो ? नही. जैनमतमें तो इतने अंकतक गणितविधि है—७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६की उपर एकसो चालीश शून्य.

दयानंद पृष्ट ४२१ में लिखता है जैनीयोका एक योजन दश सहस्र कोशका होता है. यह दयानंदका लिखना जूठ है. क्योंकि दश सहस्र कोशका योजन हमारे किसीं शास्त्रमें नही है. हमारे शास्त्रमें तो किसी कालांतरमें प्रथम और आदिमें और किसी द्वीपमें और किसी समुद्रमें ऐसी जातकी वनस्पती कमलनालादिकको उत्सेधांगुलके योजनसे अर्थात् प्रमाणांगुल, आत्मांगुल, उत्सेधांगुलसें हजार योजनकी अवगाहना होती है और किसीक कालमें और किसीक द्वीप समुद्रादिमें ऐसे द्वींद्रिय जीव होते है की जिनकी अवगाहना पूर्वोक्त बारा योजनकी होती है और तीनेंद्रिय जीवकी तीन कोस और चतुरिंद्रिय जीवकी चार कोसकी पूर्वोक्त उत्सेध कोससें अवगाहना होती है. दयानंद और दयानन्दके अनुयायीयोंनें सर्व कालका स्वरूप और सर्व द्वीप स-

मुड़ होते नहीं है तो फेर उनके न माननेसे न देखनेसें कदापि पूर्वोक्त कहना जूठ नहीं हो सक्ता है; जेसे एक गीदम अर्थात् शियालनें जन्म लीना तिस वखत थोडासा मेघ वर्षा तब गीदम कहता है ऐसे भारी मेघके समान कबु जगतमें मेघ नहीं वर्षा है, क्या तिस गीदडकें कहनेसें सर्वत्र महामेघोका अभाव हो जावेगा? ऐसेही दयानंद और दयानंदीयोंके न देखनेसें पूर्वोक्त वस्तुयोंका अभाव नहीं होता है. और जो दयानंद लिखता है कि जैनी बार योजनकी जूं मानते है, यह निःकेवल जूठ है ऐसा जूठा कथन जैनमतमें कही नहीं है.

जीव और कर्मकी बाबतमें दयानंदका आक्षेप,

इसके आगे पृष्ट ४२२ सें पृष्ट४२६ तक जीव कर्मकी बाबत लिखी है तिस सर्वका उत्तर अगले परिच्छेदमें लिखेंगे. और पृष्ट ४२५ सें लेकर ४४० पृष्ठ तक जो षष्टिशतकके श्लोक लिखके अर्थ करा है वे सर्व स्वकपोलकल्पनासें मिथ्या लिखा है. क्योंकि श्लोकाक्षरोंसें वैसा अर्थ नहीं निकलता है. जिसनें वेदोंका अर्थ फिरादिया वो जैनमतके श्लोकोंके जूठे अर्थ क्यों न लिखे!

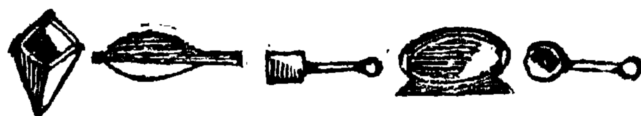
और दयानंदनें ४४१ पृष्टसें पृष्ट ४५१ तक जूठी जैनमतकी निंदा लिखी है सो मिथ्यात्व सिद्ध करता है. क्योंकि जैन मतमें ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि वेश्यागमन परस्त्रीगमन करनेसें स्वर्ग मोक्षमें जाता हैं. दयानंद लिखता है श्रावक साधु तीर्थंकर वेश्यागामी थे यह लेख लिखनेवालेकी अज्ञानता, और मिथ्यात्व प्रसिद्ध करता है, जैनमतमें ऐसा कथन तो नही है परंतु दयानंदनें वीतराग निर्विकारीयोंकोंभी कलंकित करा इसमें इनकी बुद्धिका प्रभाव कैसा हैं सो सज्जन लोग जान लेंगे. और जैनमत रागद्वेष रहित सर्वज्ञका कथन करा हूआ है तिससें श्री महावीर भगवंतका

जीव त्रिपृष्ट वासुदेव हूआ तिसकोन्नी नरकमें गया लिखा है और श्रेणिक, सत्यकि, कोणिक ये महावीरके न्नक्त थे, परंतु जीवहत्या, घोर संग्राम करनेसें और महा विषय न्नोग करनेसें जन्मांत तकन्नी राज्य नही त्यागा इस वास्ते नरक गये है ऐसा कोइ सत्यवादी विना कह सक्ता है? तथा नव बलदेव अचल १ विजय २ न्नड़ ३ सुन्नड़ ४ सुदर्शन ५ आनंद ६ नंदन ७ रामचंड़ ८ बलन्नड़ ए इनमेंसें प्रथम आठ मुक्ति गये है और बलन्नड़जी पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें गये है इनोंने अपने अपने न्नाई वासुदेवोंके मरणे पीछे सर्व राज्यन्नोग विषय त्यागके संयम महाव्रत अंगीकार करे इस वास्ते मोक्ष और स्वर्गमें गये. इनोनें कुछ जैन तीर्थंकरोकों गूस अर्थात् लांच कोड नही दीनी थी कि तुमने हमकों मोक्ष स्वर्गमें गये कहना. और वासुदेव ए, प्रतिवासुदेव ए, इनोनें राज्य न्नोग विषय नही त्यागा, महाघोर संग्रामोमें लाखो जीवोंका वध करा इस वास्ते नरक गये है. हां यह सत्य है. और हमन्नी कहते है कि जो राज्य न्नोग विषयरक्त, घोर संग्राम करेगा, मरणांत तकन्नी पूर्वोक्त पाप न छोडेगा तो नरकमें जायगा. और जो कृष्ण महाराजकी बाबत लिखा है कि जैनीयोनें कृष्णकों नरक गया लिखा है सो सत्य है क्योंकि जैन मतमें कृष्ण वासुदेव हूआ है तिसको हूए ८६०४१२ वर्ष आज तक हूए है वो कृष्ण अरिष्टनेमि २२ में अर्हतका न्नक्त था, उसनें न्नविष्य कालमें बारवां अमम नामा अर्हंत होनेका पुण्य उपार्जन करा परंतु राज्य न्नोग संग्राम विषयासक्त होनेसें मरके नरकमें गया. तहांसें निकलके बारवा अवतार अमम नामा अरिहंत होवेगा. ऐसा लेख जैन मतके शास्त्रमें है. परंतु जिस कृष्ण वासुदेवकों हूए है और कृष्णकों लोक ईश्वरावतार मानते है इस कृष्ण वासुदेवका कथन जैनमतमें किंचिन्मात्रही नही है. और न इस कृष्णकों जैनमतमें नरक

गया लिखा है तो फिर दयानंद काहेकों जूठा वाद करता है. दयानंदका यह लेख लोगोंका ठगने वाला है क्योंकि इस लेखकों देखके कृष्णके मानने वाले लोक जैनीयोंसें विरोध करेंगे. परंतु दयानंदने जैसी कृष्णादि अवतारोंकी निंदा करी है तैसि किसी नेभी नही करी है. क्योंकि जिसनें कृष्णादि अवतारोंके रचे पुराण उपपुराण गीता भारत भागवत सर्व १८ स्मृतियां आश्वलायनादि सूत्र ऐतरेय तैत्तरेय शतपथ तांम्य गोपथ वेदाके ब्राह्मणाकों वेदकी उपनिषदाकों ऐतरेय आरण्यक तैत्तरेय आरण्यक पूर्वकालीन भाष्य टीका दीपिकाकों इत्यादि सर्व ग्रंथाकों मिथ्या ठहराये है, जब ये ग्रंथ मिथ्या है तो इनके बनाने वाले श्रीकृष्णादी मृषावादी अज्ञानी और पापी ठहरे तथा सर्व देवोंकी मूर्तियोंकी निंदा करी तब सर्व देवोंकी निंदा हो चुकी. इत्यादि इसी सत्यार्थप्रकाशमें देख लेना.

दयानंदका अमूर्त्तिवाद.

पृष्ट ४१-४२ में दयानंदजीनें नीचे छपा हुवा चित्र दीया है.



इसमेंसें पहिला चित्र वेदीकी स्थापनाका है, दूसरा प्रोक्षण पात्रीका है, तीसरा प्रणीतापात्रका है, चौथा आज्यस्थालीका है और पांचवा चमसाका है. अब इसके संबंधमें मेरा कहनेका आशय यह है कि दयानंदजी अपने शिष्योंकी समाजनें वास्ते ऐसा चित्र दिखलाते है अथात् आकृति (मूर्ति) का स्वीकार करता है और बाह्यसें मूर्तिका निषेध करता है यह कैसा न्याय ! भला, यह तुच्छ मात्र आहुतिका पात्र विना स्थापनाके समझाय नही सक्ता है तो जो महात्मा अवतार सत्यशास्त्रके उपदेशक

हो गये है तिनकी प्रतिमा विना तिनके स्वरूपकां कैसे ज्ञान हो सके ? इस वासते सत्यशास्त्रोंके उपदेशककी प्रतिमा माननी ओर पूजनी चाहिये. ओर तिनके स्वरूपका ध्यानज्ञी तिस मूर्ति द्वाराही हो सकता है.

पूर्वपक्ष—जेकर इश्वर सर्वज्ञ देहधारी कोइ हूआ होवे तो तो तुमारा कहना सत्य होवे, परंतु देहधारी सर्वज्ञ ईश्वर हूआही नही है.

उत्तरपक्ष—यह कहना समीचीन नही है. क्योंकि वेद, वेदांत, न्याय, जैन आदि सर्व शास्त्र देहधारीकों सर्वज्ञ होना कहते है, और युक्ति प्रमाणसें संमति, द्वादशसार नयचक्र, तत्वालोकालंकार सूत्रमें देहधारीकों सर्वज्ञ ईश्वर होना सिद्ध करा है, इस वास्ते प्रतिमा मानना उचित है. जेकर देहधारी सर्वज्ञ नही मानता तो वेद किसनें बनाये है. ?

उत्तर—सर्वव्यापक सर्वज्ञ ईश्वरनें.

प्रश्न—क्या ईश्वरनें मुखसें वेद उच्चारे है? नही तो क्या नासिकासें उच्चारे है ? नही तो क्या कर्णद्वारा उच्चारे है ?

उत्तर—नही क्योंकि मेरे ईश्वरके मुख, कर्ण नासिका है नही शरीरज्ञी नही है.

प्रश्न—जब ईश्वरके पूर्वोक्त वस्तुयो नही है तो वेद कहांसें उत्पन्न हूआ है.

पूर्वपक्ष—ईश्वरनें अग्नि, वायु, सूर्य, अंगिरस नामक ऋषियोंके मुखद्वारा उच्चारण करवाये है.

उत्तरपक्ष—यह कहना जूठ है, अप्रमाणिक होनेसें. क्योंकि जिसके मुख नाक कान शरीरादिक न होवेंगे वो दूसरायोंकों कैसे प्रेरणा कर सक्ता है ? जेकर कहोके ईश्वरनें अपने मनसें

प्रेरणा करी तो ईश्वरके मन नही है, शरीरके अन्नावसें. क्योंकि मनका संबंध शरीरके साथ है.

पूर्वपक्ष—ईश्वरनें अपन्नी इच्छासें प्रेरणा करी है.

उत्तरपक्ष—शरीर और मनके विना इच्छा कदापि सिद्ध नही होती है. जेकर कहोगे ईश्वरनें अपनी शक्तिद्वारा प्रेरणा करी तो ये शक्ति किस द्वारा प्रवृत्त हूइ? प्रथम तो शक्ति ईश्वरसें अन्नेद है. जब ईश्वरमें हलचल होवेगी तब शक्तिन्नी हल चलके प्रेरणा करेगी. ईश्वर तो जैसे आकाश है तैसे सर्वव्यापी मानते है, तो फेर ईश्वरमें हलने चलनेकी शक्ति कुछ न्नी नही है, और सर्वव्यापी होनेसें हलनेचलने वास्ते कोइ न्नी अवकाश नही है. इस वास्ते तेरा ईश्वर अकिंचित्कर है, आकाशवत्. जेकर कहे आकाशतो जम है और ईश्वर ज्ञानवान् है तो फिर आकाशका दृष्टांत कैसें मील शक्ता है ? उत्तर—ज्ञानको प्रकाशक है परंतु ज्ञान हलचल नहि सक्ता है इस वास्ते आकाशका दृष्टांत यथार्थ है.

इसी मुजब दयानंदने जो ईश्वर बाबत लेख लिखा है वे प्रमाण रहित है. ऐसा ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नही होता है तब वेद अल्पज्ञो के बनाये सिद्ध हुए. अल्पज्ञन्नी कैसेके जीनकी बाबत ब्राह्मणक लिखता है कि.

वेद धूर्त अरु राक्षसोके बनाये हुए है क्या जाने ब्राह्मणकका कहनाही सत्य होवे इतना तो हमकोन्नी मालुम होता है कि वेद बनाने वाले निर्दय, मांसाहरी और कामी थे. और मोक्षमुल्लर नामा बमा पंमित तो ऐसा कहता है कि वेद ऐसा पुस्तक है कि मानो अज्ञानीयोके मुखसें अकस्मात् वचन निकला होवे तैसा है. जब वेद ईश्वरका कथन करा नहि तब तिसके माननेवाले दयानंद

मूर्त्ति विना वेद कैसे रचा हुआ!

सरीखे तिनकाजी नाश कर देवेतो क्या आश्चर्य है ! इस वास्ते देह सिद्ध जगवान् कदापि जपदेष्टा सिद्ध नही हो सकता है. इस वास्ते दयानंदनें जो कल्पना करी है कि ईश्वरने प्रेरणा कराके चार वेद जत्पन्न करे सो मिथ्या है, तथा तिन रूषियोंके कहनेसे लोक क्योंकर सत्य माने? और जानोंके रुषीओकों ईश्वर प्रेरता है ? जेकर कहोंगे के ईश्वर जनको कह देता था कि मैनें इन रुषीओं-सें वेद कथन करवाये है इस वास्ते तुम सत्य मानो तो ईश्वर हमको क्यों नही कहता है. क्या वे ईश्वरके सगे संबंधी थे और हम नहि है.

प्रथम तो ईश्वरको मुख, नाक, कान इत्यादि नहि है तो जनकों कहना क्योंकर बन शक्ता है ? इस वास्ते ईश्वरने कोईजी प्रेरणा नही करी है. सत्यतो यह है कि याज्ञवल्क्य, सुलसा पिप्पलाद और पर्वत प्रमुखोनें हिंसक वेद रचे है. इनको अपनी कल्पनासें अब चाहो किहीके रचे कहो. इस वास्ते देहधारी सर्वज्ञही सत् शास्त्रोंका जपदेष्टा मानना सत्य है, और तिसकी प्रतिमाजी पूजनी सत्य है इस वास्ते दयानंद जो प्रतिमा पूजनकी निंदा करता है सो महापाप जपार्जन करता है.

दयानंद जो अंग्रेजी जूगोल, खगोलको सत्य मानके डुसरा द्वीप समुद्रका होना और सूर्य, चंद्रका चलना नही मानता है और जूगोल खगोलकी बाबतोमें जैनशास्त्रका कहना जत्थापन करता है वो समीचीन है ? कबीजी नहि क्योंकि दूसरें सर्व शास्त्रोमें द्वीप समुद्रोंका होना और सूर्य, चंद्रका फिरना बताया है तो फिर जैन और सर्व मतके शास्त्रोंकें अंग्रेजी जूगोलके साथ नहि मिलनेसें जूठा ठहराना वो बमा अप्रमाणिक है. क्योंकि जूगोलविद्या अस्थिर है. आज इस तरेकी है तो फिर काल अपर द्वीपादि वस्तु देखनेमें आया सो अन्य तरेंकी होवेगी. आं-

खसें सर्व वस्तु नहि देखी जाती है तैसें भूगोलविद्यावाले उत्तर दक्षिण दिशाका कुछ अंत नहि लाये है. कालके प्रभावसें समुद्रकी जगे स्थल होता है और स्थलकी जगे समुद्र होता है, पहाड, नदीयां, शेहेरादि सब उलटपालट हो जाता है. श्री ऋषभ देवके समयसें लेकर आज तक असंख्य वस्तु उलटपालट हो गई है. और जैनशास्त्रका कथन तो जैसा प्रथम आरेमें था. वैसाही आज तक चला आता है. तो फिर पांचमें आरेमें तैसा द्वीप, समुद्रकी व्यवस्था कैसें देखाय. ? बहुत भरतखंड समुद्र जलने रोक लीया है इस वास्ते आंखोसें बराबर नही देखा सक्ता है.

दयानंद उसके ग्रंथमें लिखता है के व्यासजी और शुकदेवजी पातालमें गये सो दयानदके ग्रंथके पृष्ट ४४५ के लेखसे तो पाताल है नहि तो पातालमें कैसे गये ? अमेरिकाको पाताल ठहराया सो कौनसी वेदकी श्रुतिमें अमेरीकाको पाताल लिखा है ? तथा दयानंद अपने बनाये वेदभाष्य भूमिका नामके ग्रंथमें वेदकी श्रुतियोसें पृथ्वीका भ्रमण, सूर्यका स्थिर रहना, तारसें खबर देना, अगनसें आगबोटका चलाना लिखता है यह लिखना भारी असमंजस और मिथ्या है, क्योंकि वेद भाष्यकारोनें ऐसा श्रुतियोंका अर्थ किसीभी जगे नहि लिखा है.

फिर दयानंद जो तीर्थंकरोकी आयु, अवगाहना और अंतर देखकर जैन शास्त्रकों जूठा मानता है वो बडा अज्ञानताका कारण है. क्योंकि कालका ऐसा प्रमाण नहि है अमुकसमयसें काल प्रचलित हुआ और अमुक समयमें कालका अंत आवेगा क्योंकि काल अनादि अनंत द्रव्य (पदार्थ) है. कोइ किसी कालमें मनुष्यकी आयु, अवगाहना विशेष होवे और कोइ किसी कालमें

आयु, अवगाहना अल्प होवे उसमें क्या आश्चर्य है. प्रोफेसर थी-ओफोर कुक अपने बनाये भूस्तर विद्याका ग्रंथमें लिखता है कि पूर्व कालमें उमते गीरोली जातके प्राणी ऐसे बडेथे कि उसके पांख ३७ फिट लंबीथी, जब ऐसे बडे विद्वान् गीरोली जैसा नाना प्राणीका ऐसा बडा पूर्व कालमें था ऐसा सिद्ध करता है तो फिर पूर्व कालमें वो समयमें मनुष्यकी बडी आयुष्य ओर अवगाहना माननी उसमें क्या आश्चर्य है. बहुते पुराणा शोधसें पूर्व कालके मनुष्यकी आयु, अवगाहना जास्ती सिद्ध होती है. इस वास्ते दयानंदका अटकलके अनुमान सब जूठे है.

उपसंहार.

हम सब सुज्ञजनोसें नम्रतापूर्वक यह विनंति करते है कि एक वार जीसने धर्म पीछानना होवे सो जैनमतके शास्त्र पढे वा सुने तो उसको सर्व मालुम हो जावेगा. जैनमतका शास्त्र और तत्वबोध अच्छीतरे जाने सुने विना मतमें संकल्प विकल्प-करके कोइ कीसी बातको अपनी समज मुजब सच्ची और जूठी माननी वो अज्ञानताका एक चिन्ह है.

॥ इति श्री तपगच्छीये मुनिश्री मणिविजयगणि शिष्य श्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य आत्माराम आनंदविजयविरचिते अज्ञानतिमिर न्नास्करे प्रथमखंडः संपूर्णः ॥ १ ॥

॥ श्री ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

अज्ञानतिमिरभास्कर.

द्वितीयः खण्डः

प्रवेशिका

प्रथम जैनमतकी उत्पत्ति लिखते है.

यह संसार द्रव्यार्थिक नयके मतसें अनादि अनंत सदा शास्वता है, और पर्यायार्थिक नयसे मतसें समय समयमें उत्पत्ति और विनाशवान् है, इस संसारमें अनादिसें दो दो प्रकारका काल वर्त्तते है, एक अवसर्प्पिणी काल अर्थात् दिन दीन प्रति आयु बल, अवगाहना प्रमुख सर्व वस्तु जिनमें घटती जाती है, और दुसरा उत्सर्प्पिणीकाल, जीसमें सर्व अच्छी वस्तुकी वृद्धि होती जाती है. इन पूर्वोक्त दोनु कालोंमें अर्थात् अवसर्प्पिणी-उत्सर्प्पिणीमें कालके करे छ छ विभाग है. अवसर्प्पिणीका प्रथम सुषम सुषम, २ सुषम, ३ सुषम दुषम, ४ दुषम सुषम, ५ दुषम, ६ दुषम दुषम है. उत्सर्प्पिणीमें छहो विभाग उलट जान लेने. जब अवसर्प्पिणी काल पूरा होता है तब उत्सर्प्पिणी काल शरू होता है. इसतरे अनादि अनंत कालकी प्रवृत्ति है; और हरेक अवसर्प्पिणी-उत्सर्प्पिणीके तीसरे चौथे और अर्थात् कालविभागमें चौवीस अर्हंत तीर्थंकर अर्थात् सच्चे धर्मके कथन करनेवाले उत्पन्न होता है, जो जीव वीश धर्मके कृत्य करता है सो भवांतरोंमें तीर्थंकर होता है. वे वीश कृत्य यह है.

अरिहंत १ सिद्ध २ प्रवचन अर्थात् श्रुतज्ञान वा संघ ३ गुरु

धर्मोपदेशक ४ स्थविर ५ बहुश्रुत ६ अनशनादि विचित्र तप कर नेवाला तपस्वी अथवा सामान्य साधु ७ इन सातोंकी वत्सलता करे अर्थात् इनके साथ अनुराग करे, यथावस्थित गुणकीर्तन करे तथा यथायोग्य पूजा ज्ञक्ति करे सो तीर्थंकरपद ज्ञपार्जन करे इन पूर्वोक्त अर्हंतादि सात पदका वारंवार ज्ञानोपयोग करे तो ८ दर्शन सम्यक्ता ९ ज्ञानादि विषय विनय १० इन दोनोंमे अति- चार न लगावे, अवश्यमेव करने योग्य संयम व्यापारमें अतिचा- र न लगावे, ११ मूलगुण ज्ञत्तरगुणमे अतिचार न लगावे १२ क्षण लवादिमें संवेग ज्ञावना ओर ध्यानकी सेवना करे १३ तप करे ओर साधुओंको ज्ञचित दान देवे १४ दश प्रकारकी वैयावृत करे १५ गुरु आदिकोंके कार्य करणद्वारा गुरु आदिकोंके चित्तकों स- माधि ज्ञपजावे १६ अपूर्वज्ञान ग्रहण करे १७ श्रुतज्ञक्ति प्रवचनमें प्रज्ञावना करे १८ श्रुतका बहु मान करके १९ यथाशक्ति मार्गकी देशनादि करके प्रवचनकी प्रज्ञावना करे २०.

इनमेंसें एक दो ज्ञत्कृष्ट पदें वीश पदके सेवनेंसें तीर्थंकर गोत्र बांधे, यह कथन श्रीज्ञाताजी सूत्रमें है.

जो तीर्थंकर होता है सो निर्वाण अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जा- ता है, फेर संसारमें नही आता है; और चला जायगा जगतवासी जीव जैसे जैसे शुज्ञाशुज्ञ कर्म करते है तैसा तैसा शुज्ञाशुज्ञ फल अपने अपने निमित्तके योगसें ज्ञोगते रहते है तिस निमित्तहीकों अज्ञलोक ईश्वर फलदाता कल्पन करते है, और सगुण निर्गुण, एक अनेक, रूपसें कथन करके अनेक ग्रंथ लिख गये है, परंतु निरंजन, ज्योतिस्वरूप, सच्चिदानंद, वीतराग परमेश्वर किसी युक्ति प्रमाणसेंज्ञी जगतका कर्ता, हर्ता, फलदाता, सिद्ध नहि होता है, यह कथन जैनतत्वादर्शमें अच्छी तरेंसें लिखा है.

पक्षपात छोडके विचारेगा तो यथार्थ मालुम हो जायगा, परंतु जो वेद विगेरे शास्त्रोका हठ करेगा तिसकों सत्यमार्ग कदापि प्राप्त न होवेगा क्योंकि वेद विगेरे बहुत शास्त्र जो हालमें प्रचलित है वे सर्व युक्ति प्रमाणसें बाधित है, इनका स्वरूप प्रथम खंममें किंचित् मात्र लिख आये है, और अन्य लोगोंको जो असत् शास्त्रका आग्रह है सो जैनमतके न जाननेंसें है; क्योंकि हिंदुस्तानी, करानी, मुसलमान विगेरे सर्व लोक अंग्रेजी, फारसी प्रमुख अनेक तरेंकि विद्या पढते है, परंतु जैनमतके शास्त्र किसी मतवालेनें नहि पढे है. वेद, पुराण, कुरान प्रमुखके पढे हुये अंग्रेज बहुत है परंतु जैनमतके शास्त्रका पढा हुवा कोई अंग्रेज नहि है; इसका कारण तो लोक एसा कहते है कि जैनि लोक अपने शास्त्र अन्यमतवालोंकों नहि देतें है, यह वाततो सत्य है, परंतु वह समय तो अब नहि रहा क्यों कि हजारों ग्रंथ जैनमतके अन्यमतवालोंके पास पहुंच गये है. परंतु जैनमतके न फैलनेका कारण यह है–

जैनग्रंथ न फैलनेकाकारण.

मुसलमानोंके राजमें जैनके लाखों पुस्तको जला दिये गये है, और जो कुछ शास्त्र बच रहे है वे भंडारोमें बंद कर छोमे है वे पमे पमे गल गये है, बाकी दोसो तीनसो वर्षमें तमाम गल जायगे. जैसे जैनलोक अन्य कामोमें लाखो रुपईये खरचते है तैसे जीर्ण पुस्तकोको उद्धार करानेमें किंचित् नहि खरचता है, और न कोई जैनशाला बनाके अपने लमकोंकों संस्कृत धर्मशास्त्र पढाता है, और जैनी साधुभी प्राये विद्या नहि पढते है क्योंकि उनकों खानेकातो ताजा माल मिलते है वे पढके क्या करे, और कितनेक यति लोक इंद्रियोंका भोगमें पड रहे है सो विद्या क्योंकर पढे. विद्याके न पढनेंसें तों लोक इनकों नास्तिक कहने लग गये है, फेरभी जैन लोगोंको

लज्जा नहि आती है, जैनलोक चूरमेके लाडू और दुधपाकादिकके खाने वास्ते तो हजारो एकठे हो जाते है, परंतु पुस्तकोंके उधार वास्ते सूते पडे है; हमारे लिखनेका प्रयोजनतो इतनाही है कि जैनलोगोंको उचित है कि सर्व देशवाले मिलके पाटन, जैसलमेर, खंभात प्रमुखके भंडार पुस्तकोंका जीर्णोद्धार करावें, और वडे वडे शहरोमें जैनशाला बनाके अपने लडकोंका संस्कृतादि विद्या पढावे, और आगम विना अन्य योग्य ग्रंथ लिखावादि करके प्रसिद्ध करें, जीसमें फेर जैनधर्मकी वृद्धि होवे; तथा जैनमतके शास्त्रोके संकेत अन्यमतवालोंकी समजमें नहि आती है, सो तो जैनीयोसें पुछ लेनें चाहिये. यह जैनमत बहुत उत्तम है इसकी उत्पत्ति इस अवसर्पिणी कालमें जैनमतानुसार जैसे हुइ है तैसे लिखी जाती है.

जैनोका पूर्व इतिहास.

इस अवसर्पिणी कालके तीसरे आरेके अंतमें जब सात कुलकरमेंसे छ व्यतीत हो गये तब नाभि कुलकरकी मरुदेवा भार्याकी कूखसें श्रीऋषभदेव उत्पन्न हुवे, श्रीऋषभदेवसें पहिलां इस भरतखंडमें इस अवसर्पिणी कालमें किसी मतका और संसारिक विद्याका कोइभी पुस्तक नहि था, क्योंकि श्रीऋषभदेवसें पहिलां ग्राम नगरादि नहि थे, इस समयके मनुष्य वनवासी और कल्पवृक्षोंके फलोंका आहार करते थे, इस जगतमें जो व्यवहार प्रजाके हितकारी है वे सर्व श्रीऋषभदेवजीनही प्रवर्ताये है इसका खुलासा जैनतत्वादर्शमें लिख दिया है तथा जीसतरें श्रीऋषभदेवके पुत्र भरतनें चार आर्य वेद बनाये तथा जीस तरें ब्राह्मणनें बनाये, इत्यादि तिसका सर्व स्वरूप जैनतत्वादर्शमें लिख आये है. पनर कुलकरके हिसाबसें सबसें पीछेका

कुलकर ऋषभदेव हुआ है तिनके चलाये व्यवहारकी कितनीक वातों लेकर और कितनीक मनकल्पित वातों एकठी करके भृगुजीने मनुस्मृति बनाई है, मनुस्मृति बनायका बहुत काल नहि हुआ है; इसका प्रमाण प्रथम खंडमें लिख आये है. श्रीऋषभदेवहीकोही लोक आदीश्वर, परमेश्वर, ब्रह्मादि नामोंसें पुकारते है. क्योंकि भरतके बनाये चारों आर्य वेदोंमें श्रीषभदेवकीही अनेक नामोंसें स्तुति थी, सो जब चारों आर्यवेद और जैनधर्म नवमें सुविधिनाथ पुष्पदंत अर्हंतके निर्वाण पीछे व्यवच्छेद हो गये तव ब्राह्मणभी मिथ्यादृष्टि हो गये, तब तिन ब्राह्मणाभासोंने अनेक मनमानीयां श्रुतियां रच लीनी, पीछे व्यास, याज्ञवल्क्यादिकोंने ऋग , यजुर. साम, अथर्व नामा चार, वेद बनाये, और ऋषभदेवकी जगे एक ईश्वर कल्पन करा, तीसकी अनेक रूपसें कल्पना करी. और इन वेदोंमें अनेक ऋषियोंकी बनाई श्रुतियां है, और वेद अनेकवार उलट पुलट करके रचे गये है, जिसने जो चाहा सो लिख दिया. पीछे महाकालासुरनें ब्राह्मणका रूप करके शाण्डिल्य नामसें प्रसिद्ध ऋषि होके सगर राजाको नरक पहुंचानें वास्ते शुक्तिमती नगरीके क्षीरकदंबक उपाध्यायके पुत्र पर्वतसें मिलके महा हिंसक वेद मंत्र वनाये, वे वेद आज कालमें चल रहे है, इनका पुरा स्वरुप जैन तत्वादर्शसे जान लेना तेवीसमें श्रीपार्श्वनाथ अर्हंत हूये तिनके पीछे मौद्गलायन और सारीपुत्र और आनंदश्रावक हुआ, यह आनंद श्रावक जो उपासकदशांग शास्त्रमें कहा है सो नहि, इनोंने बौधमतकी वृद्धि करी यह कथन श्री आचारांगकी वृत्तिमें है अंग्रेजोंनें सांचीके स्तूभकों खुदवाया तिसमेंसें मौद्गलायन और सारीपुत्रकी हकीकत निकली है और तिस डब्बेके ऊपर इन दोनोंका नाम पाली अक्षरमें खुदे हुये है. इस लिखनेका तात्पर्यतो यह है कि श्रीऋषभ-

देवजीने इस अवसर्प्पिणीमें प्रथम जैनमत प्रवृत्त करा और अंतके तीर्थंकर श्रीमहावीर हुये. श्रीमहावीरके गौतमादि १४००० चौदे हजार शिष्य हुये.

श्रीमहावीर भगवंतका उपदेश सुनके गौतमादि ११ इग्यारे गणधरोंने द्वादशांग शास्त्र रचे, तिनमें प्रथम श्रीआचारांग रचा, तिसके पचीस अध्ययनहै तिनमेंसे प्रथम श्रुतस्कंधके नव अध्ययनोमें जीवास्तित्व १ कषायजीतना २ अनुकूलप्रतिकूलपरिसहसहना ३ सम्यकत्वका स्वरूप ४ लोकमें सार वस्तुका कथन ५ पूर्वोपार्जित कर्म क्षय करणा ६ विशेष करके जगतके फंदसें छूटना ७ महात्याग और महाज्ञानका कथन ८ श्रीमहावीर अर्हंतकी छद्मस्थचर्या ९ इन नवांका विचित्र तरेंसे कथन है; और दुसरें श्रुतस्कधमें साधुके आचार व्यवहारादिका कथन है. इस सूत्रके अठार हजार १८००० पद है. और चौदह पूर्वधारी भद्रबाहुस्वामिकी करी इस उपरें निर्युक्ति है, पूर्वधारीओंकी करी चूर्णीहै, शीलांगाचार्यकी करी टीका है. दुसरा शास्त्र सूत्रकृतांग, इसमें तीनसें त्रेसठ मतांका खंडन और जैनमतका मंडन है. इसीतरें द्वादशांगका स्वरूप जान लेना. द्वादशांगोके विना श्री महावीरके शिष्योंके रचे १४००० चौदह हजार शास्त्र प्रकीर्णभी है अरु बारवां अंग दृष्टिवाद थे, जीसके एक अध्ययनमें चौदह पूर्व थे. चौदह पूर्वका इतना मूलपाठ था कि जेकर स्याहीसे लिखता सोळे हजार तीनसें तीरासी १६३८३ हाथी प्रमाण स्याहीका ढेर लिखनेको लगे. येपूर्व लिखे कदापि नहि जातेहै, गौतमादि गणधरोके कंठस्थही थे. जब ये पूर्व व्यवच्छेद होने लगे तब आचार्योनें तिनका स्थलोंके लाखो ग्रंथ रचे तिनमें उमास्वाति आचार्य श्री

जैन ग्रंथोका इतिहास.

महावीरजीके पीछे ५५० वर्षके हुये तिनके रचे ५०० ग्रंथ है, और श्री महावीरजीसें पीछे १००० वर्ष गये हरिभद्रसूरि हुये तिनोंके रचे १४४४ चौदसो चमालीस शास्त्र है. तथा हेमचंद्राचार्यके रचे साडे तीन कोटि श्लोक है. बुल्हर साहेबने बवई इलाकेमें १५०००० म्हढ लाख जैन मतके ग्रंथोका पता लगाया है. और पांच वर्षके अंदर तिनकी फेरिस्त छापनेका वायदा कीया है. इस भरतखंममें बौधके, शंकरस्वामिके और मुसलमानोंकी जुलमसें बचे हुये अबभी जैनमतके पुस्तकोंके भंडार पाटन, जैसलमेर, और खंबातमें जैसे है तैसे पुस्तक वैदिक मतवालोंको देखनेकाभी नसीब नहि है. तथा जैनमतके छ कर्मग्रंथ तथा शतक कर्मग्रंथ पंचसंग्रह तथा कर्मप्रकृति प्रमुख ग्रंथोमें जैसा कर्मोंका स्वरूप कथन किया है तैसा दुनियांमें किसी मतके शास्त्रमें नहि है; और कर्मोंका स्वरूप देखनेंसे यहभी मालुम होजाताहै कि ये कर्मोंका ऐसा स्वरुप शिवाय सर्वज्ञ, और कोई ऐसा बुद्धिमान् नहीं जो अपनी बुद्धिके बलसें ऐसा स्वरूप कथन कर सके अन्यमतोवाले जो जैनमतसें विरोध रखते है सो जैनमतके ग्रंथोके न जाननेसें, और जैनमतमें शिवाय अर्हंत सिद्ध परमेश्वर अन्य देवोकी उपासना नहि है क्योंकि अन्यमतके देवोमें देवपणा सिद्ध नहि होता है तथा ब्राह्मणोका चलाया पाखंम जैनी मानते नहि है इस वास्ते ब्राह्मण लोक जैनमतकी निंदा करते है तिनकी देखादेखसें अन्यमतवालेंभी जैनसें विरोध रखते है. परंतु बुद्धिमानोकुं ऐसा चाहिये कि प्रथम जैनमतकेग्रंथ पढके पीछे गुण दोष कहे, और इस कालमें जैनमतकों थोमा फेलाया देखके अनादरभी न करे. मन जो जैनमतकी बमाइ लिखी है सो मतानुराग करके नहि लिखि किंतु हकीकतमें जैनमत एसा प्रमाण प्रतिष्ठित है कि जिसमें कोइभी दूषण नहि है, इस कालमें जो जैनमत नि-

बैल हो रहा है सो जैनी राजायोके अभावसें; तथा बहुत लोक यहभी समजते है कि जैनमतमें जगतका कर्त्ता ईश्वर नहि मानते है इस वास्ते जैनमत नास्तिक है; परंतु जगत्कर्ता ईश्वर, निरंजन निर्विकारी, वीतराग किसी प्रमाणसें सिद्ध नहि होता है, यह कथन जैनतत्वादर्शमें लिख आये है. लोगोकों सूक्ष्मबुद्धिसें विचारना चाहिये, निःकेवल गम्भरी प्रवाहकी तरें नहि चलना चाहिये.

जगतकर्त्ताका विचार.

प्रश्न—जैनमतमें जेकर पूर्वोक्त ईश्वर जगतका कर्ता नहि मानते तो इस जगतका कर्त्ता कौन है ?

उत्तर—जैनमतमें अनादि जो द्रव्यशक्ति है, तिसकोंही जड चेतनरूप पर्यायका कर्त्ता मानते है. यह कथन तत्वगीतामें है; तिस अनादि द्रव्यशक्तिके पांच रूप है. काल १ स्वभाव २ कर्म ३ नियति ४ उद्यम ५. जो कुछ जगतमें हो रहा है सो इन पांचोंहीके निमित्त, उपादानसें हो रहा है; इन पांचोंके विना अन्य कोइ जगतका कर्त्ता प्रमाणसें सिद्ध नहि होता है. और इन पांचोंहीको जैनमतवाले अनादि द्रव्यकी शक्ति रूपसें कथंचित् भेदाभेद मानते है. और इस द्रव्यतत्वकोंही इस पर्यायरूप जगतकर्त्ता मानते है, परंतु सर्वज्ञ, वीतराग, मुक्तरूप परमेश्वर जगतका कर्त्ता सिद्ध नहि होता है, लोगोंनें इस अनादि द्रव्यत्व शक्तिकों अज्ञानके प्रभावसें समलब्रह्म, सगुणईश्वर, अपरब्रह्म परमेश्वरकी शक्ति, परमेश्वरकी माया, प्रकृति, परमेश्वरकी कुदरत आदि नामोंसे कथन किया है. परंतु वास्तवमें अनादि द्रव्यत्व शक्तिहीको कथन करा है. जेकर सर्वज्ञ, वीतराग ईश्वरकोंही कर्त्ता मानिये तबतो परमेश्वरमें अनेक दूषण उत्पन्न हो जावेगे, और नास्तिकोका मत सिद्ध हो जावेगा, यह कथन जैनतत्वादर्शमें

लिख आये है. इस वास्ते बुद्धिमानोकों अच्छीतरें जैनमतके त-त्वको समजना चाहिये, क्योंकि जो लोक वेदांत मानते है सो एकांत माननेसें शुद्ध द्रव्यार्थिक नयाभास है. यथार्थ नहि है. यथार्थ आत्मस्वरूपका कथन आचारांग, तत्वगीता अध्यात्मसार, अध्यात्मकल्पद्रुम प्रमुख जैनमतके शास्त्रोमें है. और योगाभ्यासका स्वरूप देखना होवे तो योगशास्त्र, योगवीशी, योगदृष्टि, योगबिंदु, धर्मबिंदु प्रमुख शास्त्रो देख लेना. और पदार्थोका खंमन मंमन देखना होवे तो सम्मतितर्क, अनेकांत जयपताका, धर्मसंग्रहणी रत्नाकरावतारिका, स्याद्वाद रत्नाकर, विशेषावश्यक प्रमुख ग्रंथो देख लेना, और साधुकी पद विभाग समाचारी भेद ग्रंथोमें है, और प्रायश्चित्तकी विधि जितकल्प प्रमुखमें है. और गृहस्थ धर्मकी विधि श्रावक–प्रज्ञप्ति, श्राद्धदिनकर, आचारदिनकर आचारप्रदीप, विधिकौमुदी, धर्मरत्न प्रमुख ग्रंथोमें है. ऐसा कोई पारलौकिक ज्ञान नहि है जो जैनमतके शास्त्रोमें नहि है; सो जैनमत और जैनमतके शास्त्र जो इस समयमें है वे सर्व भगवंत श्रीमहावीर स्वामीके उपदेशसें प्रवर्त्तते है.

जैनमत पुराना है.

तथा कितनेक बुद्धिमान ऐसेंभी समजते है कि जैनमत नवीन है; दयानंद सरस्वति कहता है कि साढेतीन हजार वर्षके जैनमत लगभग चीन प्रमुख देशोसें हिंदुस्तानमें आया. यह कथन अप्रमाणिक है. क्योंकि दयानंदजीने इस कथनमें कोईभी प्रमाण नहि दीया. तथा तवारीख लिखनेवालोनें तथा इतिहासतिमिरनाशकमें लिखा है कि संवत ६००० के लगभगसें जैनमत चला है. यहभी अप्रमाणिक है, क्योंकि श्वेतांबर दिगंबर दो जैनमतकी शाखा फटेकों १८०३ अढारसो तीन वर्ष आजतक हुये है. क्योंकि दिगंबर जिनसेनाचार्य अपने बनाये ग्रंथमें लिखता है.

" बत्तिस वास सये विक्कम निवस्स मरण पत्तस्स, सोरठे वल्लहीये सेयवड संघ समुपन्नो " १ अर्थः विक्रम राजाके मरां पीछे एकसो बत्तीस वर्ष पीछे सोरठ देशकी वल्लन्नी नगरीमें श्वेतांबर संघ उत्पन्न हुवा. तथा श्वेतांबर मतके शास्त्र विशेषावश्यकमें जीसका कर्त्ता जिनन्नद्रगणि क्षमाश्रमण विक्रमके संवत् ४०० में हुआ सो लिखता है.

" नवाधिकैः शतैः षड्भिः अब्दानां वीरतो गतैः, महात्सर्वेविसंवादात् सोष्टमो बोटिकोऽन्नवत् " १ अर्थः स्थवीरपुर नगरमें श्रीमहावीर पीछे ६०९ उसों नव वर्ष गये दिगंबर मत हुआ. जब एक जैनमतके दो मत हुये इतने वर्ष हुये तब तवारीख लिखनेवालेका लिखना क्योंकर मिथ्या नहि. तथा जनरल कनींगहाम साहेबनें मथुरामें श्रीमहावीरस्वामीकी मूर्त्ति पाई है तिसकों इतिहासतिमिरनाशकके लिखनेवाला २००० दो हजार वर्षकी पुरानी लिखता है. यह लिखना गलित है. क्योंकि विक्रमसें ९० नव्वे वर्ष पहिलां वासुदेव नामका कोईन्नी राजा नहि हुआ. और उस श्रीमहावीरकी प्रतिमा उपर ऐसा लिखा है.

" सिद्ध ओं नमो अरहंत महावीरस्स राजा वासुदेवस्य संवत्सरे ९० नव्वे "—यह लिखते पालि हर्फोमें है, जोके अढाइ हजार वर्ष पहिलां जैनमतमें लिखी जातीथी इस वास्ते श्रीमहावीरकी मूर्त्ति कइ हजार वर्षकी पुराणी मालुम होती है. जेकर इतिहास लिखनेवालेकी समजमें ऐसा होवे कि श्रीमहावीर अर्हतकी मूर्त्ति श्रीमहावीरसें पीछे बनी होवेगी इस वास्ते दो हजार वर्षके लगन्नग पुरानी है. यहन्नी अनुमान गलित है, क्योंकि श्रीऋषन्नदेवके वखतसेंही होनहार तीर्थंकरोंकी प्रतिमा बनानी शुरु हो गइ थी—ऐसा जैनशास्त्रमें लिखते है, तो महावीरजीके पीछे होवनीका अनुमान ठीक नहि. इस कालमेंन्नी राणीजीके उदयपुरमें आगली उत्सर्पि-

लीमें होनहार प्रथम पद्मनाम तीर्थंकरकी मूर्ति और मंदिर विद्यमान है, इसवास्ते जनरल कर्नींगहाम साहेबको जो मूर्ति मिली है सो बहुत पुराणी है. इस्सेंभी जैनमत अपने आपको पुराना और तवारीख लिखनेवालेकी अक्कलका अजीर्ण सिद्ध करता है. जैनमत बौधमतसें नीकला नहि है तथा जो कोइ इसीभी समजता है कि जैनमत बौधमतमेंसें निकला है सोभी जूठ है. क्योंकी इंग्लंमके थोमस साहेबने इक पुस्तक राजा अशोकके प्रथम धर्मके निश्चय करने वास्ते बनाया है तिसमें लिखा है कि राजा अशोकचंद्र प्रथम जेनी था, और तीसी पुस्तकमें लिखा है कि बौद्धमत जैन मतमेंसे निकला है, और जैन मत सर्वमतोसें पहिलां पुराना है. तथा जर्मनिका एक विद्वाननें किताब बनाई है तिसमें अनेक प्रमाणोंसें जैनमत बौद्धमतसें अलग, और सनातन लिखा है. ब्राह्मणोंनें शिवपुराणमें जो जैन मतकी उत्पत्ति लिखी है सोभी जुठी है. क्योंकि शिवपुराण थोमे कालका बनाया हूआ है इन पुराणोंमें वैष्णवकी निंदा लिखी है, इस वास्ते नवीन है कितनेक कहते है कि हिंदुस्तानमें वेद सबसें पुरानें पुस्तक है तिनमें जैनमतका नाम नही इस वास्ते जैनमत नवीन है. यह कहना केवल अप्रमाणिक है क्योंकि जिस पुस्तकोमें वेदांका और अन्य मतोंका नाम न होगा वे पुस्तको इस प्रमाणसें वेदोंसे प्रथम बनें ठहरेंगे, जैसे जैनमतका प्रज्ञापना सिद्धांत, जीवाभिगम सूत्र तत्वार्थसूत्र, प्रश्नव्याकरण, दशवैकालिक प्रमुखमें किसिमतका और वेदांका नाम नही है. इस्से येभी वेदांके प्रथम बने माननें चाहिये तथा वेदांमें जैनमतका नाम न होनेंसे जेकर नविन मानिये तव तो जो वस्तु वेदांमें नही कही सो सो सर्व नवीन माननी पमेगी. यह मानना मिथ्या है. तथा मुंमकोपनिषदमें मनुस्मृतिका नाम है इस्सें तो मनुस्मृतिभी वेदांके प्रथम बनी

उहरी, और मनुमें वेदांका नाम है इस वास्ते यह कहना अप्रमाणिक है. तथा कितनेक बुद्धिमान् ऐसेनी समजते होगे कि-जैनमतकें सब पुस्तक नवीन अर्थात् अढाइ हजार वर्षके पहिला नगवंत श्री महावीरजीनेंही कथन कीए है जेकर जैनमत पुराना होता तो श्रीपार्श्वनाथ आदि तेवीस तीर्थंकरोके कथन करे हूये शास्त्र होते. इसका खुलासा यह है कि जैन मतमें जो तीर्थंकर होता है सो वीस धर्मके कृत्य करनेसें तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति पुण्यरूप उत्पन्न करके तीर्थंकर होता है. सो तीर्थंकर नाम पुण्य प्रकृतिका फल नोगनेंमें तब आता है जब धर्मोपदेशद्वारा धर्मतीर्थ करे. जब धर्मतीर्थ करे तब तीसही तीर्थंकरके करे हूये शास्त्र प्रवृत्त होने चाहिये. इस वास्ते पूर्वपूर्व तीर्थंकरोके शास्त्र बंद हो जाते है, और नवीन नवीन तीर्थंकरोके शास्त्र प्रवृत्त होते है, इस वास्ते महावीरजीके तीर्थमें पीछलें तीर्थंकरोके पुस्तक बनाये न रहनेसें प्राचीन शास्त्र नही है. और जो कुछ कथन श्री ऋषनदेवजीनें करा था सोही कथन सर्व तीर्थंकरोनें किया. नामनी आचारांगादि द्वादशांगका सबके एक समान था. परंतु जो कथारूप शास्त्र है तिनमें जो जीवांका नाम है सो बदला गया है. नगरी, राजा साधु, श्रावकादिकोंका नामनी बदला गया है शेष सबें शास्त्र सर्व अनंत तीर्थंकरोंके तीर्थमें एक सरीखें है इस वास्ते इनही शास्त्रांको पुरानें माननें चाहिये. तथा कितनेक

जैन ग्रंथ प्राकृतमें लखनें-का प्रयोजन

यहनी कहते है कि जैनमतके शास्त्र प्राकृतमें है इस वास्ते सर्व ज्ञोक्त नहि, जेकर सर्वज्ञोक्त होते तो संस्कृतमें होते. इसका खुलासा यह है कि श्रीमहावीर नगवंतकी वाणी अर्ध मागधी नाषामें थी तिसमें ऐसा अतिशय था के आर्य, अनार्य, तिर्यंच प्रमुख सर्व अप-

नी अपनी जाषा अपने समझते थे. पीछे गौतमादि मुनियोंनें संस्कृत प्राकृतमें सूत्र गुंथे. पूर्व तो प्राये सर्व संस्कृतमें गुंथे और बालक, स्त्री अल्प बुद्धि प्रमुखोंके वास्ते सूत्र प्राकृतमें गुंथे. तथा यह जो प्राकृत वाणी है तिसके शब्दोमें जैसी सामर्थ्य है तैसी संस्कृतमें नहि है. प्राकृतके शब्द अनेकार्थके बोधक है और विद्वानोका मानरंजन करनेवाला है और बहु गहनार्थ है. जैनमतके शास्त्र निःकेवल प्राकृतमेंही नहि है किंतु षट् जाषामें है. संस्कृत १ प्राकृत २ शौरसेनी ३ मागधी ४ पैशाची ५ अपभ्रंश ६ प्राकृत तीन तरेकी है. समसंस्कृत १ तज्ज २ देशी ३. इन सर्व जाषायोका व्याकरण विद्यमान है. संस्कृतके शब्दोसें जो प्राकृत बनती है, तिसको तज्ज कहते है. और जौ अनादि सिद्ध शब्द है; और जो किसी व्याकरणसेंजी सिद्ध नही होता है तिसको देशी प्राकृत कहते है. तिस प्राकृतकी देशी नाममाला श्री महावीर पीछे ४०७ वर्षके लगजग पादलिप्त आचार्य हुवा जिनके आचार्य श्रावक नागार्जुन तांत्रिक योगिनें अपनें गुरु पादलिप्त आचार्यके नामसें श्री शत्रुंजय तीर्थराजकी तलेटीमें पादलिप्तपुर अर्थात् पालीताणा नगर वसाया तिस पादलिप्त आचार्यने देशी नाममाला रची थी. तिनके पीछे विक्रमसंवत १०२७ वर्षे राजा जोजका मुख्य पंमित धनपाल जैनधर्मीनें दुसरी देशी नाममाला रची. पीछे श्रीहेमचंद्र आचार्यनें सिद्धराज जयसिंहके कहनेसें तीसरी देशी नाममाला रची जो इस समयमें बुल्हर साहेबे उपावाके प्रसिद्ध करी है. देशी नाममाला कुछ देशी शब्द जो जाषामें बोलनेमें आता है तिन शब्दोकी है. तथा कच्छ देश अंजार गामके पास एक जैनमतका बहुत प्राचीन जैनमंदिर है जिसको हाल जडेश्वरजी कहते है तिस पुराने जैनमंदिरमें एक जगा खोदनेसें एक ताम्रपत्र निकला है तिसकी आ-

कृति निचे मुजब है और तिस पत्रमें एसा लिखा है.

१ ठ० देवचंडीय श्रीपार्श्वनाथ देवस्यतो० । ९१ ।

सो ताम्रपत्र भेश्वरजीके भंमारमें अब विद्यमान है जीसको शंका होवे सो ताम्रपत्र देख ले. इस ताम्रपत्रके लेखकी कल्पना सुज्ञ जननें ऐसी करी है.

॥ ठ ॥ इति ऐसा पालीलिपिमें ॥ व ॥कारकी संज्ञा है त व ऐसा अर्थ सिद्ध होता है—देवचंद नाम विशेषण रूप वणिग् ऐसी जातिवालेका अनुमान किया है क्योंकि भूगोल हस्तामलकी १४४ में पृष्ठमे पाली लिपीकी वर्ण मालामें ॥" ठ "॥ इति ऐसा चिन्ह " व " कारका देखनेंमे आया है इस वास्ते " व " कार करके वणिग् जाति है ऐसा समजमें आता है ॥ देवचंडीयेति ॥ इय प्रत्यय करके देवचंद श्रेष्टी संबंधी जाननेमें आता है. अर्थात् देवचंद शेठनें प्रतिष्टा करी. पार्श्वनाथ देवकी प्रतिष्टा मंदिर यह विशेषण है. पार्श्वनाथ देवस्य, ऐसा मुलनायकका नाम है. इस कालमें तो कितनेक वर्ष पहिला श्रीमहावीर भगवंतका ब क्षांतिविजय नामक यतिनें स्थापन करा है. छठी विभक्तिका संबंध आगे जोमते है (देवस्य) इहां " स्य " कारके उपर एक मात्रा जोमनी चाहिये. क्योंकि भ्रांतिके सबबसें ताम्रपत्रमें मालुम नहि होता है. हम ऐसे जानते है कि जब ऐसा हुआ तब तो संधि पृथक करे तब ' इत ' ऐसा शब्द सिद्ध हुआ. तिसका यह पूर्वापर संबंध है. पार्श्वनाथ देवस्य इतः ' तब ऐसा अर्थ हुआ ॥ पार्श्वनाथ देवस्य इतः ॥ इस प्रतिष्टाके कालमें भगवान महावीर तेवीस वर्ष पहिलें हुआ कोइ पूछेके भगवान वीर ऐसा तुमने कहांसें जाना तिसका उत्तर यह है कि ऐसे अक्षरके आगे

(०) शून्यरूप विश्रामका चिन्ह है तिसके आगे 'ौ' ऐसा चिन्ह पालि लिपिमें "भ" कारका है. तिस वास्ते "भ" कारअक्षर करके भगवान् वीर ऐसा जानीये है. इस उपरके लेखमें अन्य एकभी प्रमाण है. इस चैत्यके एतिह्य रूप खरमेमें तथा कच्छ भूगोलमें लिखा है. श्रीवीरात् संवत २३ वर्षे यह जिन चैत्य जिन मंदिर बनाया. इस वास्ते हमने ताम्रपत्र लेखकी कल्पनाभी इसके अनुसारही करी है. परंतु किसि गुरु गम्यतासे नहि करी है. इस वास्ते ईसकी कल्पना कोई बुद्धिमान् यथार्थ अन्यतरेंभी करके मेरेको लिखे तो बमा उपकार है. तथा श्रीपार्श्वनाथ भगवंतसे आज तक अविच्छेदपणे उपकेश गच्छकी पट्टावली चलती है, तिस पट्टावली पुस्तकमें ऐसे लिखा है कि श्री पार्श्वनाथ भगवंतके पट्टोपरी श्वीपार्श्वशिष्य प्रणम्य गणधर श्रीशुभदत्तजी हुवें १ तत्पटे श्री हरिदत्त २ तत्पटे आर्यसमुद्र ३ तत्पटे केशी गणधर प्रदेशी राजाका प्रतिबोध करनेवाला ४ तत्पटे स्वयंप्रभसूरि ५ तत्पटे रत्नप्रभ सूरि ६. यह रत्नप्रभ सूरि द्वादशांगी चतुर्दश पूर्वधर था, श्रीविरात् ५२ वर्षे इनको आचार्य पद मिला, इनके साथ ५०० साधुका परिवार था. सो विहार करते हुवे भिन्नमालमें आये इस भिन्नमालका नाम भिन्नमालसें पहिलां वीरनगरी था, तिससें लाखो वर्ष पहेला श्रीलक्ष्मीमहास्थान था; परंतु श्रीपार्श्वनाथ और महावीर स्वामिके समयमें इस नगरीका नाम भीन्नमाल था. तिस नगरीका राजा भीमसेन तिसका पुत्र श्रीपुंज तिसका पुत्र उत्पल–कुमार अपर नाम श्री कुमार तिस उत्पलकुमारका गेटा भाइ श्रीसुरसुन्दर युवराजा था. उत्पलकुमार राजाके दो मंत्री थे. एकका नाम ऊहम और दुसराका नाम ऊधरण. उहड मंत्रीनें तिस भिन्नमालको किसी निमित्तसें उज्जड होनेवाली जानके ५५३ घोमे दिल्लीकें श्रीसाधु

नामा राजाकों नजराणा करें. राजानें तुष्टमान होके उपकेश पट्टनकी जगा दीनी. तिहां उहड मंत्रीनें अपने राजा उत्पलदेवके रहने वास्ते पट्टन नामा नगर बसाया. तिस नगरीमें श्रीरत्नप्रभसूरि आया. तिनोंनें तिस नगरमें १२५००० सवालाख श्रावक जैनधर्मी करे तब तिनके वंशका उपकेश ऐसा संज्ञा पडी, और नगरका नामभी उपकेश पट्टण प्रसिद्ध हुआ. तिस नगरमें ऊहड उपकेश वंशिनें श्रीमहावीर स्वामीका मंदिर बनवाया. तिस मंदिरमें श्री रत्नप्रभसूरिने श्रीविरात् ७० वर्ष पीछे प्रतिष्ठा करी, श्रीमहावीर स्वामिकी मूर्त्ति स्थापन करी. सो मंदिर, मूर्त्ति क्रोडो रुपइओकी लागतके योधपुरसें पश्चिम दिशामें ओसा नगरी २० कोसके अंतरेमें वहां है. उपकेशपट्टन और उपकेश वंशकाही नाम लोकोने ओसा नगरी और ओस वंशी ओसवाले रखा है. मेनें कितनेक पुरानें पट्टावलि पुस्तकोंमें वीरात् ७० वर्षे उपकेश श्रीवीर प्रतिष्टा श्रीरत्नप्रभसूरिनें करी और ओसवालभी प्रथम तीस रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे स्थापन करे ऐसा देखा है. हम हाय करते है, ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल प्रमुख जैनी बनीयोंकी समजको. क्योंकि जिनके मूल वंशके स्थापन करनेवाले चौदह पूर्वधारी श्रीरत्नप्रभसूरिका प्रतिष्टित जिनमंदिर, जिनप्रतिमा आज प्रत्यक्ष योधपूरसें वीश कोशके अंतरे विद्यमान है. संशय होवे तो आंखोसें जाकर देख लो, तिस रत्नप्रभसूरिके धर्मको छोडके संवत १७०९ में निकले ढुंढकमति और संवत १८१८ में निकले भीषममति तेरापंथीयोंके कहनेसे नवीन कुपंथ धारा है. जीस पंथके चलानेवाले महामूर्ख अणपढ थे. इस वास्ते ओसवाल श्रीमालादि बनियोंनें श्रीरत्नप्रभसूरिका उपदेश्या धर्म ऐसे छोड दिया. जैसे कोइ भोला जीव चिंतामणिरत्नको किसी महा मूर्ख, गमार, नीच जातिके पुरुषके काच कहनेसें

फेंक देवे तैसें ओसवालादि कितनेक वनीयोका धर्म कुलगुरुओनें लोम दिया है.

अब तवारीख अर्थात् इतिहास लिखनेवाला लिखता है.

जैनमत संवत ६०० में बौद्ध और शंकरकी लमाइमें उत्पन्न हुआ है तिसकी समजजी ठीक नहि, समजके अज्ञावसें जो चाहा सो अप्रमाणिक लिख दिया. क्योंकि ब्राह्मण लोकोंके माननें मुजब और तवारीख लिखनेंवालेकी समज मुजब श्रीकृष्ण वासुदेवको हुए ५००० हजार वर्ष हुए है, तिनके समयमें व्यासजी वैशंपायन, याज्ञवल्क्यादि वेदके संग्रह कर्त्ता और शुक्ल यजुर्वेद शतपथ ब्राह्मणादि शास्त्रोंके कर्त्ता हुये है. तिनमें सर्वसें मुख्य व्यास ऋषिनें वेदांत मतके ब्रह्मसूत्र रचे है तिसके दुसरें अध्यायके दुसरे पादके तेतीसमें सूत्रमें जैनमतकी स्याद्वाद सप्तज्ञंगीका खंमन लिखा है. सो सूत्र यह है.

नैकस्मिन्नसम्भवात् ॥ ३३ ॥

इस सूत्रकी ज्ञाष्यमें शंकर स्वामीनें सप्तज्ञंगीका खंडन लिखा है सो आगे लिखेंगे. जब व्यासजीनें जैनमतका खंमन लिखा तब तो व्यासजीके समयमे जैनमत विद्यमान था, तो फिर व्यासस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्लयजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मणादिकमें जैनमतका नाम न लिखा तथा अन्य वेदोंके बनानेके समयमें जी जैनमत विद्यमान था तोजी जैन मतका कथन न लिखनेंसे जैनमत नवीन क्योंकर कह सकते है ? व्यासजीसें पहिले तो चारों वेद नहि थे. ऋषियों पास यज्ञ अर्थात् जीवोंके हवन करनेकी श्रुतियों थी. तिन हिंसक श्रुतियोंमें अहिंसक जैनधर्मके लिखनेंका क्या प्रयोजन था ? कदापि निंदारुप लिखा होगा तो यज्ञ विध्वंसकारक, राक्षस, दैत्यादि नामोंसें लिखा होगा. इस

व्यासजीके स्तवन करें सूत्रसेतो जैनमत चारों वेदोंका बननेंसे पहिला विद्यमान था. ग्रंथकार जिस मतका खंडन करता है सो मत तिसके समयमें प्रबल विद्यमान होता और ग्रंथकारके मतको विरोधी होता तब लिखता है. इस लिखनेसेंभी यह सिद्ध होता है कि जैन धर्म सर्व मतोंसें पहिला सच्चा मत है. इस वास्ते जैनमतको जो कोइ नवीन मत कहता है सो बडी भूल खाता है. तथा जैनमतके तीर्थंकरोकी मूर्त्ति देखनेसेंभी जैनमतका उपदेष्टा सर्वज्ञ, निर्विकार, निर्भयादि गुणो करके संयुक्त सिद्ध होता है, तथा अन्यमतके देवताओंकी मूर्त्ति देखनेसें वे देव असर्वज्ञ कामी, हिंसक, सभयादि करके संयुक्त थे ऐसा अनुमानसें सिद्ध होता है. जैसे हम अन्य देवोकी मूर्त्ति स्त्री और शस्त्र संयुक्त देखते है अथवा लिंग भगमें देखते है तथा जानवर पक्षीके उपर चढा हुआ हाथमें जपमाला, कमंडल, पुस्तक विगेरे रखेला देखते है. इन चिन्हो द्वारा हम जीस देवकी मूर्त्ति देखते है, तिस मूर्त्ति द्वारा हम तिस देवको पीछान शकते है. प्रथम जो देव स्त्री रखता था तिसका स्त्रीके संगमसें सुख होता था; जितना चिर स्त्रीसें विषय नहि सेवता था तितना काल काम पीडित दुःखी रहता था. इस वास्ते स्त्री रखनेवाला देव दुःखी, कामी, मोही, रागी, आत्मानंद वर्जित, निशूक, पुद्गलानंदी, ब्रह्मज्ञान वर्जित, शुद्ध स्वरूपका अनभिज्ञ, अजीवन्मुक्त, सविकारी, स्त्रीके मुखका थुंक चाटके सुख माननेवाला, मांस, रुधिर, नसाजाल, वातपित्त, कफकी ग्रंथिरूप कुचके मर्दन और आलिंगन करके सुख माननेवाला, परवश, इत्यादि दूषण है. स्वस्त्रीके रखनेवालामें इतना दूषण है, जेकर परस्त्री हरण करे अथवा परस्त्रीसें मैथुन सेवे तब तो लुच्चा, चोर, धाडी, पारदारिक, डाकु, कुव्यसनी, अन्यायी, स्वस्त्रीसें असंतोष, विषयका भिक्षाचार, राज्य संबंधी दंड योग्य, अन्याय प्र-

वर्तक, अन्याय शिरोमणि, हीन पुण्यवाला, परस्त्री देखी झुरने-वाला, असमर्थ, इत्यादि अनेक दूषणो वो देवमें सिद्ध होता है. तो फिर ऐसे देवको ईश्वर मानना अथवा ईश्वरका अंशावतार मानना, धर्मका उपदेष्टा मानना, तिसकी सेवा, भक्ति, पूजा, ध्यान, जाप, अरू रटनेसें अपनेकों मुक्त होना मानना, वो महा ज्ञानी जीवोका काम नही है. ऐसे देव, देव नहि थे, परंतु भारीकर्मी जीवोनें पापोदयसें सच्चे देवकी स्पर्द्धा करके आटोके धोवनके दुध मानके और आकके दुधको गोदुग्ध मानके पीआ है अर्थात् कुदे-वोमें सच्चा देवका आरोप किया है.

जो देव शस्त्र रखते है, तिस्सें यह सिद्ध होता है कि शस्त्र तो शत्रुके भयवाला रखते है, इसवास्ते वो देव सभय है, इसका शत्रु उपर द्वेष होनेंसें द्वेषी है, शत्रुको विना शस्त्र मार नहि श-कता है इस वास्ते असमर्थ है, शत्रुको उत्पन्न करनेसें अज्ञानी है. पूर्व जन्मादिमें पाप करे तिस वास्ते वैरी उत्पन्न हुए इत्यादि अ-नेक दूषणो शस्त्र रखनेवाला देवमें है, तथा जो सदा स्त्रीके साथ विषयासक्त रहते है सो देव सदा कामदेवकी अग्निसें दग्ध प्रज्व-लित है, तिस देवके भक्तोकों लज्जा नहि आती होवेगी ?

जपमाला रखनेवालाभी देव नहि. माला तो वो रखते है जिनको जापकी संख्या याद नहि रहती है. भगवान तो सर्वज्ञ है. अथवा माला वो रखते है जिनोनें किसीका जाप करना होवें. भगवान तो किसिका जाप नहि करते है तो फिर मालाके जाप करनेसें देव क्या मागते है.

कमंडलु अशुचि दूर करने वास्ते है, भगवंतकु अशुचि है नहि.

पुस्तक वाचनेसें सर्वज्ञ नहि है.

शरीरके विज्ञूति लगानेसें कृतकृत्य नहि हुआ है.

जानवरोकी स्वारि करणेसें जानवरोकों फुःख देता है और असमर्थ है, क्योंकि विना जानवरकी स्वारि आकाशमें नहि जम शकता है.

ये पूर्वोक्त दूषण अर्हंत प्रतिमामें नहि है. इस वास्ते अर्हंत सर्वज्ञ, दयालु, निर्ज्ञय, निर्विकारी, रागद्वेष मोहादि कलंक पंकसें रहित था तो तिसकी मूर्तिमेंज्ञी वेसेही चिन्ह पाये जातेहै. इस वास्ते लोकोंनें स्पर्द्धासें अयोग्य पुरुषोंके विषे देवका उपचार करा है. परंतु वे देव नहि. इस वास्ते जैनधर्मही सच्चा और सनातन मोक्ष मार्ग है.

जैनमतके जितनें आगम है वे सर्व प्राकृत ज्ञाषामें है और इन शब्दोंमें अनंत अर्थ देनेकी शक्ति है.

॥ राजानो ददते सौख्यं ॥

इस वाक्यके आठ लाख अर्थ तो में करे शकता हुं, इस वास्ते जैनवाणी बहुत अतिशय संपन्न है.

कितनेक ज्ञोले जीवांको ऐसा संशय होवेगा कि दिवाली कल्पादि शास्त्रोमें लिखां है कि विक्रमादित्यके संवत १९१४ में कलंकी होवेगा. सो नहि हुआ है, इस वास्ते जैनवाणीमें संशय रहता है. इसका उत्तर यह है,

हे ज्ञव्य जीव! जिनवाणीतो सदा निःकलंक और सत्य है, परंतु समजमें फेर है. क्योंकि विक्रमादित्यके संवत १९१४ में कलंकी राजा होवेगा ऐसा लेख किसी जैनमतके शास्त्रमें नहि है. दिवाली कल्पादि ग्रंथोमें तो श्रीवीरात् संवत १९१४ में कलंकीका होना लिखा है. तिस कालको आज दिन तक ६०० वर्ष व्यतीत हो गये है तो फेर इस समय में कलंकी कहांसे होवे.

प्रश्न—श्रीमहावीर स्वामीके पीछे संवत १९१४ में कानसा कलकी राजा हुआ है जिसकी बाबत दिवाली कल्पादि ग्रंथोमें कलकीका होना लिखा है ?

उत्तर—गुर्जर देश नृपावली ग्रंथमें लिखा है कि विक्रमादित्य-के संवत १४४६ में अल्लाउदीन खुनी बादशाहका राज्य था तिसके पहिलां ओर पीछे सहाबुदीन खुनी ओर शरकीफिसान हुए है. यह अल्लाउदीनादि ऐसे जुल्मी बादशाह हुए है कि जिनोंनें हजारो मंदिर तोडवाये थे. अल्लाउदीन तो ऐसा जुल्मी था कि जिसनें अपना किला बनाने वास्ते ऐसा हुकम करा था के निःकेवल मंदिर तोडके तिनके मसालेसेंही किल्ला बनाया जावे. तिस अल्लाउदीननें प्रभासपाटनमें राजा कुमारपालका बनाया जैनमंदिर तोडवाके मसजीद बनाइ थी. सो मसजीद पाटनमें विद्यमान है. तिस अल्लाउदीनके राज्यमें प्रजाको ऐसा दुःख हुआ था कि किसी राजाके राज्यमें ऐसा नहि हुआ होगा. इस वास्ते ये जुल्मी बादशाह मेरी समजमें कलंकी राजा था. इसके जुल्म इतिहास ग्रंथोमें ऐसा लिखे है कि जिनके वांचनेसें आंखोमें तुरत आंसु आ जावे. और जो कलंकीका विशेष वर्णन लिखा है सो समुच्चय है, इस कलंकीके वास्ते नहिं. किंतु सर्व कलंकी, उपकलंकीओमेंसें जो भारी कलंकी होवेगा तिसके वास्ते मालुम होता है. क्योंकि सुदृष्टतरंगिणी नामके ग्रंथमें तथा अन्य ग्रंथोमें कलंकी उपकलंकी बहुत होने लिखे है इस वास्ते पूर्वोक्त जुल्मी बादशाह पूर्वोक्त संवतमें हुआ संभव होता है तिसकोंही कलंकी कहना ठीक है.

प्रश्न—सबसें बडा कलंकी कबहोवेगा जिसके विशेषण दीवाली कल्पादि ग्रंथोमें कहा है.

उत्तर—महानिशीथ सूत्रमें गौतम गणधरे पूछा करीके हे ज्ञगवन् ! तुमारा शासन किस समयमें अत्यंत तुछ रह जावेगा अर्थात् जैन धर्म बहुत क्षीण हो जावेगा?

तब ज्ञगवंतनें कहा, हे गौतम ! जब कलंकी राजा होवेगा तब तिसके राज्यमें मेरा शासन बहुत तुछ रह जावेगा. और तिस कलंकी राजाके राज्यांतमें श्रीप्रज्ञ नामा युगप्रधान आचार्य होवेगा तिस आचार्यसें फेर मेरे शासनकी वृद्धि होवेगी. परंतु महानिशीथ सूत्रमें संवत् नहि लिखा है इस वास्ते युगप्रधान गंडिका और दुष्यमसंघस्तोत्र यंत्रमें लिखा है कि श्रीप्रज्ञ आचार्य आठमें उदयमें आदि आचार्य होवेगा तिसके समयमें कलंकी राजा होवेगा. इस वास्ते दिवाली कल्पादि ग्रंथ देखके व्यामोह न होना चाहिये. जो जो राजा ज्ञारी पापी, धर्मका विरोधी, प्रजाका अहितकारी होवेगा तिस तिसका नाम कलंकी जानना- किसीका नाम अर्धकलंकी, उपकलंकी जानना. इस वास्ते जानना के कलंकी राजा बहुत होवेगा. इसकी साथ तेवीस उदयका यंत्र दिया जाता है, तिसमें श्रीप्रज्ञ आचार्य मालुम हो जावेगा.

दयानंद सरस्वतीने लिखा है कि जैनाचार्योंने अपना मत गुप्त रखने वास्ते धूर्ततासे वामीओकी तर संकेत करी है. उत्तर इसका यह है.

दयानंद सरस्वतीने प्राकृतका व्याकरण नहि पढा है इस वास्ते दयानंद सरस्वतिकी बुद्धिमें ज्ञासन नहि होता है. कबी उनोनें प्राकृत व्याकरणका अज्यास करा होता तो ऐसा कबी नहि लिखता.

दयानंदके जो वेद है तिसकी श्रुतियां ऐसी रीतिसें बनाई है कि जिसमें बहुत अक्षर निरर्थक है, और वेदोकी संस्कृतज्ञी

संस्कृतके कायदासें रहित है इस वास्ते जंगली ब्राह्मण अर्थात् ऋषियोकी बनाइ हुइ है. इसी वास्ते बमे विचक्षण मोक्षमूलर साहेब लिखते है कि वेद अज्ञानियोके बनाये हुए है. और वेदामें संकेतन्नी ऐसे गुप्त करे है, कि उसरे मतवाले उन शब्दोंके अर्थ न समजे जैसें वाजपेय, सौत्रामणि, गोसव, मधुपर्क इत्यादि. जो कलंक दयानंद जैनशास्त्रांको देता है सो सर्व वेदो उपर पमता है. और जैनसूत्र निःकलंक है क्योंकि प्राकृत व्याकरण विद्यमान है. प्राकृत न्नाषा सर्व पंमिताको सम्मत थी. नहि तो पाणिनि, वररुचि, चंड, नंद, हेमचंद्र प्रमुख काहेको प्राकृत व्याकरण बनाते तथा वेद वेदांग शिक्षामें ऐसा क्यों लिखते.

त्रिषष्टिश्चतुः षष्टिर्वा वर्णाः शंभुपतेः मताः
पाकृते संस्कृते चापि, स्वयंप्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥१॥

अर्थ—वर्ण त्रिषष्टि ६३ और चतुःषष्टि ६४ है, ऐसा शंन्नुपतिका मत है. स्वयंन्नूने प्राकृत और संस्कृत मे ते वर्ण मान लीया है ॥ १ ॥

परंतु दयानंद अपनीही गोदडीमें सोना जानता है. दयानंद अन्य मतोका कुछन्नी जानाकर नहि, नहि तो अपने बनाये सत्यार्थप्रकाशमें जैनमतकी बाबत स्वकपोलकल्पित काहेको उतपटंग लिखता. यह दयानंद वेदोका विद्रुदातन छिपाने वास्ते स्वकपोलकल्पित वेदोके अर्थ नविन बनाके लोगोंसें लमता फिरता है, परंतु यह काठकी हांमी कब तक चलेगी ? इस वास्ते जैनशास्त्र, संस्कृत, प्राकृत दोनोंही व्याकरणसें सिद्ध होनेंसें प्रमाणिक है.

कोइ कहता है कि कुछक बौद्ध मतकी बांता और कुछक वैदिक मतकी बांता लेकर जैनमत बनाया है. यहन्नी लिखना

अकलके अजीर्णतासें है, क्योंकि जैन मतमें जो जो कथन है सो सो नतो बौद्ध मतमें है और नतो वैदिक मतमें है तो फिर जैन मत पूर्वोक्त मतोंकी बातोंसें बना क्योंकर ठहर सकता है ? क्योंकि सर्व नदीयां समुद्रमेंतो प्रवेश करती है, परंतु समुद्र किसीभी एक नदीमें नहि समा सकता है. इसी तरें जैनमत स्याद्वादरूप समुद्र है. तिसमें तो सर्व मतां नदीयां समान समा सकते है परंतु जैनमत समुद्र समान किसीभी एक मतमें नहि समा शकता है, जैन मतकीही बातां लेकर सर्व मत बने है.

मूर्त्तिपूजाका मंडन.

कितनेक यहभी कहते है कि जैन मतमें मूर्त्तिपूजनका कथन है और मूर्त्ति पूजनका आज काल बहुत बुद्धिमान घुणा करते है. इस वास्ते जैन मत अछा नहि. इसका यह है कि मूर्त्तिके विना माने किसभी बुद्धिमानका काम नहि चलता है. प्रथम तो बुद्धिमान सर्व मुलकोंके अरु ग्राम नदी, पर्वतादिकके नकशे बनाते है. और तिन नकशा द्वारा असल वस्तुका स्वरूपका निश्चय करता है. हिंदुओंके मतमें तो अपने अपने इष्ट देवकी मूर्त्ति पूजन प्रसिद्ध है. और ईसाइ मतवाले अपनी छापी हुइ कितनीक पुस्तकोंके उपर इसाकी मूर्त्ति, जैसा शूलि देनेकुं ले चलेका रूप था तैसा छापते है जिससे देखने वालेकों इसामसीहकी अवस्था याद आवे. तथा रोमनकेथोलिक पादरी इसाकी मूर्त्ति मानते है. और मूर्त्ति न माननेवालाको नवीन मतवाला कहते है. तथा मुसलमानोंमें जो सिया फिरकेके मुसलमान है वे मोहरममें ताबुत बनाते है और दुलदुल घोडा निकालते है अपने इमामोकी लाश बनाते है यह सर्व मूर्त्ति पुजनमें

सामिल है, तथा सर्व मुसलमान मक्केमें हज करनेंकोजाते है. मक्केमें श्याम पथ्थरके बोसे लेतें है. मदीनेमें जाते है, यह भी सर्व मूर्त्ति पूजनमें दाखिल है. तथा जो पुस्तक मतधारीओकी है वे सर्व परमेश्वरकी बनाई कहते है; तबतो जो पुस्तक पत्रोंमें लिखें जाते है वे सर्व मूर्त्तिकें माफक है. तथा सुंदर कामिनीके अद्भूत रूपकी मूर्त्ति देखनेसें जैसे कामीकों काम उत्पन्न होता है तैसा वीतरागकी मूर्त्ति देखके भक्त जनांको भक्तिराग उत्पन्न होता है. तथा जो कहता है कि मूर्त्ति हाथोकी बनाइ है तब तो पुस्तकभी हाथोके बनाये है तिनकोंभी न वांचना चाहिये.

पूर्वपक्ष—पुस्तक वांचनेसेतो ज्ञान होता है.

उत्तरपक्ष—वीतरागकी प्रतिमाको देखनेसेभी वीतरागकी अवस्था याद आनेसें वैराग्य और भक्ति उत्पन्न होती है.

प्रश्न—प्रतिमाको चोर चुरा ले जाते है. मूसे मूत जाते है, म्लेच्छ खंडन कर देते है, तो प्रतिमा हमको क्योंकर तारेगी.

उत्तर—पुस्तकभी पूर्वोक्त दूषणों संयुक्त होनेसें वाचने वालेको कुछभी उपकारक न होने चाहिये. जैसे प्रतिमा पाषाणादिककी है तैसे पुस्तकभी स्याही और सणिके है. जैसे प्रतिमा विकती है तैसे पुस्तकभी विकते है. जैसे प्रतिमा तालेके अंदर दीनी जाति है तैसे पुस्तकभी तालेके दीये जाते है. इस वास्ते जो पुरुष प्रतिमाकी निंदा करते है और पुस्तकांको परमेश्वरकी वाणी मानते है, और तिनको वांचते है, और आदर करते है वे निर्विवेकी है. और जो दयानंद प्रतिमाकी निंदा करता है. सोभी तैसाही समजना क्योंकि जैनाचार्य, बौध, गौतम, कपिल पतंजलि, कणाद, व्यास प्रमुख महातार्किकोनें मूर्त्तिपूजनका नि-

षेध कहीं नहि लिखा है. तथा नानकजी, कबीर, दाडु, गरीबदास, ढुंढीये, ब्रह्मसमाजी प्रमुख जो प्रतिमाकी निंदा करते है सो नवीन, और अनभिज्ञ होनेसे हिंडुओंके मतसें विरुद्ध है. क्योंकि प्रतिमाकी निंदा हिंडुओंके प्राचीन किसी शास्त्रमें नहि लिखी है. तथा जो कहते है कि ईश्वर निरंजन, निर्विकारी, अरूपी, अक्रिय, जगतका कर्त्ता, और सर्वव्यापक है तिस ईश्वरकी मूर्त्ति बनही नाहि सकती है, मूर्त्ति तो देहधारकी हो शकती है.

उत्तर—पूर्वोक्त जगतका कर्त्ता और सर्वव्यापी इन दोनों विशेषणोंवाला ईश्वर तो किसी प्रमाणसेंभी सिद्ध नहि होता है, और पूर्वोक्त विशेषणोंवाला ईश्वर उपदेशकर्त्ता सिद्ध नहि हो शकता है तिसका यह प्रमाण है.

धर्माधर्मौ विना नांगं विनांगेन मुखं कुतः ।
मुखाद्विना न वक्तृत्वं तच्छास्तारः परं कथं ॥ १ ॥
अदेहस्य जगत्सर्गे प्रवृत्तिरपि नोचिता ।
न च प्रयोजनं किंचित् स्वातंत्र्यान्न पराज्ञया ॥ २ ॥
क्रीडया चेत्प्रवर्त्तेत रागवान्स्यात् कुमारवत् ।
कृपयाथ सृजेत्तर्हि सुख्येव सकलं सृजेत् ॥ ३ ॥
दुःखदौर्गत्यदुर्योनिजन्मादिक्लेशविव्हलं ।
जनं तु सृजतस्तस्य कृपालोः का कृपालुता ॥ ४ ॥
कर्मापेक्षः स चेत्तर्हि न स्वतंत्रोस्मदादिवत् ।
कर्मजन्ये च वैचित्र्ये किमनेन शिखंडिना ॥ ५ ॥
अथ स्वभावतो वृत्तिरवितर्क्यामहेशितुः ।

परीक्षकाणां तद्येष परीक्षाक्षेपडिंडिमः ॥ ६ ॥
सर्वभावेषु कर्त्तृत्वं ज्ञातृत्वं यदि सम्मतं ॥
मतं नः संति सर्वज्ञा मुक्ताः कायभृतोपि च ॥ ७ ॥
सृष्टिवादकुहेवाकमुन्मुत्चैत्य प्रमाणकं ॥
त्वच्छासने रमंते ते येषां नाथ प्रसीदसि ॥ ८ ॥

इति वीतरागस्तोत्रे जगत्कर्त्तृनिरासस्तवस्यः सप्तमः प्रकाशः

अर्थः—धर्म, अधर्म अर्थात् पुण्य, पाप विना अंग, शरीर होता नहि है, धर्मसें रमणीक और अधर्मसें अरमणीक शरीर होता है, परंतु धर्म अधर्म विना शरीर होताही नही है, और शरीर विना मुख कैसे होवे, और मुख विना कथन करना नहि होता है. इस हेतुसें, हे नाथ ! अवर जो ईश्वर शरीर विना है वो कैसे शास्तारः अर्थात् शिक्षाका दाता हो शक्ता है. १ हे नाथ अदेहस्य देह रहितको जगतकी सृष्टिमें अर्थात् जगतकी रचनामें प्रवृत्त होनाभी उचित नहि है तथा हे नाथ ! अदेहस्य, देह रहितको जयतकी रचनामें स्वतंत्रतासें और परतंत्रतासें प्रवर्त्तनेका प्रयोजन नहि है, क्योंकि स्वतंत्रतासे तो ईश्वरकी जगत रचनेंमें तब प्रवृति होवे जब ईश्वरको किसी वस्तुकी इच्छा होवे क्योंकि इच्छावाला है सो ईश्वर नहि है, और परतंत्रतासें तब प्रवृत्ति होवे जब ईश्वर किसीकें आधीन न होवे. इस वास्ते दोनु प्रकारसें प्रवृत्ति नही. २ जेकर देह रहित ईश्वर क्रीडाके वास्ते जगतको रचता है तब तो राजकुमारवत् सरागी हुआ, और ईश्वरपणाही जाता रहा; जे कर दया करके जगतकी रचना करता है तब तो सुखीही सर्व जीव रचनें चाहिए, क्योंकि कीसीको सुखी और किसीको दुःखी रचेगा तब तो विषमदृष्टि होनेसें ईश्वरत्वसिद्ध नहि होता है. ३ जेकर देह रहित ईश्वर दुःखी जनांको र-

चता है तब तो ईश्वरको दया नहि, क्योंकि जब ईश्वर दुःखदुर्गति, दुर्योनि, जन्मादि क्लेश करके व्याकुल जीवांको रचता हुआ तब ईश्वरमें कौनसी कृपालुता है. ४ जेकर पूर्वोक्त ईश्वर कर्मापेक्षासें अर्थात् जैसे जैसे शुभाशुभ कर्म जीव करते है तिसको तैसा तैसा सुखी दुःखी रचता है तब तो ईश्वर अस्मादिकोंकी तरें स्वतंत्र न हुआ, किंतु परतंत्र हुआ अर्थात् कर्माके आधीन जैसें हम वर्तते तैसे ईश्वरभी हुआ. जब कर्मोंहीसें जगतकी विचित्र रचना है तब तो जगतका कर्त्ता नपुंसक ईश्वर काहेको मानना, उसके माननेसे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहि होता है ५ जेकर ईश्वरका स्वभावही ऐसे जगत रचनेका है, तब तो यह कहना परीक्षकोंकी डौंमीका नाश करणा है अर्थात् परीक्षकोंकी बुद्धिका नाश करणा है, क्योंकि स्वभाव पक्षको लेकर महा मूढभी जय पताका ले शकता है. ६ जेकर सर्व पदार्थोंके जानवेका नाम- कर्तृत्व है तब तो देह रहित सिद्ध और देह सहित केवली कर्त्ता सिद्ध हुए तब तो हमाराही मत सिद्ध हुआ. ७ हे नाथ ! वे पुरुष तेरे शासनमें रति करते है क्या करके, पूर्वोक्त अप्रमाणिक अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाण रहित सृष्टिवाद कुहेवाक छोडके अर्थात् खोटी अभिलाषा छोडके कब छोडते है जब तुं तुष्टमान् होंता है इति सप्तम प्रकाशका अर्थ.

इस वास्ते देहधारी, सर्वज्ञ, वीतराग अर्हंतहीकी मूर्त्ति मानने योग्य है, अन्य देवोंकी मानने योग्य नहि है क्योंकि अन्य देवोंमें परमेश्वरपणा किसी प्रमाणसें सिद्ध नहि होता है. जो देव कामी, क्रोधी अज्ञानी, मत्सरी, स्त्रीका अभिलाषी, चोर, परस्त्री गमन करनार, शस्त्रधारी, माला जपनेवाला, शरीरको भस्म विभूति लगानेवाला, लोभी, मानी, नाचनेवाला, हिंसाका उप-

देशक, दुनियाको करामत देखानेवाला, जगतमें अपनी बढाइ-का इच्छक इत्यादि अवगुण करके संयुक्त है वो परमेश्वर सिद्ध नहि होता है.

अर्हंत परमेश्वर वो अवगुणसें रहित है इस वास्ते इसकी मूर्त्तिनी शांतरूप, ध्यानारूढ, निर्विकारी होनी चाहिये, जिसके देखनेसें वीतरागकी अवस्था याद आवे. ऐसी मूर्त्तितो जैन मतमें-ही है, अन्यमतमें नहि क्योंकिं अन्यमतोमें पूर्वोक्त दूषण रहित कोइ देवनी नहि हुआ है.

जैनमतमें अठारह दूषण जिसमें नहि होवे तिसको अर्हंत परमेश्वर मानते है, वे दूषण यह है.

अन्तराया दानलाभवीर्यभोगोपभोगगाः ।
हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्सा शोकएव च ॥ १ ॥
कामो मिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा चाविरतिस्तथा ।
रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्ठादशाप्यमी ॥ २ ॥

अर्थ—दानगत, अंतराय, लाभगत अंतराय, वीर्यगत अंतराय, नोगगत अंतराय, उपनोगगत अंतराय यह पांचतो नगवंतके विघ्न नहि है, नगवंत तीन लोकको लक्ष्मी तृणाग्र मात्रसे दान करे तो कोइ रोकनेवाला नहि; नगवंतका परम्की चारवर्ग अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाका लान तथा नगवंतका समस्त साधन और अनंत चतुष्टयकी प्राप्तिमें कोइ विघ्न करता नहि तथा लानांतरायके क्षयसें अचिंत्य माहात्म्य, विनूति प्रगट हुइ है तिससें नगवंतके लानमें कोइ विघ्न करता नहि; नगवंत अनंत शक्तिसें, चाहे तो तीन लोकको स्वाधीन करे लेवे तिसमें कोइ रोक शकता नहि है; नगवंत अनंत आत्मिक सुख नोगते है तथा उपनोग अनंत प्रकारका चाहे तो कोइ विघ्न करता नहि; नगवंत-

को हांसीज्ञी नहि आती हे क्योंकि हांसी तीन निमित्तोसें उत्पन्न होती है, आश्चर्य वातके सुननेसें, आश्चर्य वस्तुके देखनेसें, आश्चर्य वस्तुकी स्मृति होनेसें. अर्हंत ज्ञगवंतके पूर्वोक्त तीनोंही आश्चर्य नहि है क्योंकि ज्ञगवंत तो सदा सर्वज्ञ है; पदार्थोंपर प्रीति करणी सो रति; पदार्थोंपर जो अप्रीति करणी सो अरति; ज्ञय; जुगुप्सा अर्थात् घृणा; शोक, चित्तका वैधूर्यपणा; काम, मन्मथ; मिथ्यात्वदर्शन मोह; अज्ञान, मूढपणा; निद्रा, सोना; अविरति, अप्रत्याख्यान; राग, सुखाज्ञिज्ञ, सुखकी अज्ञिलाषा, पूर्व सुखकी स्मृति. सुखमें और शस्त्रके साधनमें गृद्धिपणा सो राग, द्वेष, दुःखाज्ञिज्ञ दुःखानुस्मृति पूर्व दुःखमें और दुःखके साधनोंमें क्रोध सो द्वेष, ये अगरह दूषण जिसमें न होवे सोही अर्हंत परमेश्वर है. जब अर्हंतका निर्वाण होता है तब शुद्ध निरंजन, अविकारी अरूपी, सच्चिदानंद, ज्ञानस्वरूपी, अलेख, अगोचर, अजर, अज, अमर, ईश, शिवशंकर, शुद्ध, बुद्ध, सिद्ध, परमात्मादि नामोसें कहा जाता है; परंतु अज्ञानोदयसें मतज्ञंगीओंने अनादि ज्व्यत्व शक्तिका ईश्वरका गुणोपचार करके ईश्वरको जगतका कर्त्ता ठहराया है, इससें सिद्ध परमात्मामें अनेक दूषणो उत्पन्न होते है सो तो मतज्ञंगी नहि विचारते है. परंतु इस जगत ईश्वर विना कदापि नहि हो सकता है इस चिंतामही डूब मरे और मूब जाते है; और जो जो मतज्ञंगीओंनें अपने मतमें आदि उपदेशक, देहधारी ईश्वर, शिव, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, ईशादि ठहराये है वे अगरही दूषणोसें रहित नहि थे, क्यों कि शिवकी बावत पुराणोमें जो कथन लिखा है तिससें एसा मालुम होता है कि शिवजी कामीज्ञी थे, वेश्या वा परस्त्री गमनज्ञी करते थे, और राग द्वेषीज्ञी थे, और क्रोधीज्ञी थे, और अज्ञानीज्ञी थे, इत्यादि अनेक दूषण संयुक्त थे, इस वास्ते अर्हंत

परमेश्वर नहि था, किंतु लोकने स्वच्छंदतामें ईश्वर कल्पन कर छोडा है. तथा श्रीरामचंद्रजी यद्यपि परस्त्रीगामी नहि था, और अनेक शुभगुणां करी अलंकृत था. परंतु अर्हंत परमेश्वर नहि था, क्योंकि भार्या सीतासें भोग करता था, इस वास्ते कामसें रहित नहि था; तथा संग्रामादि करनेसें रागद्वेष रहितभी नहि था; राजा होनेसें अविरतिभी था; शोक, भय, रति, अरति, जुगुप्सा, हास्यादि करकेभी संयुक्त था; इस वास्ते अर्हंत परमेश्वर नहि था; यद्यपि दीक्षा लिया पीछे श्रीरामचंद्रजी सामान्य केवली हो गये थे परंतु तीर्थंकर नहि थे. इसी तरे श्रीकृष्णजीभी जान लेने. तथा इशामसीहभी पूर्वोक्त अगारह दूषणोंसें रहित नहि था, क्योंकि इंजीलमें लिखा है कि एक दिन इसामसीहको भूख लगी तब गुलरके फल खानेको गया. जब गूलरके पास गये तब गुलरमें फल एकभी न मिला, तब इखामसीहनें गुलरको शाप दिया, जिस्सें गुलर सूक गया. इस लिखनेसें यह मालुम होता है कि यसामसीहको ज्ञान नहि था, नहितो फल रहित गुलरके पास फल खानेकु न जाते, तथा गुलरको शाप देनेसें द्वेषभी सिद्ध हुआ, तथा जगतमें करामत दिखलाके लोगोका अपने मतमें लाता था, जेकर समर्थ होता तो अपनी शक्तिसें लोकोका अंतःकरण शुद्ध नहि कर शकता था ? तथा भक्तजनोके पापके बदले शूली चढा. क्या विना शूली चढे भक्तोका पाप नहि दूर कर शकता था ? तथा पाप करा अन्यने और फल भोग्या अन्यनें यह असंभव है; तथा इजिलमें कहता है, जो पाप करते है तिसको में उनकी सात पेढी तक उस पापका फल देता हुं, यह अन्याय है क्योंकि करा अन्यने और फल अन्यको देना, तथा इसामसीह चोद रहा कि सर्व लोक मेरे पर इमान लावे परंतु लोक लाय नहि. इससेंभी अज्ञान, असामर्थ्यता सिद्ध होती

है तथा इसामसीह चलनेसें थक गयाभी लिखा है इस वास्ते वीर्यांतराय दूषणभी था. तथा दयानंद सरस्वति जो कहता है कि मनुष्य सर्वज्ञ कदापि नहि हो सकता है, इस वास्ते ईश्वरने अग्नि, वायु, सूर्य, अंगीरस ऋषियोंके मुखसें वेद कथन करवाये; यह कहना महा जूठ है, अप्रमाणिक होनेसें; तथा क्या जानने उन ऋषियोने स्वकपोलकल्पित गप्पेंही मारी होवे, इस वातका गाह कौन है कि ईश्वरने उनसें कथन करवाया. क्या ईश्वर बने बनाये, लिखे लिखाये वेद ऋषियोको नहि दे शक्ता था ? हम उपर प्रमाण लिखे आये है कि देह विना सर्वव्यापी ईश्वर अन्यको प्रेरणादि कुछ नहि कर शक्ता है तथा अनुमान प्रमाणसेंभी सिद्ध होता है कि देह रहित ईश्वर कर्त्ता नहि अक्रियत्वात्–अक्रिय होनेसें, आकाशवत्. इस वास्ते अढारह दूषण रहित देहवालाही उपदेशक हो शक्ता है, सोही अर्हंत परमेश्वर है.

दयानंद सरस्वति जो प्रतिमाका पूजना निषेध करता है सोभी अज्ञानोदयसें क्योंकि प्रथम खंडमें सप्रमाण लिख आये है कि वेद ईश्वरके कथन कर हुए नहि तब तो वेदोमें मूर्ति पूजन हुआ तो क्या हुआ, और न हुआ तोभी क्या हुआ. जब वेदही ईश्वरोक्त नहि तब दयानंदके गल्ल बजानेसे क्या है. इस वास्ते अर्हंत परमेश्वरही, सर्वज्ञ और सच्चे धर्मका उपदेशक है, अन्य नहि है; जेकर कोई ऐसा कहे कि जैनीओने अच्छी अच्छी बाता अपने पुस्तकोमें अपने अर्हंतोके वास्ते लिखी लिनी है तो हम कहते है कि अन्य मतांवालाको किसने रोका है जो तुम अपने अवतारो वास्ते अच्छी बाता मत लिखो; परंतु जैसा जिसका चाल चलन था तैसाही लिखनेवालोने लिखा है, क्योंकि विक्रमादित्यका बडा भाइ भर्तृहरि अपना बनाया शृंगार शतकमें लिखता है कि—

शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियंत सततं गृहकर्मदासाः ।
वाचामगोचरचरित्रविचित्रताय
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ १ ॥

सारांश यह है कि ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर इन तीनोंके कामनें स्त्रीयोंका घरका दास बनवाया. और अर्हंत परमेश्वर गुणवान थे सो वैसेहि लिखनेमें आये है, अरु अन्य देव विपर्यी होनेसें वैसेहि लिखनेमें आते है.

जैनमतमें दर्शावेल आयुष्य और देह प्रमाणका प्रतिपादन.

कितनेक यह भी कहता है कि जैन मतमें जो तीर्थंकरोकी आयु और अवगाहना अर्थात् शरीरका उंचापणा और परस्पर तीर्थंकरोकी अंतरके असंख्य क्रोमो, लाखो वर्ष प्रमुख जो लिखे है सो प्रतीतिके लायक नही है क्योंकि इतनी आयु, और इतनी उंची देह, और इतना काल संभव नही होता है. इतिहासतिमिरनाशकका कर्त्ताभी इस वातकों मश्करीकी तौरपर लिखता है, परंतु जब यह संसार अनादि सिद्ध है तो इसमें पूर्वोक्त तीनो वातोका होना मुश्कल नहि है. और जो वेदोंमें लिखा है कि में सो वर्षतक जी शकुं और कठ उपनिशदमें यम नचिकेताको कहता है कि बेटे और पोते मांग जो सो सौ वर्ष जिवना. इससें तो जो मोक्षमुलर साहिबनें लिखा है कि वेदोंको बने २९०० सो वा ३१०० सौ वर्ष हुए है सो सिद्ध होता है क्योंकि २९०० वा ३१०० वर्ष पर वेदोंकी उत्पति समयमें सौ वर्षकही आयु थी. सो वैसाही प्रार्थना करी.

तौरेत ग्रंथमें नूह प्रमुखकी ६०० सौ, ७०० सौ, ७०० सौ वर्षतककी आयु लिखी है इस वास्ते क्या वेदादीका कहना सत्य, अन्यथा नही ? इतिहासतिमिरनाशकका लिखनेवाला वेद स्मृति पुराणादिकके अनुसारही बहुत वातो लिखता है; क्या अन्य पुस्तक कोई नही जिसका प्रमाण लिखा जाय, तथा अंग्रेज जो पुरानी बातका पत्ता लिखता है वो ६००० हजार वर्ष अंदरहीका लिखता है, इसामसीहका कहना सत्य करता है.

कितनेक कहते है कि ६००० हजार वर्षके पहिलेकी कोइ इमारत वा सिक्का नहि मिलता है इस वास्ते ६००० हजार वर्षके अंदरही सर्व वस्तुका बनेका अनुमान करता है, तिसका उत्तर यह है कि—

इमारततो इतने वर्षतक रह नही शकती है और पुराने सिक्के सर्व, श्री पार्श्वनाथके जन्म कल्याणकमें धरतीसें निकालके पार्श्वनाथके घरमें इंद्र और देवताओने भाल देनेसें पुराना सिक्का नहि मिलाता है, यह लिखना जैनमतानुसार है. और अनादि कालकी सर्व खबर और यथार्थ स्वरूप इस कालका अल्प बुद्धिवान् इतिहास लिखनेवाले नहि कह शकते है तो फिर इनके लिखनेंसे बहुत कालकी प्राचीन वातां जैनमतकी गलित नहि हो शक्ती है; और जो इतिहासतिमिरनाशकवाला लिखता है कि इतना बडा घोडा और स्त्री कहांसे मिली होगी तो हम पुछते है कि क्या घोडा, स्त्री बडे होनेकी नास्ति है, यह तो प्रसिद्ध है कि जैसा पुरुष बडा होता है तैसी स्त्रीभी बडी होती है.

और जो इतिहासवालेको यह फिकर हुआ कि धरति थोडी और वस्ति बहुत सोभी अक्कलकी अजीर्णता है क्योंकि इस दुनिया उपर अनंत काल वित्या है क्या जाने समुद्रका कहांसें आ-

ना हुआ है और कहां कहां उसने जमीन रोकी है. जैनमतके शास्त्रमें लिखा है कि आगे इस समुद्रका पानी इहां नही था, महासागरमेंसें सगर चक्रवर्त्ती लाया. अंग्रेजोने इस समुद्रका दक्षिणादि किनारा नहि पाया है, और जो भूगोलादि कल्पन करा है सोभी अपनी अक्कलकी अधिकारतासें, परंतु परोक्ष वातो इनकी अकलसें रद नहि होती है, और कालदोषसें जैन मतके सर्व शास्त्र न रहनेंसें और यथार्थ अर्थ बतानेवाले आचार्यके अभावसें जैन शास्त्र जूठे नहि हो सक्ते है. जैनशास्त्रका उपदेष्टा अठारह दूषण रहित था इस वास्ते जैन मतके शास्त्र सच्चे है तथा जैन मतमें जैसा त्याग, वैराग्य और संयमकी बारीकी और बंदोबस्त है और जिस जिस अपेक्षासें जो जो कथन करा है सो सो वाचनेवालेका चित्तको चमत्कार उत्पन्न करता है. क्या वेद और क्या अन्य शास्त्र, सर्व जैन मतके शास्त्र आगे निर्माल्य लगता है, यह मेरा कहना तब सत्य मालुम होवेगा जब जैनमतका शास्त्र परीक्षा करनेवाला पढेगा. इतिहासतिमिरनाशकका लखनेवाला लिखता है कि जैन और बौद्ध एक मत है, सो उनकी बमी भूल है क्योंकि जैन और बौद्ध मतमे इतना अंतर है. कि जैसा रात और दिनमें है. जेकर इतिहासतिमिरनाशकके लिखनेवाला जैन और बौद्ध मतका तत्वको जानता तो ऐसा कदापि न लिखता, आजसें २४१२ वर्ष पहिलां महावीर भगवंतका पावापुरीमें निर्वाण हुआ, जब श्रीमहावीर विद्यमान थे तब बौद्ध मतका शाक्यसिंह गौतम नामका कोइ गुरु नहि था; निःकेवल इतिहास और तवारीख लिखने वालोंने महावीर भगवंतकाही शाक्यसिंह गौतम करके लिखा है.

इतिहास तिमिरनाशकका लिखनेवाला शाक्यमुनिकी स्त्रीका नाम यशोधरा लिखता है. श्रीमहावीरके गृहस्थवासकी स्त्री-

का नाम जैनमतके शास्त्रमे यशोदा लिखता है यही मिलता है परंतु ललित विस्तरा नामके बौद्ध मतके शास्त्रमें शाक्यमुनिकी स्त्रीका नाम गोपा लिखा है, इस वास्ते लोकोने श्रीमहावीर स्वामिकोही शाक्यमुनिके नामसें लिखा है.

निन्हवोंका स्वरूप.

भगवंतश्री महावीर स्वामिको केवल ज्ञान हुआ जब १४ चौदह वर्ष हुए तब भगवानका शिष्य जमालि नामा प्रथम निन्हव हुआ, निन्हव उसको कहते है जो भगवंतके कहे ज्ञानमेंसें एक वा दो वचन न श्रद्धे. इस जमालिनें भगवंतका एक वचन नहि माना. भगवंततो निश्चय मतसें क्रिया काल और निष्ठाकाल अर्थात् क्रिया और तिस क्रियासें उत्पन्न हुआ कार्य एकही समयमें मानना कहते थे, और जमालीनें व्यवहार नयके मतको मानके क्रिया और कार्य भिन्न भिन्न कालने मानके पूर्वोक्त श्रीमहावीरके वचनको मिथ्या ठहराये. जमालीने अपना मत श्रावस्ती नगरीमें निकाला, परंतु जमालीका मत जमालीके साथही नष्ट हो गया, जमालीके मरां पीछे इस मतवाला कोइ नहि रहा. इति प्रथमो निन्हवः.

श्रीमहावीरको केवलज्ञान हुआ जब सोलह १६ वर्ष हुए तब राजगृह नगरमें तिष्यगुप्त नामा दुसरा निन्हव हुआ, सो वसु आचार्यका शिष्य था. तिसको आत्मप्रवाद पूर्वक आलावा पढते हुएको यह अज्ञान हुआ जो आत्माका एक अंतका प्रदेश है. सोइ जीव है. तब तो गुरु प्रमुख बहुत बहुश्रुतोनें इनको समजाया परंतु हट नही छोरा. जब तिष्यगुप्तको अमलकल्पा नगरीके मित्रश्री श्रावकने समजाया तव हठ छोड दीया. इसका पंथभी नहि चला. इति द्वितीय निन्हवः.

श्रीमहावीरके निर्वाण पीछे जब २१४ वर्ष गये तब आर्याषाढ आचार्यके शिष्य तीसरे निन्हव हुए. आर्याषाढ काल करे देवता हो कर फेर तत्काल अपने शरीरमें प्रवेश करके अपने शिष्योको पढाता रहा. जब पढना पुरा हुआ तब अपना स्वरूप कह कर शरीरकों छोडके देवलोक चला गया. तब शिष्योंनें परस्पर वंदना करनी छोम दीनी; उसका संशय हो गया, क्या जाने साधु साधु है कि मृतके साधुके शरीरमें देवता प्रवेश करके साधु बन रहे है, आर्याषाढ आचार्यवत्. इस वास्ते इनको अयुक्तवादी निन्हव नाम पडा. जब राजगृहमें आये तब मौर्यवंशी बलन्नद्र राजा श्रावकनें समजाए तब हठ छोड दीआ. इनकाजी पंथ नहि चला इति तृतीयो निन्हवः.

श्री महावीरके निर्वाण हुए जब २२० वर्ष हुए तब समुच्छेदक वादी अर्थात् क्षणिकवादी अश्वामित्र नामा मिथिलानगरीमें चौथा निन्हव हुआ. इसको राजगृहमें महेसूल लेनेवाले श्रावकोंनें समजाया. परंतु इसका मत बौधोनें स्वीकार किया. इस वास्ते बौधोमें योगाचार मत क्षणिकवादी है परंतु इस अश्वमित्रसें मत छेड दीआ. इति चतुर्थो निन्हवः.

श्रीमहावीरके निर्वाणको जब २२८ वर्ष हुए तब दो क्रिया वेदनेमें एक साथ उपयोग माननेवाला गंगदत्त नामा पांचमा निन्हव हुआ. महागिरि आचार्यके धनदेव नामा शिष्यका वो शिष्य था. तिसके शिरमें टढरी (ताल) थी. आश्विनी मासमें नदी उतरतेके शिरमें सूर्यकी धूप लगी और पगोमें ठंमा जल लगा तब कहने लगा कि मेरा एक समयमें दोनुं जगे उपयोग है. इस वास्ते में एक समयमें दो क्रियाका मत स्थापन करने लगा, गुरुका समजाया न समजा. फिरता हुआ राजगृह नगरमें मणिनाग यक्षके मंदिरमें आया. तिहां अपना मत लोगोके आगे कहने लगा.

तब मणिनाग यक्षने कहाकि ज्ञगवंत श्री महावीरनें इसीनें ज-गेपर एक समयमें एक क्रिया वेदनेका एक उपयोग कहा था, तुं क्या उनसेंज्ञी अधिक ज्ञानी है ? हठ गेम दे नहि तो मार मालुं-गा. तब मरके लिये और गुरुओके समजानेसें मतका हठ गेम दिया. इति पांचमो निन्हवः.

श्रीमहावीरके निर्वाण पीछे जब ५४४ वर्ष गये तब रोहगुप्त नामा छठा निन्हव हुआ. श्रीगुप्ताचार्यके शिष्य रोहगुप्तनें अंतरजीका नगरीमें बलश्री राजाकी सज्ञामें पोटशाल परिव्राजकको जितने वास्ते जीव, अजीव, नोजीव, ये तीन राशी प्ररूपी परि-व्राजकको जिता. जब गुरु पास आया तब गुरुने कहा, तीसरी रासी " नोजीव " नहि. तुं राजाकी सज्ञामें फिर जाकर कह दे " नोजीव " है. मैंने जूठ तो नहि कहा है ? तब गुरुने राजाकी के " नोजीव, नहि. तब रोहगुप्त अज्ञिमानसें कहने लगा कि सज्ञामे रोहगुप्तको जूठा ठहराया. परंतु अज्ञिमानसें रोहगुप्तनें अपना मत गेडा नहि. तब गुरूनें उसकों संघसें बाहिर किया. तब तिस रोहगुप्तनें वैशेषिक मत चलाया, जो कि ब्राह्मण लो-गोमें नवीन न्याय मत करके प्रसीद्ध है, यह नहि समजा. इति षष्ठो निन्हवः,

श्री महावीरके निर्वाण पीछे जब ५८५ वर्ष गये तब गोष्ठमा-हिल नामा सातमा निन्हव हुआ. इसनें दो बातां अज्ञिमानसें नहि मानी. एक तो जीवके कर्म आत्माके उपरलेही प्रदेशोंके साथ बंध होते है, और दुसरा, प्रत्याख्यानमें कालकी मर्यादा नहि करनी. यह नहि समजा. इति सप्तमो निन्हवः

इन सातोका विशेष स्वरूप देखना होवे तो विशेषावश्यक-की टीका देख लेनी.

श्री महावीरके निर्वाण पीछे जब ६०९ वर्ष गये तब आठमा महानिन्हव, महाविसंवादी शिवभूति बोटिक हुआ. तिसकी उत्पत्ति ऐसी है.

रथवीरपुर नगरके राजाका शिवभूति नामा बडा योद्धा सेवक था. राजाको बडा वल्लभ था. एक दिन अपनी स्त्रीसें गुस्से हो कर, और राजाको विना पुछे श्रीकृष्णसूरि आचार्यके पास दीक्षा ले लीनी, तिहांसे अन्यत्र विहार कर गया. कालांतरमें फिरकर तिसी नगरमें गुरुके साथ आया, तब राजानें अपने पास बुलाया. दर्शन किया, और एक रत्नकंबल तिसको दीया, तब तिसनें गुरुको दिखलाया. गुरुने कहा, इतने मोलका वस्त्र साधुको रखना योग्य नहि, जला अब तुं इसको ओढ ले, तब तिसने तिस रत्नकंबलको बांधके रखे लिया; जब कोइ पास न होवे तब तिस रत्नकंबलको खोलके देख लेता था, ममत्वसें खुशी मानता था. एक दिन गुरुने देखा तब विचाराकि इसको रत्नकंबल पर ममत्व हो गया है, तब गुरुने तिसका विना पुछे तिस कंबलके टुकडे करके पग लुंछनेको साधुओंको दे दिये. जब शिवभूतिनें कंबलके टुकडे देखे तब बहुत क्रोधमें आया, परंतु गुरुसेंसें कुछ जोर न चला. एक दिन श्रीकृष्णसूरि आचार्यनें जिनकल्पका वर्णन किया यथा जिनकल्पी मुनि आठ तरेंके होते है तिनमेंसें सर्वोत्कृष्ट जिन कल्पीको दो उपकरण होते है. रजोहरण १ मुखवस्त्रिका २ तब शिवभूति सुनके बोला के जिनकल्पीका मार्ग आप क्यों नहि पालते हो? तब श्री कृष्णसूरिनें कहा—श्रीजंबूस्वामिके निर्वाण पीछे भरतखंडमें दस बोल व्यवच्छेद हो गये है—

यथाख्यात चारित्र १ सूक्ष्मसंपराय चारित्र २ परिहारविशुद्धि चारित्र ३ परमावधि ज्ञान ४ मनःपर्याय ज्ञान ५ केवल-

ज्ञान ६ जिनकल्प ७ पुलाक लब्धि ८ आहारक लब्धि ९ मुक्ति होना १०.

इस वास्ते जिनकल्प इस कालमें व्यवच्छेद है. तव शिवभूति बोला तुम कायर हो, मैं जिनकल्प पालुंगा. गुरुनें बहुत समजाया, सो विशेषावश्यकसें जान लेना. तब शिवभूति सर्व वस्त्र छोडके नग्न हो गया. तब तिस शिवभूतिकी बहिन उत्तरा नामे थी, तिसनेंभी भाइकी देखा देख वस्त्र फेंक दीए, और नग्न हो गइ. जब नगरमें भिक्षाको आइ तब वेश्याने झरोखेसें उसके उपर एक वस्त्र ऐसा गेरा, जिस्सें उसका नग्नपणा ढांका गया. तब भाइको कहने लगी कि मुजको देवांगनानें वस्त्र दिया है. जब भाइकोंभी नग्न फिरती बुरी लगी, तब कहने लगा तुं वस्त्र रख ले, तेरेको (स्त्रीको) मुक्ति नहि. तिस शिवभूतिको दो चेले हुए, कौडिन्य. १ कोष्टवीर. २ तब तिनके चेले भूतिबलि और पुष्पदंतनें श्रीमहावीरसें ६८३ वर्ष पीछे ज्येष्ट सुदि ५ के दिन तीन शास्त्र रचे. धवलनामा ग्रंथ ७०००० सित्तेर हजार श्लोक प्रमाण, जयधवल नामा ग्रंथ ६०००० साठ हजार श्लोक प्रमाण, महाधवल नामा ग्रंथ ४०००० चालीस हजार श्लोक प्रमाण. ये तीनों ग्रंथ कर्णाटक देशकी लिपीमें लिख गये. और शिवभूतिके नग्न साधु बहुलताइसें कर्णाटक देशको तर्फ फिरते है. क्योंकि दक्षिण देशमें शीत थोडा पडता है. जब कालांतर पाके मतकी वृद्धि हो गइ तब भगवंतसें १००० हजार वर्ष पीछे इस मतके धारक आचार्योंके चार नाम रखे. नंदी, सेन, देव, सिंह जैसे पद्म नंदी १ जिनसेन २ योगींद्र देव ३ विजयसिंह ४ इनके लगभग कुंदकुंद, नेमचंद्र, विद्यानंदी, वसुनंदी आदि आचार्यो जब हुए तब तीनोंने श्वेतांबरकी हीनता करने वास्ते मुनिके आचार व्य-

वहारके स्वकपोलकल्पित अनेक ग्रंथ बनाये. जिस्सें श्वेतांबरोकों कोइन्नी साधु न माने. बहुत कठिन वृत्ति कथन करी. परतुं यह नहि समजके परोशीके कुशौन करनेंको अपना नाक कटवाना अच्छा नहि. दिगंबरोनें कठिन वृति कथन करके श्वेतांबरोकी निंदा तो करी, परंतु अपने मतका साधुओका सत्यानाश कर डाला. ऐसी वृत्ति पालनेवाला नरतखंममे इस पंचम कालमें हो नहि शकता है. तथा एक ओर मूर्खता करी, जो वृत्ति चतुर्थ कालके वज्रऋषन्न संहननवालोंके वास्ते थी, सोइ वृत्ति पंचम कालके सेवार्त्त संहननवालोके वास्ते लिख मारी. जब दिगंबरोमें कशाय नत्पन्न नइ तब इनके चार संघ नये. काष्टासंघ १ मूल संघ २ माथुर संघ ३ गोप्य संघ ४. चमरी गायके वालोकी पीछी काष्ठा संघमे रखते है, मूल संघमें मोरपीछी रखते है, माथुर संघमें पीछी रखते नहि है, ओर गोप्य संघ मोरपीछी रखते है. गोप्य संघ स्त्रीकोन्नी मोक्ष करते है, शेष तीन नहि करते हैं गोप्य वंदना करने वालेको धर्मलान्न कहते है, शेषतीन धर्मवृद्धि कहते है. अब इस कालमें इस मतके वीश पंथी, तेरापंथी, गुमानपंथी इत्यादि नेद हो रहे है. तीनमें वीशपंथी पुराने है. शेष दोनो नवीन है. इति अष्टमो निन्हवः

ढुंढकमतकी उत्पत्ति

इस पीछे संवत् ११४९ में पुनमीआ संवत् १२१३ में अचलीआ, संवत् १२३६ में साढपुनमीआ, संवत् १२६० में आगमीआ, संवत् १२०४ में खरतर, संवत् १६३२ में पासचंद हुआ. इनके वेषमें विशेष फर्क नहि है. जिन प्रतिमाकी पूजामेंन्नी फर्क नहि है, किंतु किसी वातकी श्रद्धामें फरक है. सो खेंचाताम नहि करता सो अच्छा है. इनके शिवाय लुंपक और ढुंढक तथा तेरापंथी ढुंढक ये तीनो पंथ गृहस्थके चलाये है.

इनके न तो देव है, और न गुरु है. बहुती वातां इनके मतोंमें स्वकपोलकल्पित है. इनका वेषन्नी जैनमतका नहि है, इनकी उत्पत्ति ऐसी है.

गुजरात देशके अहमदावाद नगरमें एक लौंका नामका लिखारी यतिके उपाश्रयमें पुस्तक लिखके अजीविका चलाता था. एक दिन उसके मनमें ऐसी बेइमानी आइ जो एक पुस्तकके सात पाना बिचमेंसें लिखने छोड दीए, जब पुस्तकके मालिकने पुस्तक अधूरा देखा तब लुंके लिखारीकी बहुत न्नंमी करी और उपाश्रयमेंसें निकाल दिया, और सबको कह दिया कि इस बेइमानके पास कोइन्नी पुस्तक न लिखावे. तब लुंका आजीविका न्नंग होनेसें बहुत दुःखी हो गया. और जैनमतका बहुत द्वेषी बन गया. परंतु अहमदावादमें तो लुंकेका जोर चला नहि, तब तहांसें ४५ कोस पर लिंबमी गाम है वहां गया. तहां लुंकेका संबंधी लखमसी वाणिया राज्यका कारन्नारी था. तिसको जाके कहा कि न्नगवंतका धर्म लुप्त हो गया है; मैंनें अहमदावादमें सच्चा उपदेश करा था. परंतु लोकोंनें मुजको मारपीटके निकाल दिया. जेकर तुम मेरी सहाय करो तो मैं सच्चे धर्मकी प्ररूपणा करुं. तब लखमसीनें कहा तुं लिंबडीके राज्यमें बेधडक तेरे सच्चे धर्मकी प्ररूपणा कर. तेरे खानपानकी खबर मैं रखुंगा. तब लुंकेनें सवत् १५०७ में जैन मार्गकी निंदा करणी शुरु करी. परंतु २६ वर्ष तक किसीनें इनका उपदेश नहिं माना. पीछे संवत १५३४ मं अकलका अंधा न्नूणा नामक वाणिया लुंकेको मिला, तिसनें लुंकेका उपदेश माना. लुंकेके कहनेसें विना गुरुके दिये वेष पहना और मूढ लोगांकों जैन मार्गसे भ्रष्ट करना शुरू किया. लोंकेनें एकत्रीश शास्त्र सच्चे मानें, और व्यवहार सूत्र सच्चा

नहि माना, और एकत्रीस सूत्रोंमें जहां जहां जिनप्रतिमाका अधिकार था तहां तहां मन कल्पित अर्थ कहने लगा. इस तरें कितनेक लोगोंकों जैन मार्गसें भ्रष्ट करा. लूणेका शिष्य संवत १५६८ में रूखजी हुआ. तिसका शिष्य संवत् १६ ६ में वरसिंह हुआ. तिसका शिष्य संवत् १६४९ में महा सुदी १३ गुरूवार प्रहर दिन चडे जशवंत हुआ. इसके पीछे संवत् १७०९ मां बजरंगजी लुंपकाचार्य हुआ. तिसके पीछे सुरतके वासी वोहोरा वीरजिके बेटी फुलांबाइकी गोदी लीए बेटे लवजी नामकनें दिक्षा लिनी. दीक्षा लिया पीछे जब दो वर्ष हुए तब दस वैकालिकका टबा पढा. तब गुरुको कहने लगा तुम साधुके आचारसें भ्रष्ट हो इसी तरे कहनेसें गुरुसें लडाइ हुइ, तब लुंपक मत और गुरुकुं वोसरा्या. और रीष थोभण और सखीओजीकों वहकाके अपने साथ लेके स्वयमेव दीक्षा लिनी, और मुहडे पाटी बांधी. इसका चेला सोमजी तथा कानजी हुए, और लुंपकमति कुंवरजीके चेले धर्मसी, श्रीपाल, अमीपालनेंभी गुरुको छोडके छोडके स्वयमेव दीक्षा लिनी. तिनमें धर्मसीनें अष्ठ कोटी पच्चखाणका पंथ चलाया सो गुजरात देशमें प्रसिद्ध है. और लवजीके चेले कानजीके पास गुजरातका एक धर्मदास छीपी नामक दीक्षा लेनेकुं आया, परंतु कानजीका आचार उसनें भ्रष्ट जाना. इस वास्ते मुहके पाटी बांधके वोभी साधु बन गया. इनके रहनेका मकान ढुंढा अर्थात् फुटा हुआ था इस वास्ते लोकने ढुंढक नाम दिया. धर्मदास छीपीका चेला धनाजी हुआ. तिसका चेला भूधरजी हुआ, तिसके चेले रघुनाथ, जैमलजी, गुमानजी हुए. इनका परिवार मारवाडमें है. रघुनाथके चेले भीषमनें तेरापंथी मुहबंधेका मत चलाया लवजिका चेला सोमजी, तिसका चेला हरिदास, तिसका चेला वृंदावन, तिसका चेला भवानीदास, तिसका चेला मलुकचंद, ति-

सका चेला महासिंह, तिसका चेला खुशालराय, तिसका चेला जजमल, तिसका चेला रामलाल, तिसका चेला अमरसिंह, इसके चेले पंजाब देशमें मुह बांधी फिरते है. और कानजीके चेले मालवा और गुजरातमें मुह बांधी फिरते है. और धर्मदास ठीपीके चेले गुजरात, मालवा और मारवाममें मुंह बांधी फिरते है. इति प्रवेशिका.

ऐसे कुमाताओके मतोके आग्रहसें दूर होकर हेयोपादेयादि पदार्थ समूहके परिज्ञानमें जीवको प्रवीण होना चाहिये, और जन्म, जरा, मरण, रोग, शोकादिकों करके पीमितको स्वर्ग मोक्षादि सुख संपदके संपादन करणेमें अवंध्य कारण ऐसा धर्मरत्न अंगीकार करणा उचित है, क्योंकि इस अनादि अनंत संसार समुद्रमें अतिशय करके भ्रमण करणेवाले जीवांको प्रथम तो मानुष्य जन्म, आर्यदेश, उत्तम कुल, जाति, स्वरूप, आयु पंचेन्द्रियादि सामग्री संयुक्त पावणा दुर्लज है. तहांजी मानुष्यपणेमें अनर्थका हरणहार सत्धर्म पावणा अति दुर्लज है. जैसे पुण्यहीन पुरुषको चिंतामणि रत्न मिलना दुर्लज है तैसें एकवीश गुण करी रहित जीवको सर्वज्ञ प्ररूपित सत्धर्म मिलना दुर्लज है.

इस वास्ते प्रथम तिन एकवीश गुणांका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते है, क्योंकि प्रथम जव्य जीवांको अपणेमें धर्मी होनेकी योग्यता उत्पन्न करनी चाहिये. जेकर प्रथम योग्यता उत्पन्न न करे तबतो धर्मकी प्राप्तिजी प्रथम न होवे. जैसे अयोग्य जूमिमें बीज बोया निष्फल होता है तथा जैसे नींव अर्थात् पाया दृढ किया विना जो महा प्रसाद बनाना चाहता है सो जबतक पाया दृढ नहि करता है तब तक विशिष्ट प्रासाद

एकवीश गुणका स्वरूप.

स्थित नहि हो शकता है. ऐसेही योग्यता विना गृहस्थ और साधुका धर्मजी प्राप्त नहि होता है. हम देखते और सुनते है, बहुत मतोवाले बहुते जीवांको अपने मतमें लाने वास्ते और जातिसें भ्रष्ट करनें वास्ते अपना खाना खिला देते है, अपने मतमें और अपनी जातिमें दाखल कर देते है. जब वे उनके मतमें मिलते है तब बेधम्क बंडुके लेकर जंगलोमेंसें जानवर मारकर खाने लगते है, और अंग्रेजो सरिखा वेष पेहनके ऐसे घमंडसे चलते है कि जूमिकोजी धम्धमा देते है, और मन चाहेसो बकवाद करते है. बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्माका किंचित् स्वरूपजी नहि जानते है. और वेदांति कितनेक जीवोकी एसी बुद्धि बिगाम्ते है. कि वे व्यवहार सत् कर्मोसें भ्रष्ट हो जाते है. और कितनेक मतवाले स्त्रीका जोग, मांस खाना, बदफैली करणी दुसरे मतवालोको कतल करणा, उनके पुस्तकोको जला देना उनके मंदिर, मूर्ति तोम् फोम् अपने मतका स्थान बनाना, इत्यादि काम करके अपने आपको स्वर्ग जानेवाला मानना यही धर्म मानते है. परंतु हम सब मतवालोंसे नम्रता पूर्वक विनती करते है कि सर्व मतवाले अपनी जाति, अपने मतमें कहे बुरे कामोको छोम्के अपने आपको योग्यता प्रगट करी धर्मके अधिकारी बनावे, और सर्व पशु पक्षीओ और मनुष्यो उपर मैत्रीजाव करे और देवगुरु धर्मकी परीक्षा करे तो यथार्थ धर्मकी प्राप्ति होवे. इस वास्ते हम इहां प्रथम योग्यताका स्वरुप लिखते है.

प्रथम इक्कीस गुण जिस जीवमें होवे अथवा प्राये नवीन उपार्जन करे तिस जीवमें उत्कृष्ट योग्यता जाननी. और थोडेसें थोम्े इक्कीस गुणोंसे चाहो कोइ दस गुण जीवमें होवे तिसको जघन्य योग्यतावाला जानना. ११–१२–१३—१४—१५—१६–

१७—१८–१९–२० शेष गुणवालेको मध्यम योग्यतावाला जानना. तीन इक्कीस गुणमेंसें जिसमें दसगुणांसें न्यून गुण होवे वो जीव धर्मकी योग्यतासें रहित जानना. वे इक्कीस गुण ये है.

अक्षुद्र १ रूपवान् २ प्रकृति सौम्य ३ लोकप्रिय ४ अक्रूरचित्त ५ न्नीरु ६ अशठ ७ सुदाक्षिण्य ८ लज्जालु ९ दयालु १० मध्यस्थ सोमदृष्टि ११ गुणरागी १२ सत्कथ १३ सुपक्षयुक्त १४ सुदीर्घदर्शी १५ विशेषज्ञ १६ वृद्धानुग १७ विनीत १८ कृतज्ञ १९ परहितार्थकारी २० लब्धलक्ष्य २१. इनका किंचित् मात्र खुलासा लिखते है.

अक्षुद्र—यद्यपि क्षुद्र शब्द तुच्छ, क्रूर, दरिद्र, लघु, प्रमुख अर्थोमें वर्तते है तोन्नी इहां क्षुद्रको अगंन्नीर कहते है. तुच्छ बुद्धि, उत्तान मति, अनिपुण बुद्धि; ये इस अगंन्नीरपणेका पर्याय नाम है. अगंन्नीर पुरुष धर्म नहि आराध शकता है. न्नीमवत् क्योंकि धर्म जो हे सो सूक्ष्म बुद्धिसें साध्या जाता है, और तुच्छ बुद्धिसें धर्मका घात हो जाता है. इस वास्ते अक्षुद्र पुरुष सूक्ष्मदर्शी, अच्छीतरे विचारके कामका करणेवाला इहां धर्म ग्रहण करणे योग्य होता है, सोमवत्. न्नीम सोमकी कथा धर्मरत्न शास्त्रसे जाननी सर्व दृष्टांत तहांसे जानने. इहां निःकेवल गुण और नाम मात्र लिखेंगे. इति प्रथमो गुणः

दुसरे रूपवान् गुणका स्वरूप लिखते है.

संपूर्ण होवे अंगोपांग—तहां अंग, शिर, उर, उदर प्रमुख है और उपांग अंगुलि आदिक है. ये पूर्वोक्त अंगोपांग जिसके संपूर्ण होवे और खंडित न होवे वो रूपवान् कहे जाता है. पांचो इंद्रिय सुंदर होवे. काणां, कोकर, बहिरा, गुंगादि न होवे और शोन्ननीक संहनन अर्थात् शरीर सामर्थ्यवाला जिसका होवे वो

रूपवान् कहे जाते है. सामर्थ्य संहनन वाला तप संयमादि अनु-ष्ठान करनेमें शक्तिमान होता है. पूर्वोक्त रूपवान् धर्म करणेको समर्थ होता है, सुजातवत्. जेकर यथोक्त रूपवान् न होवे तो प्राये सत् गुणका भागी नहि होता है. यथा " विषमसमैर्विषम समा, विषमैर्विषमाः समैः समाचाराः । करचरणदंतनासिका, वक्त्रोष्ठनिरीक्षणैः पुरुषाः ॥ १ ॥ भावार्थ–जिस पुरुषके हाथ, पग-दांत, नासिका, मुख, होठ, आंख वांके टेढे होवे वे पुरुष कपटी धूर्त्त, वक्राचारी होते है. और ये पूर्वोक्त हाथादि सम–सूधे सुंदर होवे वे पुरुष सरलचारी और धर्मके योग्य होते है. यह बहुलता-का कथन है, तथा आचारांगकी टीकामेंभी कहा है कि " यत्रा-कृतिस्तत्र गुणा वसन्ति ". अर्थात् जहां सुंदर रूप होवे तहां गुण वास करते है. यह गुण तो पूर्व जन्म के पुण्योदयसें होता है विवेक विलासमें श्री जिनदत्तसूरिजी लीखते है, जिसका हस्त रक्त होवे सो धनवंत होवे, और नीला होवे सो मद्यपीने वाला होवे, और पीला होवे सो परस्त्रीगामी होवे, और काला होवे सो निर्धन होवे, और जिसका नख श्वेत होवे सो यति होवे, हाड सरीखे नख होवे सो निर्धन होवें, पीले नख होवे सो रोगी होवे फुल सरीखे नख होवे सो दुष्ट होवे, व्याघ्र सरीखे नख होवे सो क्रूर होवे. इस वास्ते रूपवानही धर्मका अधिकारी है. इति स्व-रूपवान् द्वितीयो गुणः.

प्रकृति सौम्य नामा तिसरा गुण कहते है. प्रकृति अर्थात् स्वभावही परंतु कृत्रिम नहि है सौम्य स्वभाव जिसका सो अभि-रामणी, विश्वसनीय, सुरति रूपवाला होवे, और पापकर्म, आ-क्रोशवध, हिंसा चोरी आदिमें न प्रवर्ते, एतावता निर्वाह होते हुए पापमें न प्रवर्त्ते, सुखे क्लेशके विना आराधने योग्य होवे और अ-न्य जीवांको प्रशमका कारण होवे, विजय श्रेष्टिवत्. इस गुण

वालेकी समज और बुद्धिज्ञी ऐसी होती है. क्षमा सर्व सुखोंका मूल है, और कोप सर्व दुःखका मूल है, और विनय सर्व गुणोंका मूल है; और मान सर्व अनर्थोका मूल है. जैसे सर्व स्त्रीयोंमें अर्हंतकी माता प्रधान है, मणीओमें जैसें चिंतामणि प्रधान है, लताओमें जैसें कल्पलता प्रधान है, तैसें सर्व गुणोंमें क्षमा प्रधान है. क्षमा धारण करी परिसह और कषायको जीती अनंत जीव आदि अनंत, परम पदको प्राप्त हुए है. इस हेतुसें पुरुषको क्षमावान् होना चाहिये. और क्षमावाला ही पुरुष प्रकृति सौम्य गुणवाला होता है, और ऐंसें गुणवानकी संगतसें अन्य जीवज्ञी प्रशम गुणवान् हो शकते है. यथा—

संतप्तायासि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वातौ सागरशुक्तिसंपुटगतं तज्जायते मौक्तिकं,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥१ ॥

इस वास्ते पुरुषको प्रकृति सौम्य होना चाहिये इति तृतीयो गुणः

लोकप्रिय गुणका स्वरूप लिखता है.

इस लोक विरुद्ध १ परलोक विरुद्ध २ उज्जय लोक विरुद्ध३ ये तीनो वर्जे. तीनमें इह लोक विरुद्ध नीचे मुजब है.

परकी निंदा करणी, विशेष करके गुणवंतकी निंदा करणी सरलकी और धर्मवालेकी हांसि करणी, बहुत लोकोके पूजनीककी ईर्ष्या करणी, बहुत लोगोका विरोधीकी साथ मित्रता करणी, देशके सदाचारका उल्लंघन करणा, निषिद्ध वस्तुका ज्ञोग करणा, दाताकी निंदा करणी, जले पुरुषको कष्ट पमे तो हर्ष मानना, जते

सामर्थ्य अच्छे पुरुषको संकटमें धर्मे सहाय न करणा; इत्यादि इह लोक विरुद्ध धर्मका अधिकारी वर्जे.

परलोक विरुद्ध यह है; खर कर्मादि खेती करावणी, कोटवाल पणा, महसुलका ठेका लेना, गामका ठेका लेना, कोयला कराय वेचना, वन कटाय वेचना, इत्यादि महा हिंसक काम विरति नहि तोभी सुकृति न करे. ये काम यद्यपि इस लोकसें विरुद्ध नहि तोभी परलोकमें अच्छी गतिके नाशक होनेसें परलोक विरुद्ध है.

उभय लोक विरुद्ध यह है; जुआ खेलनादि, तद्यथा. " द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या पापर्द्धि चौर्ये परदारसेवा । एतानि सप्तव्यसनानि लोके, पापाधिके पुंसि सदा भवन्ति " ॥१॥ इहैव निंद्यते शिष्टैर्व्यसनासक्तमानसः, मृतस्तु दुर्गतिं याति, गतत्राणो नराधमः ॥ २ ॥ अर्थ—प्रथम, जुएका खेलना बमा पाप है. इस लोकमें जुवारियेंकी इज्जत नहि है. जुआ खेलनेसें दीवालीये हो जाते है, राजे राज्य हार जाते है, चोरी करते है, वेश्या और परस्त्रीगमन करते है, बालक बच्चेको मारके उसका जवेरात उतार लेते है, मांस खाते है, और मद्य पीते है, लुच्चे और बदमासोकी मंमलीमें रहते है, धर्म कर्मसें भ्रष्ट हो जाते है, मरके नरकादि गतिमें उत्पन्न होते है, इस वास्ते जुएका खेलना उभय लोक विरुद्ध है. दुसरा. मांसका खानाभी उभय लोक विरुद्ध है, क्योंकि मांस खानेसें दया नष्ट हो जाती है. जो अच्छी पशु, पक्षी देखनेमें आता है तिसहीको खानेकी इच्छा होती है, मांस खानेवालेका हृदय ऐसा कठोर हो जाता है कि मनुष्य मारणेमंभी फिरक नहि करता है. जितने मांसाहारी है वे सर्व निर्दय है जैसे भील, कोली, मैणा, धांगम, भंगी, ढेड, चमार, वाघरी, मंघील, कंजर, वाघरी

प्रमुख निर्दय है सो मांस खानेसें है, और जो मांसाहारी नहि है वे सर्व प्राये दयावान् है और नरम हृदय वाले है, यह बात हम प्रत्यक्ष देखते है. जगतमें सर्वसें गरीब जानवर जेम अर्थात् गाडर घेटा देखनेमें आता है. एसेका जो मांस जक्षण करे तो खुंखार अर्थात कठीन हिंसक स्वजाववाला बन जाता है, और जो आगे विना गुनाइ हजारो लाखो वालबच्चे स्त्री पुरुषांको कतल कर गये है, वे सर्व मांसके खानेकी निर्दयतासें एसे काम करते थे, जेकर कोई मांसाहारी मनुष्यमात्रको दयावालेजी है तोजी कृपण, अनाथ, दीन पशु पक्षीओकी दया तो नही है. बिचारे क्या करे उनके मत चलाने वालोनेंही मांस खाया और खानेकी आज्ञा करी है. वेद बनानेवाले और कितनेक स्मृति बनानेवाले मांसाहारी थे और मांस खानेकी आज्ञा दे गये है. इसका तमाम वृत्तांत प्रथम खंडमें लिख आये है. मनु याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकारक तो बेधमक लिख गये है.

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥१॥

मांस जक्षणमें दोष नहि है और मद्य तथा मैथुनमें बी दोष नहि है. वे तो प्राणीओनी प्रवृत्ति है सो महाफलवाली है.

यद्यपि जारत, जागवतादि ग्रंथोमें मांस जक्षण निषेध करा है, तोजी वेद स्मृतिका कहना पुराना है, और जारत, जागवत दया धर्मकी प्रबलतामें बने हुए है. इस वास्ते इनमें मांसका निषेध है और वैष्णवादि मतवाले जो मांस नहि खाते है वेजी दया धर्मकाही प्रजाव है बाकी शेष मतोवालोके देशमें दया धर्म नहि प्रवृत्त हुआ है. इस वास्ते सर्व मांसाहारी है. जो जो मांसाहारी है वे प्राये कठीण हृदयवाले है. इस वास्ते मांसका खाना

इह लोक विरुद्ध है, और परलोकमें नरकादि गतिका देनेवाला है. यदुक्तं स्थानांग सिद्धांते–" चजहिंगणेहिं जीवा नेरया जत्ताए कम्मंप करें ति तं जहा " इत्यादि. इहां तिसरे पदमें ' कुणिमा हारेणं ' अर्थात् मांस खाने करके नरकायु जपार्जन करता है तथा " मांसाहारिणः कुतो दया. " इस वास्ते मांसका खाना जन्नय लोक विरुद्ध है.

मदिराका पान करना यहन्नी जन्नय लोक विरुद्ध है. मदिरा पीनेसें बुद्धि ज्रष्ट हो जाती है. मद्य पीनेवालेके मुहमें कुत्ते मुतते है. मदिरा पीनेवाला माता, बहिन, बेटीसेंन्नी कुकर्म करता है. ऐसी कौनसी बुरी बात है जो मदिरा पीनेवाला न करे. मदिरा पीनेवाला मरके नरक गतिमें जाता है. इस वास्ते मद्य पीना जन्नय लोक विरुद्ध है.

वेश्यागमन करनेवालेकी कोइन्नी जाति नहि; न्नंगी, चमार, कोली मुसलमीन आदि सर्वकी जुठ खानेवाला होता है. इस वास्ते जनकी कोइन्नी जाति नहि. वेश्यागमनसें धनका नाश होता है, बुद्धि ज्रष्ट होती है, आबरु नहि रहती है, गरमीके रोगसें शरीर गल जाता है, तिस्से कुष्ठ, न्नगंदर, जलोदरादि महा न्नयंकर रोग हो जाता है तथा परलोकमें दुर्गति होती है. इस वास्ते वेश्यागमन करना जन्नय लोक विरुद्ध है.

पापर्द्धि अर्थात् शिकार करना यहन्नी जन्नय लोक विरुद्ध है, क्योंकि कठोर हृदय विना शिकार नहि हो शकता है. शिकारीको दया नहि, न्याय नहि, धर्म नहि और परलोकमें जनकी नरक गति होती है, इस वास्ते शिकार करना जन्नय लोक विरुद्ध है.

चोरी और परस्त्रीगमन ये दोनो तो सर्व लोकोमें बुरे काम

गिने जाते है, और दोनोंसें परलोकमें दुर्गति होती है, इस वास्ते उन्नय लोक विरुद्ध है.

पूर्वोक्त सातो कुव्यसनका सेवनेवाला इस लोकसें शिष्ट जनोका निंदनीय होता है, और परलोकमें दुर्गति प्राप्त करता है, इस वास्ते जो पुरुष सातो कुव्यसनका त्याग करे सो धर्मका अधिकारी होता है.

दान, विनय, शील इनो करके पूर्ण होवे. तिनमें दान देनेसें बहुते जीव वश हो जाता है. और दान देनेसें वैर, विरोध दूर हो जाता है. शत्रुन्नी दान देनेसें न्नाइ समान हो जाता है इस वास्ते दान निरंतर देना योग्य है. विनयवान् सर्वको प्रिय लगता है, और शुद्ध शीलवान् इस लोकमें यश कीर्त्ति पाता है और सर्व जनाको वल्लन्न होता है, और परलोकमें सुगति प्राप्त करता है. इस वास्ते जो पुरुष सात व्यसन त्यागे और दानादि गुणों करी संयुक्त होवे सो लोकप्रिय होवे, विनयंधरवत् इति चतुर्थो गुणः

अक्रूरचित्त नामा पांचमा गुण लिखता है. क्रूर नाम क्लिष्ट स्वन्नावका है, अर्थात् मत्सर, ईर्ष्यादि करके दूषित परिणाम वालेका है. सोन्नी धर्मका आराधनमें समर्थ नहि होता है, समर कुमारवत्, इस वास्ते धर्मके योग्य नहि. और जो क्रूर नहि सो धर्मके योग्य है, कीर्तिचंद्र नृपवत्. इति पंचमो गुणः.

न्नीरु नामा छठा गुण लिखते है. इस लोकमें जो राजनिग्रह दंडादि कष्ट है और परलोकमें जो नरकगति गमना कष्ट है, तिनको न्नावि होतहार जानके जो पुरुष हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रहादि पापोंसें त्रास पामे, और उनमें न प्रवर्त्ते सो धर्मके योग्य होता है, विमलवत्. इति षष्ठो गुणः.

अशठ नामा सातमा गुण लिखते है. अशठ उनको कहते है जो परको ठगे नहि. इस वास्ते अशठ, अमायी, विश्वासका स्थान होता है, और जो शठ, मायाशील होता है यद्यपि किंचित् पाप न करे सोन्नी सर्पकी तरें आत्मदोष करी दूषित बनके विश्वास योग्य नहि होता है. इस वास्ते अशठ प्रसंशनीय होता है..–" यथा चितं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः, धन्यास्ते त्रितये येषां विसंवादो न विद्यते " ॥ १ ॥ अर्थ—जेसा चित्त तैसा वचन और जैसा वचन ऐसी क्रिया. ए तिनमें जिसकु विसंवाद नहि है, सो पुरुष धन्य है.

ऐसा पुरुष धर्मानुष्टानमें प्रवर्त्तता है. तथा न्नावसारसद्भावसुंदर अपने चित्तके रंजन करनेवाले अनुष्ठानका कर्त्ता है. परंतु परके चित्तके रंजन करने वास्ते नहि करता है. क्योंकि स्व चित्तको रंजन करना बहुत कठिन है. तथा चोक्तं,

न्नूयांसो न्नूरिलोकस्य, चमत्कारकराः नराः । रंजयंति स्वचित्तं ये न्नूतले ते तु पंचषाः " ॥ १ ॥ तथा, कृत्रिमैर्डंबरैश्चित्तं शक्यंतोषयितुं परं । आत्मातुवास्तवैरेव हंत कं परितुष्यति ॥ २ ॥

अर्थ—दुसरा बोहोत लोकोकुं चमत्कार करनेवाला बहोत पुरुषो है. परंतु जे पुरुष पोताना मनकुं रंजन करे ऐसा पृथ्वीमें पांच छ पुरुष होता है. कत्रिम आडंबरोसें दुसरेकुं संतोष करना शक्य है. परंतु आत्माकुं कोण संतोष कर सक्ता है. इस वास्ते अशठही धर्मके योग्य होता है. सार्थवाहपुत्र चक्रदेववत्. इति सप्तमो गुणः.

सुदाक्षिण्य नामा आठमा गुण लिखते है. सुदाक्षिण्य पुरुष परोपकारमें प्रवर्त्ते, जब कोइ प्रार्थना करे तब तिसको हितकारी काम करे. न्नावार्थ यह है कि जो काम इस लोकमें और

परलोकमें हितकारी होवे तिसमेंही सो प्रवर्त्ते, परंतु पाप हेतु काममें न प्रवृत्त होवे. इस वास्तें सु अक्षर करके दाक्षिण्यको विशेषित करा है. इस गुणवाला कैसा होता है, अपणा कार्य गेरुके परोपकारमें प्रवर्त्तते है, इस हेतुसें ईसा पुरुष ग्राह्य वाक्य अर्थात् अनुलंघनीय आदेश होता है. ऐसे पुरुषके मनमें कदाचित् धर्म करणेकी इच्छा नहिन्नी होवे तोन्नी धर्मी पुरुषके कहनेसें धर्म सेवता है, क्षुल्लक कुमारवत्. इति अष्टमो गुणः.

नवमा लज्जालु गुणका स्वरुप लिखते है. लज्जावान् उसको कहते है जो अकार्य अर्थात् बुरा काम न करे, दूरही कुकर्मसें रहे, सो पुरुष धर्मका अधिकारी होता है. जो थोमान्नी अकार्य न करे, तथा चोक्तं, " अविगिरिवर गुरय डुरंत डुख, न्नारेण जंति पंचत्तं । न उणो कुणंमि कम्मं स पुरुसा जनका यव्वामिति. " न्नावार्थ—संन्नावना करते है कि सत्पुरुष मेरू समान पर्वतका न्नार करके मरण पामे परंतु नहि करने योग्य कार्य कदापि नकरे. सदाचार अर्थात शोन्ननिक व्यवहारको लज्जाका हेतु मानके स्नेह बालान्नियोगादिक करके अंगिकार करी अच्छी प्रतिज्ञाको गेमता है. क्योंकि प्रतिज्ञाका सेवना लज्जाका हेतु है, ऐसा तो न्नले कुलका उत्पन्न हुआ पुरुष जानता है, विजयकुमारवत् इति नवमो गुणः.

दयालु नामा दशमें गुणका वर्णन लिखते है. धर्मका मूल कारण दया अर्थात् प्राणिरक्षा है. यदुक्तं श्री आचारांग सूत्रे, " सेवेमि जे अइया, जे पडुपन्ना, जेय आगमिस्सा, अरहंता न्नगवंतो ते सव्वे एवमा इखवंति, एवं न्नासंति. एवं पन्नवंति, एवं परूवंति, सव्वे पाणा, सव्वे न्नूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, न हंतव्वा, न अज्जा वेयव्वा, नपरितावेयव्वा, न उद्वेयव्वा, एस धम्मे

सुद्दे, निइए सासए, समिच्च लोय खेयन्नेहिं पवेइए " इत्यादि.
न्नावार्थः—सुधर्मस्वामि जंबूस्वामिको कहते. हे शिष्य ! जैसें
मैनें न्नगवंत श्रीमहावीरजीके मुखारविंदसें सुना है तैसें में तु-
जको कहता हुं. न्नगवंतश्री महावीरनें कहा है कि अतीत काल-
में अनंते अर्हत न्नगवंत हो गया है और जो अर्हत न्नगवंत वर्त्त-
मान कालमें है और जो आगामि कालमें अनंत होवेंगे, तिन स-
र्वका यहि कहना हुआ है, तथा होवेगा कि सर्व प्राणी, बे इंझिय
तीनेंझीय, चतुरिंझीय, सर्वन्नूत वनस्पति, सर्व पंचेंझीयजीव, सर्व
सत्व अर्थात् षट्काय, पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय,
वनस्पतिकाय, त्रसकाय, इन षट्कायके जीवांको हनना नहि. तथा
इन जीवोंसे जोरावरीसें कोइ काम नही कराना. शारीरिक और
मानसिक पीमा करके उनको परितापना नहि करणी. यह
जीवअहिंसारूप शुद्ध धर्म है, नित्य है शाश्वता है, सर्व
लोकके पीमाकी जाननेवाला सर्वज्ञ अर्हत न्नगवंतनें कथन करा
है. तथा—

अहिंसैव परो धर्मः शेषास्तु व्रतविस्तराः।
अस्यास्तु परिरक्षार्थे पादपस्य यथावृतिः ॥ १ ॥

अर्थ—अहिंसाज परम धर्म है, शेष सर्वव्रत अहिंसाकी
रक्षाके वास्ते है. जैसा वृक्षकी रक्षाके वास्ते वाड होती है.

अर्थात् अहिंसाकी रक्षाके वास्ते शेष सर्व व्रत है. तथाच,
" अहिंसैषा मता मुख्या स्वर्गमोक्षप्रसाधिनी, अस्याः संरक्षणा-
र्थंच न्याय्यं सत्यादिपालनं "॥ १ ॥ इस वास्तेही जीवदया संयुक्त
सर्व विहार, आहार, तप, वैयावृत्यादि सदनुष्ठान सिद्ध है जि-
नेंइ मतमें वीतरागके कथन करे सिद्धांतमें श्री शय्यंन्नव
सूरि कहते है.

" जयंचरे जयंचिंठे जयंमासे जयंसए जयंजुंजंतो जा-संतो पावकम्मं नबंधइ " ॥ १ ॥ व्याख्या, ईर्यासमिति अर्थात् उपयोग सहित चार हाथ प्रमाण अगली जूमि देखे और जीवां-को बचाके पग धरी चले सो यतनासें चलना कहिये. हस्त प-गादिकके विक्षेप विना यतनासें खमा रहे. उपयोग पूर्वक यतना-सें बैठें. अकुंचन प्रसारणादि करे. जूमिका नेत्रोंसें देखके रजोह-रणादिसें प्रमार्जके पीछे शय्या करे. यतनासें सोवें. समाहित रा-त्रिमें प्रकाम अर्थात् अधिक शय्या वर्जे और चैत्यवंदन पूर्वक शरीर प्रतिलेखी सामायिकसूत्र, पोरसीसूत्र पठन करी सोवे यतनासें जोजन करे. ठ कारणसें जोजन करे. बहु सरस आहार न ले जोजन करे तब प्रतर सिंहादिककी तरें तरें जोजन करे. यतनासें बोले. साधु जाषासें, मृदु; कालप्राप्त, अकर्कश, अमर्म-वेधिनी जाषा बोले. इस हेतुसें पापकर्म ज्ञानावरणादि न बांधे. अन्योनें पण कहा है.

न सा दीक्षा नसा भिक्षा न तद्दानं न तत्तपः

न तद्ज्ञानं न तद्ध्यानं दया यत्र न विद्यते ॥१॥

अर्थ–जिसमें दया नहि है, सो दीक्षा, जिक्षा, दान, तप, ज्ञान और ध्यान, बराबर होताज नहि.

इस वास्ते धर्माधिकारमें दयालु, थोमाजी जीववधका, यशो धर सुरेंद्रदत्त महाराजाकी तरें दारुण विपाक जानना हूआ ति-नमें नहि प्रवृत्त होता है. सर्व मतावाले लोक दयाको अच्छी क-हते है परंतु दयाका यथार्थ स्वरूप जानना बहुत कठिन है. दोहा " दया दया मुखसें कहे, दया न हाट विकाय; जाति न जाने जीवकी, दया कहो किन ठाय. " ॥ १ ॥ कितनेक जोले जीव कहते है और उनके शास्त्रमेंजी वेसाही लिखा है कि एक मनुष्य

मात्रकी दया करनी चाहिये, क्योंकि मनुष्य विना जितने जीव है तिनकी आत्मा अविनाशी नहि है, और जितने जीव है वे सर्व मनुष्यके जोग वास्तेही ईश्वरनें रचे है. इसकों उत्तर,

हे जोले जीव! यह समज तुमारी ठीक नही क्योंकि मनुष्य विना अन्य जीवांकी आत्मा अविनाशी नहि; इस कहनेमें कोइजी प्रमाण नहि है. प्रत्यक्ष प्रमाणसें तो जैसा मनुष्यांको मरतां देखते है तैसे पशु पक्षीओकोंजी मरते देखते है, और अनुमानसें तो तब अविनाशी मनुष्यात्मा सिद्ध होवे जब मनुष्यात्माका कोइ ऐसा चिन्ह होवे और पशु आत्मामें न होवे, सो तो हे नहि. पशु पक्षीका आत्माजी अविनाशी है तिसकी सिद्धिमे अनुमान प्रमाण है, सो यह है. मनुष्यात्मासें जिन्न जितने आत्मा है यह पक्ष है; सर्व अविनाशी है यह साध्य है; आत्मत्व जातिवाले होनेसें यह हेतु है; मनुष्यात्मवत् यह दृष्टांत है; इस अनुमानसें पशुओका आत्माजी अविनाशी सिद्ध होता है. तथा जिस पदार्थका उपादान कारण नहि सो अविनाशी है, सो पशु पक्षीओका आत्माकाजी उपादान कारण नहि है इस वास्ते अविनाशी है, परंतु जो कोइ किसी शास्त्रमें पशु पक्षीओका आत्माकों विनाशी कह गया है सो मांस खानेकी लोलुपतासें, अविवेक बुद्धिके प्रजावसें उसने ऐसा मनमें समजा होगा कि मांस खानातो मेरेसें बुटता नहि है इस वास्ते जिसका मांस खानेमें आता है वे आत्मा विनाशी कहे तो ठीक, हमारा काम चलेगा, मांसजी खायगे और स्वर्गमेंजी जावेंगे. फिर ऐसे कुछ पंथको मांसाहारी, निर्दय, अनार्य जीव क्यों न अंगीकार करे इस वास्ते जो, मनुष्य विना अन्य सर्व जीवात्माको विनाशी मानते हैं वो निपुण और बुद्धिमान् नहि है. कितनेक कहते है के ईश्वरने सर्व

वस्तुओ मनुष्यके ज्ञोग वास्ते बनाइ है. प्रथम तो यह कहनाही मिथ्या है क्योंकि ईश्वर किसी प्रमाणसें इस जगतका रचनेवाला सिद्ध नहि होता है. ओ कथन जैनतत्वादर्शमें अच्छी तरेंसें लिखा है. जेकर विना प्रमाण मिथ्यात्वके उदयसें जगत्कर्त्ता माने और पूर्वोक्त कथन करे तब तिसको ऐसे कहना ठीक है. जब कोइ किसीकी माता, बहिन बेटीसें गमन करे, और अपनी माता, बहिन, बेटीसें गमन करै, माता, बहिन, बेटीके हरके ले जावे. किसीका धन चोरे, तब सरकारसे दंड और जगतमें अपयश और दंड क्यों पाता है? जेकर उसने अनीति और अगम्यगमन करा इस वास्ते वो दंड और अपयशके योग्य है तब तो अपराधी कहेगाकि मनुष्यके ज्ञोग करा है, मुजे दंड क्यों देते हो, जेकर ये स्त्रीओ मेरे ज्ञोग योग्य है तिनके वास्ते जो ईश्वरवें तुमको परवाना लिख दिया है सो मुजे दिखलाना चाहिये. इस वातका फिर उत्तर हो तो दीजिये.

इस वास्ते हम ज्ञोलें जीवांके वास्ते लिखते है, ऐसा मत मानोगे तो उज्ञय लोकसें ज्रष्ट, और अन्यायी बन जाओगे. इस वास्ते ऐसी दुर्गति त्यागके अर्हंत ज्ञाषित मतको स्वीकार करो जिस्सें तुमारी अंतर्दृष्टि उघडे, सत्यासत्यकी मालुम पडे.

तथा कितनेक कहते है के मनुष्यके ज्ञोग वास्ते सर्व वस्तु ईश्वरनें रची है, तो माकड और जुयां लीखां ये मनुष्यके शरीरको खाते है, और सिंह, व्याघ्र, बाज प्रमुख निःकेवल पशु पक्षीओकाही मांस खाते है, और सिंहादिक मनुष्यका ज्ञक्षण करते है, तथा समुद्रके मच्छ लाखों मच्छकोही खाके जीते है. तथा कितनेक पशु पक्षी, घास, पान, अन्नादि खाके जीते है तो फिर यह कहना, सर्व वस्तु परमेश्वरने मनुष्यके वास्तेही रची है

सो सप्रमाण नही है. जेकर कहै, सर्व वस्तु परंपरासें मनुष्यके भोगमें आती है, घासादि खानेसें दुध तथा मांसादि होते है, वे मनुष्यके भोगमें आता है. इस तरेतो सर्व वस्तु सिंह व्याघ्रादिकके भोग वास्ते ईश्वरने रची है यह भी सिद्ध होवेगा. तद्यथा– मनुष्यके वस्तुके भोगसें मांस रुधिरादिककी वृद्धि करता है, तिस मनुष्यके शरीरको माकड, जूं, लींख व्याघ्र सिंहादि भक्षण करते है. तबतो परंपरासें भोग्य होनेसें सर्व वस्तु परमेश्वरनें माकड, जूं, लिंख, सिंह व्याघ्रादि जीवोंके भोग वास्ते रचे सिद्ध होवेंगे. धन्य है यह समजको ! सर्व वस्तु मनुष्यके भोग वास्ते तथा अन्य जीवोके भोग वास्ते रची है ! ईश्वरनें नहि रचे है, किंतु जैसे जैसे जीवोनें पुण्य पापरूप कर्म करे है, तैसे तैसे अपने अपने निमित्तद्वारा सर्व जीवांको मिलते है. परतु ईश्वर परमात्मानें किसीके भोग वास्ते कोइ वस्तु नहि रची है.

हे भोले मनुष्यो ! तुम क्यों ईश्वरको कलंक देके नरकगामी बनते हो क्योंकि जब ईश्वर आदिमें एकको राजा, एकको रंक, एक सुखी, एक दुःखी, एक जन्मसेंही अन्धा, लंगडा, लुला, बहिरा, रोगी, अंगहीन, निर्धन, नीच कुलमें जन्म और जन्मसें मरण पर्यंत महा दुःखी रचे है और कितनेक पूर्वोक्तसें विपरीत रचे है. जेकर कहोगे, कर्मानुसार ईश्वर रचता है तबतो अनादि संसार अवश्य मानना पडेगा. जेकर कहोगे, ईश्वरकी जैसी इच्छा होती है तैसा रच देता है, तबतो ईश्वर अन्यायी, निर्दय, पक्षपाती; अज्ञानी, बखेडी, कुतूहली, असमंजसकारी, असुखी, बहुरंगी, व्यर्थ कार्यकारी, बालक्रीडा करनेवाला, रोगी, द्वेषी इत्यादि अनेक दूषणोंसें युक्त होवेंगे. और वे दूषणो ईश्वरमें मूर्ख-

को समज ज्त्पन्न करता है. फेरज्ञी मूढमति अपणेको ईश्वरका ज्ञक्त मानता है. यह ज्ञक्तपणा ऐसा है जैसे अपणे पिताके मुख ज्पर बैठी मक्षीकाके ज्मावने वास्ते पिताके मुख ज्पर बैठी मक्षीको जुता अर्थात् खासमा मारणा है. मूर्ख तो ज्ञक्ति करता है परंतु पिताका नुकसान अर्थात् बेइज्जत होती नहि देखता है. इस वास्ते जगत् प्रवाहसें अनादि है. और मनुष्य पशुआदिककी आत्माज्ञी अनादि है और अविनाशी है. कोइ किसीके खाने पीने वास्ते किसीनें नहि रचा है. अनादि कालसें पापी जीव, जीवांका मांस खाता आया है. और ई वर परमात्माका सदा यह ज्पदेश है कि हे जीव? जीव हिंसा, मृषावचन, चोरी, मैथुन, परिग्रह, मांसज्ञक्षण, मदिरापान, परस्त्री गमनादि पापकर्म मत कर. परंतु इस पापी जीवनें सत्य ईश्वरका ज्पदेश नही माना है. इस वास्ते नरकादि गतिओमें महा दुःख ज्ञोग रहा है. जैसे कोइ सच्चा वैद्य किसी रोगीको करुणासें कहे, तुं ये ये अपथ्य मत खा और यह औषधी खा जिस्से तुं निरोगी हो जावेगा. परंतु मूर्ख रोगी जेकर वैद्यका कहा न करे तो अवश्य दुःखी होवे. इसी तरें अर्हंत परमात्मा ईश्वरके कहे पापरूप अपथ्य न त्यागे और औषधी समान तप, संयम, शील, संतोषादी नहि धारे तो संसारमें दुःखी होवे. यहां कोइ कह शकता है कि वैद्यनें रोगीको दुःखी करा? नहि कह शकता है. इसी तरें परमेश्वरज्ञी किसीको दुःखी नहि करता है. परंतु जीव अपने कुकर्मोसें दुखी होता है. इस वास्ते अर्हंत परमेश्वरकी आज्ञासें सर्व जीवांकी हिंसा छोडके, मांसादि अज्ञक्ष्य और मदिरादि अपेय और चोरी. यारी आदि पाप कर्म छोडके हृदयमे दयालु गुण धारके सर्व जीवोसें मैत्रीज्ञाव कर जिस्सें धर्मका अ-

धिकारी हो.

पूर्वपक्ष—सर्व जीवांकी रक्षा करनेवाला और मांसका न खानेवाला हमको कोई नहि दिख पडता है क्योंकि,–" जले जीवाः स्थले जीवाः जीवा आकाशमालिनि । सर्वजीवाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसकः ॥ १ ॥ " अर्थ—जलमें, स्थलमें, आकाशमें सर्व लोक जीवां करके भरा है तो फिर आहार, निहार, पूजन, प्रतिलेखनादि करणेसें साधु अहिंसक क्योंकर हो शकता है ? अपितु नहि हो शकता है. ऐसा कोन जीव है जिसके हलने चलनेसें जीव हिंसा न होवे ? साधु लोकभी सचित्तादि पृथ्वी उपर चलते है, नदीमें उतरते है, वनस्पतिका संघट्ट करते है, निगोद अर्थात् शेवालके जीवांकी विराधना करते है, तथा विना उपयोग अनेक कीमा प्रमुख जीव मर जाते है, पूजना, प्रतिलेखना करते हुए वायुकायके जीव मरते है. इस वास्ते साधुभी अहिंसक नहि है तो फिर दुसरा, साधु विना, कोन अहिंसक है ?

उत्तरपक्ष—हे भोले जीव ! तुं हिंसा अहिंसाका स्वरूप नहि जानता है, इस वास्ते तेरे मनमें पूर्वोक्त अहिंसाकी बाबत कुछ कहि उठती है. प्रथम तेरेकों हिंसाका स्वरूप कहता हुं.

" प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा " इति तत्वार्थसूत्रम्.

अर्थ—प्रमादवाले जिसके मन वचन कायारूप योग है. जीवांको प्राण रहित करणा तिसका नाम हिंसा है. प्रमाद क्या वस्तु है ? मिथ्यात्त्व १ अविरति २ कषाय ३ योग ४ तथा मद्य १ विषय २ कषाय ३ इन सर्वको प्रमाद कहते है. ये प्रमाद जिसके मन, वचन, कायामें होवे तिन मन, वचन, कायाके योगांसें जो जीव मरे तीसका नाम हिंसा है. इस वास्ते सत् साधु अर्हंत भगवंतके आज्ञासें जो आहार, वि-

हारादि क्रिया करता है वो जेकर अप्रमत्तपणेसें करे तो तिसको हिंसक न कहिए, और जे साधु वीतरागकी आज्ञासें अप्रमत्त वर्त्तते है वे सर्व अहिंसक परम दयालु है. ऐसे मुनि तरण तारणवाले है.

पूर्वपक्षः—हम ऐसे कहते है कि सर्व जीव मांसाहारी है क्योंकि सर्व जीव अन्न, वनस्पति मट्टी, मांस प्रमुख खाते है वे सर्व, जीवाके शरीर खाते है. जे जीवांके शरीर है वे सर्व मांस है. इस बातको हम अनुमान प्रमाणसेंभी सिद्ध करते है.

भक्षणीयं भवेन्मांसं प्राण्यंगत्वेन हेतुना ।
ओदनादिवदित्येवं कश्चिदाहेति तार्किकः ॥ १ ॥

अर्थ—भात प्रमुखकी माफीक मांस भक्षण करने योग्य है. प्राणीका अंग होनेसें. इत्यादि.

उत्तरपक्षः—यह पूर्वोक्त कहना अयोग्य है क्योंकि त्रस जीवांका मांस अन्नकी तुल्य नहि हो शकता है. अन्न जलसें उत्पन्न होता है. अन्न अस्पष्ट चैतन्यवाले जीवांका शरीर है, और मांस स्पष्ट चैतन्यवाले जीवांका शरीर है. अन्नके जीव मरते हुए भासमान नहि देखनेमें आते है परंतु त्रस जीवोंको मारती वखत बहुत त्रास उत्पन्न होता है. हरेक दयालु जीवोका वो त्रास देखकर हृदय कंपायमान होता है. अन्न खानेवाला अत्यंत निर्दय नहि होता है. मांस खानेवाला अत्यंत निर्दय होता है. अन्नके खानेवालाकों कोइ कसाइ नहि कहते है. पंचेंद्रिय पशुओंको मारके खानेवालेकों लोकमेंभी कसाइ कहते है. इत्यादि अनेक युक्तिओसें अन्न खाना और मांस खाना तुल्य नहि हो शकता है. जेकर भोला जीव हठमें ऐसाही कहै, अन्नभी प्राणीका अंग है, और मांसभी प्राणीका अंग है, इस वास्ते दोनों

एक सरीखे है, तिसको हम कहते है. हे नोले प्राणी ! यह तेरा कहना लौकिक व्यवहारसेंनी विरुद्ध है. क्योंकि लौकिक व्यवहारमें प्राणी अंगकी तुल्यतासेंनी कितनीक वस्तुओ नहि मांस ऐसा एक सरीखे है, इसको हम कहते है. हे नोले प्राणी ! यह तेरा कहना लौकिक व्यवहारसेंनी विरुद्ध है. क्योंकि लौकिक व्यवहा-हारमें प्राणी अंगकी तुल्यतासेंनी कितनीक वस्तुओ नहि मांस ऐसा व्यवहार प्रवर्तते है. जैसे गौका दुध नक्ष्य और गौका रुधि-र अनक्ष्य, अपनी माताका दूध नक्ष्य और अपनी माताका रु-धिरादि अनक्ष्य है. तथा स्त्रीपणा करके समाननी है तोनी अ-पनी माता, बहिन, बेटी, प्रमुख अगम्य है, नार्यादि गम्य है. जेकर सर्व वस्तुओ सदृशही माने तब तो मनुष्य नहि किंतु पशु, कुत्ते, गर्दनादि समान है. प्रत्यक्षमेंनी देखते है कि जे कोइ राजे तथा बमे गवर्नर प्रमुखके शरीमें लाता दि मारे तो जीवसें जाये नहि तो सख्त बंदीखाना तो नोगे, और किसी कं-गाल गरिब मेहनती मजूर प्रमुखके शीरमें लात जूति मारे तो सरकार वैसा दंम नहि देती है. क्या इनके मनुष्य पणेमें कुच्छ फरक है ? मनुष्यपणेमेंतो कुछ फरक नहि, परंतु तिनके पुण्यांमें फरक है. अधिक पुण्यवानकी अविनय करे तो महा अपराध और दंमके योग्य होता है और हीन पुण्यवालेको जुता मारने सेंनी ऐसा नारी दंड योग्य नही होता है. इसी तरें पंचेंद्रिय पशु महा पुण्यवान् है, तिसको मारना और तिसका मांस नक्षण करना महा पाप है, और नरकगतिका देनेवाला है, और अन्नादि स्थावरोकी हिंसा और तिनके शरीरका नक्षण क-रणेमें महा पाप नहि है. इस वास्ते अन्नका खाना और मां-सका खाना सरीखा नहि है. शुष्क तर्क दृष्टिने जो मांस

34

खानेमें प्राणी अंग हेतु दीना सो असिद्ध, विरुद्ध अनेकांतिक दोष करके दुष्ट होनेसें सुनयें योग्य नहि है. तथाहि, निरंश वस्तुके होनेसे वोहीतो मांस साध्य है, और वोहि प्राणी अंग हेतु है, इस वास्ते प्रतिज्ञार्थ एक देश असिद्ध हेतु है. जैसें, नित्य शब्द है, नित्य होनेसे, जेकर मांससें प्राणी अंग भिन्न है तब तो अतिशय करके हेतु असिद्ध है, व्यधिकरण होनेसें. जेसे "देवदत्तस्य गृहं काकस्य काष्ण्यात्." तथा यह हेतु अनेकांतिकभी है, कुत्ते आदिके मांसको भक्ष्य होनेसे. तथा प्रतिज्ञा ऐसी लोक विरुद्ध है, मांस अन्न एक करनेसें. इसी तरें मांस और अन्न एक सरीखे नहि. इस वास्ते मांस खानेमें महा पाप है. दयालु होवे तो मांस खाना वर्जे और धर्ममां अधिकारीभी होवे इति दशमो गुणः

इग्यारमा मध्यस्थ सोम दृष्टि नामा गुण लिखते है. मध्यस्थ जो किसी मतका पक्षपाती न होवे. सोमदृष्टि, प्रद्वेषके अभावसें दृष्टि अच्छ है जिसकी सो मध्यस्थ सौम्यदृष्टि, कहते है. सर्व मतोंमें राग द्वेष रहित ऐसा पुरुष धर्मका विचार नाना पाखंड मंडली रूप दुकानोंमें स्थापन करा है धर्मरूप करीआणा जिनोंने ऐसे सर्व मतोंमेंसें यथावस्थित सगुण, निर्गुण अल्प बहुत्व गुण करके जो व्यवस्थित है तिसको, कनक परीक्षा निपुण विशिष्ट कनकाधिक पुरुषवत् जानता है और ज्ञानादि गुणोके साथ संबंध करता है, और गुणोंके प्रतिपक्षभूत दोषांको दूरसें त्याग देता है. सोमवसु ब्राह्मणवत् इति एकादशमो गुणः

बारमा गुणानुरागी गुणका स्वरूप लिखते है, धार्मिक लोकोंके गुणो विषे राग करे अर्थात् गुणवंत यति, साधु श्रावका-

दिक बहुमान करे, मनको प्रीतिका जोजन करे, यथा—

अहो ! ये धन्य है, इनोंने अच्छा पाया है मनुष्य जन्म.

पूर्वपक्षः—इस तुम्हारे कहनेसें परकी निंदा होती है. जैसे देवदत्त दक्षिणके चक्षुसें देखता है, वामेंसे नहि. तथा चोक्तं

“ शत्रोरपि गुणा ग्राह्या, दोषा वाच्या गुरोरपि ”॥

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना ठीक नहि. धर्मी जनको निर्गुणीओकी निंदा करणी उचित नहि. धर्मीजन निर्गुणिओकी उपेक्षा करते है, क्योंकी धर्मीजन ऐसा विचारते है कि—

संतोप्यसंतोपि परस्यदोषा नोक्ताः श्रुता वा गुण मावहंति । वैराणि वक्तुः परिवर्द्धयंति, श्रोतुश्च तन्वंति परां कुबुद्धिं ॥ १ ॥ तथा कालंमि अणाइए अणाइ दोसेहिं वासिए जीवे । जयं वियइ गणो विहु तं मन्नद भोम हच्छरिय ॥ २ ॥ भूरि गुणा विरलच्चिय, इक गुणो विहु जणो न सव्वथ्थ, निद्दा साणविभद्दं, पसंसि मोयो वदो सेवि ॥ ३ ॥

अर्थ—अनादि कालसें अनादि दूषणों करि वासित जीवोंमें जो गुण उपलब्ध होवे सो गुण देखी हो श्रोताजनो ! तुम महा आश्चर्य मानो, परंतु अवगुण देखी आश्चर्य मत मानो ॥ १ ॥ बहुते गुणावाले तो विरले है, परंतु एक गुणवालाभी सर्व जगे नहि मिलता है, जे निर्दोष है तिनका तो कल्याणही है परंतु हमतो जिसमें थोडे अवगुण होवे तिसकीभी प्रशंसा करते है. ॥ २ ॥ इत्यादि संसारका स्वरूप विचारता हुआ गुणरागी पुरुष निर्गुणांकी निंदा नहि करता है. मध्यस्थ भावसें रहता है. तथा गुणांका संग्रहमें और ग्रहण करणेमें प्रवृत्त होता है, और

अंगीकार करे हुए सम्यग्दर्शन विरत्यादि गुणांको नाश नहि करता है, पुरंदर राजकुमारवत्. इति द्वादशमो गुणः

तेरमा सत्कथा नामगुणका स्वरूप लिखते है. इहां सत्कथासें विपर्यय होवे तिसका जो दोष होवे सो कहते है. विकथा करणेवालेका विवेकरत्न नष्ट हो जाता है. विवेक अर्थात् असत् वस्तुका परिज्ञान सोइ रत्न है, अज्ञानरूप अंधकारका नाशक होनेसें. अशुन्न कथा स्त्रीआदि कथा, तिनमें आसक्ती करके मलिन है मन अंतःकरण जिसका सो विकथाका करणेवाला है. विकथाके करणेमें प्रवृत्त हुआ प्राणी युक्त अयुक्तका विचार नहि करता है, और स्वार्थ हानिन्नी नहि देखता है, रोहिणिवत्. धर्म जो है सो विवेक सार अर्थात् हितावबोध प्रधानही है. इस वास्ते पुरुषको सत्कथा प्रधान होना चाहिये. सत्य शोन्ननिक–तीर्थंकर गणधर, महाऋषि चरित गोचर कथा अर्थात् वचन व्यापारवाला होवे तो धर्मका अधिकारी होवे. चारो विकथा जो नहि करणे योग्य है, वे रीतिकी है.

"सा तन्वी सुन्नगा मनोहररुचिः कांतेक्षणा न्नोगिनी, तस्या हारि नितंबबिंबमथवा विप्रेक्षितं सुभ्रुवः । धिक्तामुष्ट्रगतिं मलीमसतनुं काकस्वरां डुर्न्नगामित्थं स्त्रीजनवर्णनिंदनकथा दूरेस्तु धर्माथिंनां "॥ १ ॥

अर्थ–ते स्त्री सुंदर, मनोहर कांतिसें युक्त, सुंदर नेत्र धरनेवाली, न्नोगवती है, तिनका नितंबबिंब और भ्रगुटीका कटाक्ष बोहोत अच्छा है. ऊंटजेसी गतिवाली, मलिन शरीरवाली, काक जेसा स्वर वाली और डुर्न्नागी ए स्त्रीकुं धिक्कार है. एसीतरेह स्त्रीकी प्रसंशा और निंदाकी कथा सो धर्मार्थीसें दूर है. इत्यादि स्त्रीकथा न करे.

" अहो क्षीरस्यान्नं मधुरमधुगावाज्यखंडान्वितं, चेड्स्तंभ्रद्धौ दध्नौ मुखसुखकरं व्यंजनेभ्यः किमन्यत् । नपक्वान्नादन्यद्रमयति मनः स्वादु तंबोलमेकं. परित्याज्या प्राज्ञैरशनविषया सर्वदैवे ति वार्त्ता " ॥ १ ॥

अर्थ—दुधपाक, मीठा गायका घी, खांडसें युक्त, दही और मुखमें सुखकरनेवाला शाक प्रमुखसें दुसरा कोन है ? पक्वान्न और तांबुल शिवाय दुसरा कोइ मनकुं रंजन करनेवाला स्वादिष्ट नहि है. इत्यादि भोजन विषयकी बात प्राज्ञलोको सर्वदा त्याग करते है. इत्यादि भक्तकथा न करे.

"रम्यो मालवकः सुधान्यकनकः कांच्यास्तु किं वर्ण्यतां, दुर्गागुर्जरभूमिरुभटभटालाटाः किराटोपमाः । कास्मीरे वरमुष्यता सुखनिधौ स्वर्गोपमाः कुन्तला, वर्ज्या दुर्जनसंगवद्बुधभिया देशी कथैवंविधा " ॥ १ ॥

अर्थ—मालवा देश रमणीय है. सारा धान्य और सुवर्णसें भरपूर है. कांची देशका वर्णन क्या करना ? गुजरात दुर्गम है. लाट देशमें सूभट लोक उद्भट है. सुखका निधि कश्मिर देशमें रहेना अच्छा है, कुंतलदेश स्वर्ग जैसा है. ऐसी तरेहकी देशकथा दुर्जनकी संगसें माफिक बुद्धिमान् पुरुषे छोडी देना चाहिए. इत्यादि देशकथा न करे.

"राजायं रिपुवारदारणसहः क्षेमंकरश्चोरहा, युद्धं भीममभूत्तयोः प्रतिकृतं साध्वस्यतेनाधुना । दुष्टोयं म्रियतां करोति सुचिरं राज्यं ममाप्यायुषा, भूयोबंधनिबंधनं बुधजनैराज्ञां कथा हीयतां " ॥ १ ॥

आ राजा शत्रुका समूहका नाश करनेमें शक्तिवाला है. क्षेम कुशल करनेवाला है; चौर लोककुं शिक्षा करनेवाला है, दुस-

र दो राजाकी बीचमें जयंकर युद्ध था. ओ राजा दुष्ट है. सो मरना चाहिए. ए राजा चिरकाल राज्य करते है. उसका राज्यमें मेरा आयुष्यका बंध हो. एसी राजकथा पंफित लोमोकुं गोफना चाहिए. इत्यादि राजकथा न करे.

तथा श्रृंगार रसवाली, मतिको मोह उत्पन्न करनेवाला, हांसी क्लेशकी जननैवाली, परके दुषण बोलनेवाली कथा न करे. जिन, गणधर, मुनि, सती प्रमुखकी सत्कथा करे. इति त्रयोदशमो गुणः

सुपक्ष युक्त नामा चौदमा गुणका स्वरूप लिखते है. जला होवे पक्ष, परिवार जिसका सो सुपक्ष युक्त है. अन्यकुं धर्म करतेको विघ्न न करे. धर्मशील, धर्मी, सुसमाचारः— सत् आचारका आचरणेवाला ऐसा जिसका परिवार होवे तिसको सुपक्ष युक्त कहते है. तिनमें अनुकूल उसको कहते है जो धर्म करतेको साहाय्यकारी होवे. धर्मशील वा धर्मप्रयोजनके वास्ते प्रार्थना करे तो अजियोग अर्थात् वगार न समजे अपितु अनुग्रह माने. सुसमाचारी होवेतो जिसमें धर्मकी लघुता न होवे ऐसा काम करे. राज्य विरुद्ध कृत्य न करे. पूर्वोक्त ऐसा परिवार जिसका होवे सो सुपक्ष युक्त है सोइ धर्मके योग्य है. जद्रनंदि कुमार वत्. इति चतुर्दशमो गुणः

पंदरमा दीर्घदर्शी नामा गुणका स्वरूप लिखते है. जो कार्य करे तिसका परिणाम प्रथम विचारके करे, सर्व कार्य परिणाम सुंदर, आवते काले सुख देनेवाला करे. जिस कार्यमें बहुत लाज होवे और क्लेश महेनत थोडी होवे, बहुत स्वजन, परजन जिस कार्यकी स्तुति श्लाघा करे, शिष्ट जन जिस कार्यकी अच्छा जाने ऐसा कार्य करे. सो पुरुष इस लोकमेंजी अच्छा देख पडे

ऐसा कार्य परिणामिक बुद्धिके बलसें करे, धनश्रेष्टिवत्. इति पचदशमो गुणः.

विशेषज्ञ नामा सोलमा गुणका स्वरूप लिखते है. सचेतन अचेतन वस्तुओका अथवा धर्मके हेतुओका गुण और अवगुण जाने, अपक्षपाती, मध्यस्थ होनेसें. जो पक्षपात करके संयुक्त होता है वो गुणोंको दूषण और दूषणांको गुण समजता है और कहताभी है. उक्तंच—

" आगृहीत बत निनीषति युक्तिं, तत्र यत्र मतिरस्यनिविष्टा। पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशं"॥ १ ॥

इस वास्ते बहुलता करके विशेषज्ञ सारतरका कहनेवाला उत्तम धर्मके योग्य होता है, सुबुद्धि मंत्रीवत् इति षोमश गुणः

वृद्धानुग नामा सत्तरमा गुणका स्वरूप लिखते है. वृद्ध वयकरी परिणाम बुद्धि, परिपक्वबुद्धिः परिणाम सुंदरसद् सद्विवेकादिगुणयुक्त इत्यर्थः तथा चोक्तं—

तपः श्रुतधृतिध्यानविवेकयमसंयमैः।
ये वृद्धास्तेऽत्र शस्यंते न पुनः पलितांकुरैः॥१॥
सतत्वनिकषोद्भूतं विवेकालोकवर्द्धितं।
येषां बोधिमयं तत्वं ते वृद्धा विदुषां मताः॥ २॥
प्रत्यासत्तिसमायानैर्विषयैश्चांतरंजकैः।
न धैर्यं स्खलितं येषां ते वृद्धाः परिकीर्तिताः॥३॥
नहि स्वप्नेपि संजाता यषां सद्वृत्तवाच्यतां।
यौवनेपि मता वृद्धास्ते धन्याः शीलशालिभिः॥४॥
प्रायाः शरीरशैथिल्यात् स्यात् स्वस्था मतिरंगिनां॥

यौवने तु क्वचित् कुर्यात् दृष्टतत्वोपि विक्रियां ॥५॥
वार्द्धकेन पुनर्द्धत शैथिल्यं हि यथा यथा ॥
तथा तथा मनुष्याणां विषयाशा निवर्तते ॥६॥
हेयोपादेयविकलो वृद्धोपि तरुणाग्रणीः ।
तरुणोपि युतस्तेन वृद्धैर्वृद्ध इतीरितः ॥ ७ ॥

न्नावार्थः—तप, श्रुत, धृति, ध्यान, विवेक, यम, संयम, तप करे न्नेदे, श्रुत अंगोपांगादि, धैर्य, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, विवेक, सत्तर न्नेदे संयम, इनो करके जो वृद्ध-धरम्म होवे सो जिनेंद्र शासममें वृद्ध कहा है, परंतु पलित धवले केशांवालेको वृद्ध नहि कहा है. तत्वरूप कसोटीके रगम्नेसें जो विवेकरूपी प्रकाश वध्या है ऐसा बोधमय जिनको तत्वज्ञान है सो वृद्ध पंम्तितोको मान्य है. अंतरंगमें राग उत्पन्न करनेवाले ऐसे शब्दादिक विषय संबंधवालेन्नी हुए है. तोन्नी जिनकी धैर्यता चलायमान नहि हुई वे पुरुष वृद्ध कहे है. जिनोनें स्वप्नमेंन्नी व्रत खंम्न नहि करा है, सो धन्य है, शीलशाली सत् परुषोनें तिनको यौवनमेंन्नी वृद्ध कहा है, क्योंकि बाहुल्यता करके शरीर [illegible] होनेसें जीवांकी मति स्वस्थ हो जाति है और यौवनमें तो तत्वका जानकरन्नी विकारवान् हो जाता है. वृद्धपणेमें जैसें जैसें शरीर शिथिलता धारण करता है तैसें तैसें पुरुषोकी विषयसें इच्छान्नी हट जाति है. जो हेय उपादेय ज्ञानसें विकल बुढान्नी है, तोन्नी तरुणाग्रणी है. और हेयोपादेय ज्ञान करी संयुक्त है तो तरुण अवस्थामेंन्नी वृद्धोने उसको वृद्ध कहा है. ऐसा जो वृद्ध होवे सो अशुन्नाचार, पापकर्ममें नहि प्रवर्तते है यथार्थ तत्वके अवबोध होनेसें जिस हेतुसें वृद्ध अहित काममें नहि प्रवर्तता है इस हेतुसें वृद्धांके पीछे चलना चाहिये; वृद्धानुगामी वृद्धोकी तरे पापमें नहि प्रवर्तते है.

मनीषि वृद्धानुग मध्यम बुद्धिवत्. किस हेतुसें, वृद्धोकी सत् संगतिसें जले गुण उत्पन्न हो जाते है. प्रोक्तमागमे—

" उत्तम गुण संसर्गी शील दरिद्दं पिकुण इसी लद्दं ॥ जह मेरुगिरि विलग्गं तणंपि कणगत्तण मुवे इति ॥ अर्थ—उत्तमकी संगति शील रहितकोजी शीलमान् कर देती है. जैसे मेरु पर्वतमें लगा हुआ तृणजी सुवर्णताको प्राप्त होता है. इति सप्तदशमो गुणः—

अगारमा विनय गुणका स्वरूप लिखते है. विनीयते—अपनीयते, अर्थात् दूर करीए जिस करके अष्ट प्रकारके कर्म सो विनय; यह सिद्धांतकी निरुक्ति है. सो विनय पांच प्रकारका है; ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, तप विनय, उपचारिक विनय. ए पांच प्रकारे मोक्षार्थ विनय है.

ज्ञान विनय, ज्ञान करके यथार्थ वस्तु षट् द्रव्यांको जाणे कार्य करता हुआ ज्ञान पूर्वक करे सो ज्ञान विनय १ द्रव्यादिकों सम्यक् श्रद्धे सो दर्शन विनय२ चारित्र सम्यक् प्रकारसें पाले सो चारित्र विनय ३ तप बारा प्रकारका सम्यग् रीतिसें सेवन करे सो तप विनय ४, उपचारिक विनयकें दो जेद है. प्रतिरूप योग युंजनता अर्थात् यथायोग्य जक्ति करणी १ अनाशातनाविनय २ तिनमेंसें प्रथम प्रतिरूप योग युंजनता विनय के तीन जेद है. मन विनय १ वचन विनय २ काया विनय ३ तिनमें मन विनयके दो जेद है. अकुशल मनाका निरोध करणा १ कुशल मनको प्रगट करना २. वचन विनयके चार जेद है. हितकारी वचन बोलना १ मर्यादा सहित थोडा बोलना २ कठोर वचन न बोलना ३ प्रथम विचारके बोलना ४. काया विनयके आठ जेट है. गुरु आदिकको आता देखके खडा होना १ गुरु आदिकको हाथ

जोमना २ गुरु आदिकको आसन देना ३ गुरु नहि बेठे तब तक नहि बेठना ४ गुरु आदिको द्वादशावर्त वंदणा करणी ५ गुरु आदिककी शुश्रूषा करणी ६ गुरु आदिकको जातेको पहुंचाने जाना ७ पास रहेकी वैयावच्च, भक्ति, सेवा करणी ८. अनाशातना विनयके बावन भेद है सो इस तरेसें जानने. अरिहंत १ सिद्ध २ कुल ३ गच्छ ४ संघ ५ क्रिया ६ धर्म ७ ज्ञान ८ ज्ञानी ९ आचार्य १० स्थावर ११ उपाध्याय १२ गणी १३ यह तेरा पद है. तिनमें प्रथम अरिहंत, अरि वैरी–अष्ट कर्म रूप, जिनोंने नाश करे है, सो अरिहंत. उक्तंच.—

" अठ विहंपि कम्मं अरि भूयंपि होई सव्वजीवाणं। तंकम्म मरिहंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥ १ ॥ अर्थ–अष्ट प्रकारके कर्म सर्व जीवांके शत्रुभूत है तिनको जो हणे सो अरिहंत कहा जाता है, अथवा अरुहंत–जिनका फिर संसारमें भवरूप अंकुर नहि होता है सो अरुहंत कहे है, अथवा अरहंत–चौसठ इंद्रोकी पूजाके जो योग्य होवे सो अरहंत कहा जाता है, अथवा जिनके ज्ञानसें कोइ वस्तु छानी नहि सो अरहंत है. यह तीनों पाठांतर है. तथा मुक्तिमें जो चढे सो आरोहंत कहा जाता है. अरिहंत किसीका नाम नहि है. जो पूर्वोक्त अर्थ करी संयुक्त होवे और चौत्रीस अतिशय, पांत्रीस बचनातिशय और बारह गुणां करके संयुक्त होवे और अठारह दोषां करके रहित होवे सो अरिहंत कहा जाता है. ईश्वर, ब्रह्मा. शिव, शंकर शंभु, स्वयंभु, पारगत, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी इत्यादि अरिहंतहीके है परंतु पूर्वोक्त नाम जो अज्ञ लोकोने कामी, क्रोधी, विषयी, राजा, नृत्य करनेवाला, निर्लज्ज होके किसीके आगे नाचनेवाला, वेश्यागमन करनेवाला, परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, शरीरको राख ल-

गानेवाला, जपमाला जपनेवाला, शस्त्र राखनेवाला, बैल प्रमुखकी स्वारी करनेवाला, बेटी आदिकसें विषय सेवनेवाला, वृक्षके फल खाने जावे, जब वृक्षमें फल न मिले तब शाप देके वृक्षको सुका देनेवाला, अज्ञानी, मांसाहारी, मद्य पीनेवाला इत्यादि अवगुणवालाको उपर जो ईश्वर पदका आरोप करा है-सो करने वालेकी महामूढताका सूचक है ऐसे अयोग्य पुरुषांको बुद्धिमान् कदापि ईश्वर न कहेगा. ईश्वर तो पूर्वोक्त दूषणोंसें रहित होता है. तिसकोही जैनमतमें अरिहंत कहते है.

सिद्ध पदका स्वरूप लिखते है. यद्यपि सिद्ध अनेक प्रकारके है नाम सिद्ध १ स्थापना सिद्ध २. द्रव्य सिद्ध ३. शरीरद्रव्य सिद्ध ४ जव्य शरीर द्रव्य सिद्ध ५ यात्रासिद्ध ६ विद्या सिद्ध ७ मंत्रसिद्ध ८ बुद्धिसिद्ध ९ शिल्पासिद्ध १० तपसिद्ध ११ ज्ञानसिद्ध १२ कर्मक्षयसिद्ध १३ इत्यादि अनेक सिद्ध है, परंतु इहा कर्मक्षय सिद्धांका अधिकार है जे सर्व अष्ट कर्मकी उपाधि क्षय करके सिद्ध हुए है वे कर्मक्षय सिद्ध कहे जाते है. कितनेक सिद्धकी आदिजी नहि और अंतजी नहि है. कितनेक सिद्धांकी आदितो है परंतु अंत नहि है. सिद्ध जो है वे अज, अमर, अलख, निराकार, निरंजन सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, पारगत, परंपरागत, अयोनि, अरूपी, अछेद्य, अभेद्य, अदह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, कूटस्थ, परब्रह्म, परमात्मा शिव, अचल, अरुज, अनंगी, शुद्ध चैतन्य, अक्षय, अव्यय, अमल इत्यादि नामोंसें कहे जाते है. ये सिद्ध पुनः संसारमें जन्म नहि लेते है. जैसें बीज अत्यंत दग्ध हो जावे तो फिर अंकुर नहि देता है ऐसेही कर्म बीज शुक्लध्यानरूप अग्नि करके दग्ध हुए फिर संसारमें जन्मरूप अंकुर नहि कर शकता है-जोले जीव जो शास्त्रमें लिख गये है और अब कहे रहे है, ई

श्वर परमात्मा जगतमें अवतार लेता है. किस वास्ते ! साधुओं के उपकार वास्ते और दुष्ट दैत्योंके नाश करने वास्ते और धर्मके स्थापन करने वास्ते परमेश्वर युग युगमें अवतार लेता है. यह कहना बालक्रीडावत् है, क्योंकि परमेश्वर विना अवतारके लिया क्या पूर्वोक्त काम नहि कर शकता है ? कितनेक भोले लोक कहते है कि परमेश्वरके तीन रूप है. पिता १ पुत्र २ पवित्रात्मा ३ ये तीनो एकभी है. तिनमें जो पुत्र था वो इस लोकमें अवतार लेके और जगतके कितनेक लोकोंको अपने मतमें स्थापन करके, तिन इमानवाले भक्तोका पाप लेके आप शूली उपर चढा ऐसा लेख वांचके हम बहुत आश्चर्य पाते है. क्या ईश्वर विना अपने पुत्र भेजे जगवासीओका अंतःकरण शुद्ध नहि कर शकता है ? तथा मनुष्यणीके पेटके अवतार विना बना बनाया अथवा नवा बनाके अथवा आप पुत्ररुप धारके इस दुनियामें नहि आ शकता है जो मनुष्यणीके गर्भसें जन्म लीना ? क्या ईश्वरको प्रथम ऐसा ज्ञान नहि था कि इतनें जीवोंके वास्ते मुजे अवतार लेके शूली चढना पडेगातो प्रथमही इनको पापी न होने देऊ ? तथा भक्तोके पापका नाश नहि कर शकता था जिस्सें शूली चढना पडा. क्या भक्तजनोंका इतनाही पाप था जो एकवार शूली चढनेसें संपूर्ण फल भोगनेमें आ गया. ईश्वरसें अन्य कोई दुसराभी बडा ईश्वर है जिनसें छोटे ईश्वरको भक्तोके पाप फल भोगनेमें शूली चढा दीया. तथा पुत्र तथा छोटे ईश्वरनें बडी हिम्मत करी जो सर्व भक्तोंकी दया करके सर्वके पापोका फल आपे भोगना स्वीकार कीया परंतु पिता तथा बडे ईश्वरनें परोपकार, भक्तवत्सल, परमकृपालु ऐसे पुत्र तथा छोटे ईश्वरकी दया करके पाप नाश रूप बक्षिस न करी. तथा जब पिता पुत्र

एक रूप है तो ईसा शूलि नहि चढा इत्यादि अनेक तर्को मेरी बुद्धिमें प्रकट होते है. सर्व लिख नहि शकता हुं. तो क्या ईश्वर कृपालु, दयानिधि मेरा संशय दूर नहि कर शकता है. अफसोस करता हुं के भोले जीवोंने भोलेपनेसें परम पवित्र ईश्वरको कितना कलंकित करा है. मेरी लेखनमें लिखनेकी शक्ति नहि है, भोले जीव इस जगतको देखके इसी विचारमें डूब गये है कि ऐसी विचित्र रचना ईश्वर विना केसी हो शक्ति है, परंतु यह विचार नहि करते है कि ऐसा सामर्थ्य अनंत शक्तिओ करी संयुक्त ईश्वर अपनें आप उत्पन्न कैसे हो गया. भोला कहता है, ईश्वर तो अनादिसें ऐसाही है तो फिर हे भोले जीव! तुं इस जगतकोभी इसी तरें अनादि माने तो ईश्वर परमात्माके सर्व आरोपित कलंक दूर हो जावे. क्योंकि यह संसार द्रव्यार्थिक नयके मतमें अनादि अनंत है और पर्यायार्थिक नयके मतमें आदि अंतवाला है और इसका कर्त्ता नहि है. शक्ति है, परंतु सिद्ध परमात्मा किसी वस्तुका कर्त्ता नहि है. अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंत सम्यग् दर्शन चारित्र, अनंत स्थिति, अरूपी, अगुरु लघु, सर्व विघ्न रहित सिद्ध भगवंत है. तथा शुद्ध द्रव्यार्थिक नयके मतमें सिद्ध परमात्मा परब्रह्म एकही माना जाता है. तथा अन्य नयके मतमें सिद्ध अनंतेभी माने जाते है. सर्व सिद्ध लोकाग्र आकाशमें स्थित है. द्रव्यरूप करके सर्व व्यापी नहि है, आदित्यवत्; ज्ञान शक्ति करके सर्व व्यापी है, आदित्य प्रकाशवत्. सिद्धांके सुखको कोइ उपमान नहि है. इन सर्व सिद्धाकोही लोकोने अल्ला, खुदा, ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म आदि नामो करके माना है, प्रथम पद अरिहंतको अवतार, अंशावतार, तीर्थंकर, बुद्ध, धर्मोपदेष्टा, धर्मसारथि, धर्म सार्थवाह, धर्मका नियामक, गोपाल, धर्मका रक्षक, जगत् प्रका-

शक, शिवशंकर, अर्हन्, जिन त्रिकालवित् इत्यादि नामोसें कहते है. जब जीवांको प्रबल मिथ्यात्व मोहनीय कर्मका बहुत प्रचार और प्रबल उदय हुआ तब भोले जीवोंने पूर्वोक्त परमेश्वरके नाम अयोग्य अर्थात् कामी, क्रोधी. लोभी, अज्ञानी, स्वार्थ तत्पर जीवोमें आरोप करे. तबसें इस जगतमें अनेक मत बनाय गये है. जिस जीवोमें भोले लोकोने ईश्वरका उपचार करा है तिसका जब चाल, चलन. कर्तव्य वांचनेमें आता है तब भोले जीवांकी समज पर लांबा उच्छवास लेके हाय ! कहना पडता है, इस वास्ते भोले लोकोंको सर्व कल्पित ईश्वरोंको छोडके अढारह दूषण रहित परमेश्वरको परमेश्वर मानना चाहिये, जिस्से सिद्धपदकी प्राप्ति होवे. इति सिद्ध पदं.

तीसरे पदमें कुल—कुल उसको कहते है जो एक आचार्यकी संतानमें बहुत न्यारे न्यारे साधुओंके समुदाय होवे.

गछ उसको कहते है जिसमें बहुत कुलोंका समूह एकठा होवे कौटिकादि गच्छवत्.

संघ चतुर्विध—श्रमण १ श्रमणी २ श्रावक ३ श्राविका ४ तिनमें श्रमण उसको कहते है, जो तप करे और पांचो इंद्रियको रागद्वेषोदय करके स्वस्वविषयमें प्रवृत्त हुएको थका देवे. तथा श्रमण शब्दको प्राकृत व्याकरणमें समण ऐसा आदेश होता है, इस वास्ते समण शब्दका अन्वर्थ लिखते है. सम कहते है; तुल्य मैत्री भावसें सर्व भूतोंमें, सर्व जीवोंमें, त्रस स्थावरोंमें प्रवर्ते, इस वास्ते साधुको समण कहते है. सो साधु ऐसा विचारते है—कोइ मुजको मारे तब जेसें मुजको दुःख प्रिय नहि तैसेही सर्व जीवांको दुःख प्रिय नहि है. ऐसे जान करके मन, वचन, काया करके कोई जीवको न हणे, न

हणावे अन्यको हणतां जलो न जाणे. इस प्रकारसें सर्व जीवो- में जिसका मन प्रवर्त्ते सो समण कहा जाता है. "सर्वजीवेषु स- मत्वे, सममणतीति समणः" एक तो समण शब्दका यह पर्या- यार्थ है. ऐसेही "समं मनोऽस्येति समनाः" यह दुसरा पर्याया- र्थ नाम है. इसका अन्वर्थ यह है. सर्व जीवोमेंसें नतो कोइ द्वेष योग्य है और न कोइ प्रिय है, सर्व जीवोंमे सम मन होनेसें. सम मन "समं मनोऽस्येति निरुक्तविधिना सममनाः" अथवा उर- ग–सर्प तिसके समान होवें. जैसें सर्प परके बनाये स्थानमें रह- ता है, तैसेंहि परके बनाये स्थानमें रहै. तथा पर्वत समान हो- वे, उपसर्गसें चलायमान न होवे. तथा अग्नि समान होवे, तप तेजमय होनेसें. तथा समुद्र समान होवे गुण रत्न करके परि- पूर्ण तथा ज्ञानादि गुणां करके अगाध होनेसें. तथा आकाश स- मान होवे, निरालंबन होनेंसें. तथा वृक्षो समान होवे, सुख दुःखमें विकार न दर्शानेसें. तथा भ्रमर समान होवे, अनियत वृत्ति होनेसें. तथा मृग समान होवे, संसार प्रति नित्य उद्विग्न होनेसें. तथा पृथ्वी समान होवे, सर्व सुख दुःख सहनेंसें. त- था कमल समान होवे, पंक जल समान काम जोगांके उपरि वर्जे. तथा सूर्य समान होवे, अज्ञान अंधकारके दूर करनेंसें. तथा पवन समान होवे, सर्वत्र अप्रतिबद्ध होनेसें. इन पूर्वोक्त सर्व गुणांवाले पुरुषको श्रमण कहते है. और पूर्वोक्त सर्व गुणां- की धारणेवाली स्त्रीको श्रमणी कहते है. श्रावक उसको कहते है. जो श्रद्धापूर्वक जिन वचन सुणे, तथा श्रा–पाके नव तत्वके ज्ञानको पकावे—तब तत्वका जानकार होवे; 'टु वपूबीजतंतुसं- ताने;' न्यायोपार्जित धन रूप बीज, जिनमंदिर, जिन प्रतिमा, पुस्तक, साधु, साध्वी, श्रावक श्राविकारूप सात क्षेत्रमें बोवें; 'कृ- विक्षेपे,' जो जप, तप, शील, संतोषादि करके अष्ट कर्मरूप क-

चबरको विखेरे. इन पूर्वोक्त तीनो अक्षरोंके अर्थ करी संयुक्त होवे तिसको श्रावक कहते है. और पूर्वोक्त गुणोवाली स्त्रीको श्राविका कहते है. इन चारोका समुदाय तथा कुलांके समुदायको संघ कहते है. ५

क्रिया ६ धर्म ७ ज्ञान ८ ज्ञानी ९ चारों प्रसिद्ध है.

स्थविर उसको कहते है, जो धर्मसें गिरते जीवांको फिर धर्ममें स्थापन करे १० आचार्य उसको कहते जो छत्रीस गुणां करी सहित होवे और सूत्रका अर्थ कहे ११ उपाध्याय उसको कहते है जो पचवीस गुणां करी सहित होवे और सूत्र पाठ मात्र शिष्योको पठन करावे १२ गणी उसको कहते है जो सर्व शास्त्रका पढा हुआ बहुश्रुत होवे १३ इन तेरांकी आशातना न करे, तेरांकी भक्ति करे, तेराको बहुमान करे, तेरांके गुणांकी स्तुति करे. ऐवं ५२ भेद आशातना विनयके हुए है. इस तरेका विनय सर्व गुणांकां मूल वर्तते है. उक्तंच,

विणओ सासणे मूलं विणओ संजओभवे ।
विणयाविप्पमुक्कस्स कओ धम्मो कउ तवो ॥१॥

अर्थ—विनय जिन शासनमें मूल और विनीतही संयत होता है, विनयसें रहितको धर्म और तप दोनोइ नहि.

विनय किनका मूल है—सत् ज्ञान दर्शनादिकोंका. उक्तंच.

विणयाउणानं नाणाउ दंसणं दंसणाउ चरणं ॥
चरणे हिंतो मुक्खो, मुक्के सुखं अणावाहं ॥ १ ॥

अर्थ—विनयसें ज्ञान होता है, ज्ञानसें दर्शन होता है, दर्शनसें चारित्र होता है: चारित्रसे मुक्ति होती है और मुक्तिसें अनाबाध सुख होता है. तथा विनयसें किस क्रमसें गुण प्राप्त होता है सो लिखते है.

" विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतज्ञानं, । ज्ञानस्य फलं विरतिर्विरतेः फलं चाश्रवनिरोधः ॥ १ ॥ संवरफलं तपो बलमपि तपसो निर्जरा फलं दृष्टं । तस्मात् क्रियानिवृत्तिः क्रिया निवृत्तेर्योगित्वं ॥ २ ॥ योगनिरोधाद्भवसंततिक्षयः संततिक्षयान्मोक्षः । तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां ज्ञाजनं विनयः ॥ ३ ॥ तथा–मुलाउ ख्खं धप्प जवो डुमस्स खंधाउ पच्छा समुविंति सा हा साहप्प साह विरुहं पत्ता, तउसि पुप्फं च फलं रसोय ॥ ॥ १ ॥ एवं, धम्मस्स विणउमुलं परमोसे मुस्को। जेणकित्तिं सुयं सिग्धं नीसेसंचाजिगच्छइ " ॥ २ ॥

अर्थ—प्रथम वृक्षके मूलसें स्कंध होता है, स्कंधसें पीछे शाखा होती है, शाखासें प्रशाखा और प्रशाखासें पत्र होते है, तद् पीछे फुल फल और रस होता है, ऐसेही धर्मका मूल विनय है, और समान मुक्ति है, शेष, स्कंध, शाखा, प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प, फल समान बलदेव, चक्रवर्ती, स्वर्गादिके सुख है, इस वास्ते विनयवान् धर्मके योग्य होता है. ज्ञुवन तिलक कुमारवत् इति अष्टादशमो गुणः

ओगणीसमा कृतज्ञता नामा गुणका स्वरूप लिखते है. बहुमान करे, गौरव संयुक्त धर्म गुरु, आचार्यादिकको देखे, धर्मगुरु धर्मके दाता आचार्यादिकको कहते है, तिनको बहुमान देवे क्योंकि यह धर्मगुरु मेरे परमोपगारी है, इनोंनें अकारण वत्सलोनं अतिघोर संसाररूप कुवेमें पडतेको उद्धार करा है ऐसी परमार्थ बुद्धि करके स्मरण करता है परमागम स्थानांग सिद्धांतके वाक्यको, सो वाक्य यह है.

तीन जणोंके उपकारका बदला नहि दिया जाता है. माता पिता १ शेठ २ धर्माचार्य ३ तिनमें कोई पुरुष सवेरे और सां-

रुको मातापिताको शतपाक, सहस्रपाक तेल करके मर्दन करे, पीछे सुगंधीक उवटने करी उवटन करे, पीछे तीर्थोदक, पुष्पोदक, शुद्धोदक तीन प्रकारके पानीसें स्नान करावे पीछे सर्वालंकार करी विभूषित करे, मनोज्ञ स्थाली, पाकशुद्ध अठारह प्रकारके व्यंजन संयुक्त भोजन करावे; जब तक जीवे तब तक मातापिता दोनोंकों अपनी पिठ उपर उठायके फिरे तोभी मातापिताके उपकारका बदला नहि दीआ जाता है. जेकर पुत्र मातापिताकी केवल प्ररूपित धर्ममें स्थापन करे तो देणा उतरे. तथा कोइ शेठ किसी दरिद्री उपर तुष्टमान होके रास पुंजी देइ दुकान करवा देवे, पीछे दरिद्री पुण्योदयसें धनवान् हो जावे और शेठ दरिद्री हो जावे तव शेठ तिसके पास जावे, तब वो संपूर्ण धन शेठको दे देवे तोभी शेठके उपकारका बदला नहिं उतरे, जेकर शेठको केवली प्ररूपित धर्ममें स्थापन करे तो बदला उतरे.

किसी पुरुषनें तथा रूप श्रमणके मुखसें एक आर्यधर्म संबंधी सुवचन सुना है तिसके प्रभावसें कालकरी देवता हुआ है, सो देवता तिस धर्माचार्यको दुर्भिक्ष देशसे सुभिक्ष देशमें सहारे उजाडसे गाम प्राप्त करे, बहुत कालके रोगांतक पीडितको निरोग्य करे तोभी तिस धर्माचार्यका देना नहि उतरे, कदाचित् धर्माचार्य केवली कथित धर्मसें भ्रष्ट होवे जावे और वो जेकर फिर तिसी धर्ममें स्थिर करे तो देना उतरे.

वाचकमुख्येनाप्युक्तं;–" दुःप्रतिकारौ मातापितरौ स्वामी गुरुश्च लोकेऽस्मिन्, तत्र गुरुरिहामुत्र च दुष्करतरप्रतीकारः " इति ॥ १ ॥ तिस वास्ते कृतज्ञ भाव करके उत्पन्न हुए गुरु बहुमानसें क्षमादि गुणांकी वृद्धि होती है, और धर्मकाभी अधिकारी

होता है. धवल राजे के पुत्र विमलकुमारवत्. इति एकोन विंशतिर्गुणः.

वीशमें पर हितार्थकारी गुणका स्वरूप लिखते है. इस गुणका स्वरूप नामसेंही प्रसिद्ध है. इस गुणवालेको धर्मकी प्राप्ति हुए जो फल होवे सो कहते है. जो पुरुष स्वभावसेंही परहित करणेमें अत्यंत रक्त है तिसको धन्य है. तिसने सम्यक् प्रकारसें जानाहे धर्मका स्वरूप जाननेसें गीतार्थ हुआ है. इस कहनेसें अगीतार्थ पर हित नहि कर शकता है तथा चागमः—

" किं इत्तो कठयरं जंसंममनाय समय सझावो, । अन्नं कुदेसणाए कठयरागंमिपाडे इति ॥ " १ ॥ इसके उपर तभी कोइ अतिशय करके कष्टतर अर्थात् पाप है, जो बिना जाणे सिद्धांतका रहस्य कुदेशना करके अन्य जीवाकों अति कष्टमें गेरे है. परहितार्थकारी पुरुष अज्ञात धर्मस्वरूपवाले जीवांको सद्गुरू पासे सुना है जो आगमवचन प्रपंच तिस करके धर्ममें स्था-पन करे, और जिनोने धर्मका स्वरूप जाना है तिनको धर्मसें डिगता धर्ममें स्थिर करे, भीमकुमारवत्. इस कहने करके साधुकि तरें श्रावकभी धर्मोपदेश अपनी भूमिका अनुसार देवे यह कथन श्रीभगवती सूत्रके दूसरे शतके पांचमे उद्देशमे कहा है. तथाच तत्पाठः—

तहा रूवं तं भंते समणंवा माहाणंवा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणा गोमाया सवणफला, सेणं भंते स वणे किं फले नाणफले, सेणं भंते नाणे किं फले विन्नाण फले, सेणं भंते विन्नाणे किं फले पच्चखाणफले, सेणं भंते पच्चखाणे किंफले संजमफले, सेणं भंते संजमे किंफले

अणण्हयफले, एवं अणण्हयफले, तवे तवे वोदाणफले, वोदाणे अकिरियाफले, साणंभंते अकिरिया किंफला सिद्धिपज्जुवसणफला पन्नता गोंयमा गाहा॥ सवणे १ नाणेय २ विन्नाणे ३ पच्चखाणे ४ संजमे ५ अणण्हय ६ तवे ७ चेववोदाणे ८ अकिरिया ॥१॥

इस सूत्रकी वृत्तिकी न्नाषा—तथारूप नचित स्वन्नाववाले किसी पुरुषकी श्रमणं वा तपयुक्तकी नपलक्षणसें नत्तरगुणवंतकी माहनं वा आप हननेसें निवृत्त होनेसें परको कहता है, माहन अर्थात् मत हन, नपलक्षणसें मूलगुण युक्तकी वा शब्द दोनो समुच्चयार्थमें है अथवा श्रमण साधु, माहन श्रावक इनकी सेवा करे तो क्या फल है. सिद्धांतके सुननेका फल होता है सुननेका फल श्रुतज्ञान है, सुननेसेंही श्रुतज्ञान पामीये है, श्रुतका फल विशिष्ठ ज्ञान है, श्रुतज्ञानसेंही हेयोपादेयके विवेक करणेवाला विज्ञान नत्पन्न होता है, विशिष्ठ ज्ञानसें प्रत्याख्यान निवृत्ति फल रूप होता है, विशिष्ट ज्ञानवालाही पापका प्रत्याख्यान करता है, प्रत्याख्यानका फल संयम है, प्रत्याख्यानवालेहीके संयम होता है, संयमका फल अनाश्रव है, संयमवाला नवीन कर्म ग्रहण नहि करता है. अनाश्रवका फल तप है, अनाश्रववाला लघुकर्म होनेसें तप करता है. तपका फल व्यवदान अथात् कर्मकी निर्जरा है' तप करके पुरातन कर्म निर्जर जाते है, व्यवदानका फल अक्रिय योग निरोध फल है निर्जरासें योग निरोध करता है, अक्रियका फल सिद्धि लक्षण पर्यवसान फल है, सकल फलोंके पर्यंत वर्ति फल होता है, इस वास्ते साधु श्रावक दोनांको नपदेश देनेका अधिकार है.

फिर परहितार्थकारी कैसा होवे—निस्पृह मनवाला होवे जो किसी पदार्थ धनादिककी इच्छासें, शुद्ध उपदेष्टाभी होवे तोभी प्रसंशने योग्य नहि है. तथा चोक्तं—

परलोकातिगं धाम तपःश्रुतमिति द्वयं।
तदेवार्थित्वनिर्लुप्तसारं तृणलवायते ॥ १ ॥

परहितार्थकारी महा सत्ववाला होता है क्योंकी सत्ववालोंहीमें यह गुण होवे है. तथाहि—" परोपकारैकरतैर्निरीहता विनीतता सत्यमतुच्छचित्तता, विद्याविनोदेनुदिनं न दीनता गुणा इमे सत्ववतां भवंति ॥ १ ॥ "

अर्थ—परोपकारमें तत्परता, विनयता, सत्य, मनकी बमाई, प्रतिदिन विद्याका विनोद और दीनताना अभाव ओ सत्व वालेका गुण है. इहां भीमकुमारनी कथा जाननी. इति विंशति तमो गुणः

एकवीसमा लब्धलक्ष नामा गुणका स्वरूप लिखते है ज्ञानावरणीय कर्मके पतले होनसे लब्धकी तरे लब्ध है, सीखने योग्य अनुष्टान जिसके सो लब्धलक्ष है, सीखानेवालेको क्लेश नहि उत्पन्न करता है, समस्त धर्म करणी चैत्यवंदनादि सीखता हुआ, तात्पर्य यह है कि पूर्वभवमें अभ्यास करेकी तरे सर्व शीघ्रही शीख लेवे. तथा चाह,—

प्रतिजन्म यदभ्यस्तं जीवैःकर्म शुभाशुभं।
तेनैवाभ्यासयोगेन तदेवाभ्यस्यते सुखं ॥ १ ॥

ऐसा पुरुष सुशिक्षणीय थोमेसे कालसेंही शिक्षाका पारगामी होता है नागार्जुनवत्. इति एकविंशतितमो गुणः

धर्मार्थी पुरुषोने प्रथम इन पूर्वोक्त गुणांके उपार्जनेमें यत्न

करणा चाहिए, क्योंकि इन गुणांके विना धर्म प्राप्त नही होता है, जैसें शुद्ध भूमि विना चित्र नही रह शकता है. यहां प्रभास चित्र करका दृष्टांत जानना.

धर्मका स्वरूप.

अब पूर्वोक्त गुणांका धारी जिस धर्मका योग्य है तिस धर्मका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते है,

धर्म दो प्रकारका है. श्रावक धर्म १ और यतिधर्म २. तिनमें श्रावक धर्म दो प्रकारका है. अविरति १ विरति २. तिनमें अविरत श्रावक धर्मका स्वरूप अन्यत्र ग्रंथोमें कहा है. अविरत श्रावक धर्मका अधिकारी ऐसा कहा है सामर्थ्य होवे, आस्तिक होवे, विनयवान् होवे, धर्मार्थे उद्यमी होवे, पुछनेवाला होवे, इत्यादि अधिकारी कहा है. और विरत श्रावक धर्मका अधिकारी ऐसा कहा है. संप्राप्त दर्शनादि, प्रतिदिन यति जनोंसें समाचारी श्रवण करे, परलोक हितकारी, सम्मक् उपयोग संयुक्त जो जिनवचन सुणे इत्यादि. और यति धर्मका अधिकारी ऐसा कहा है. आर्यदेशमें उत्पन्न हुआ होवे, जाति कुल करके विशुद्ध होवे, प्राये क्षीण पापकर्म होवे, निर्मल बुद्धिवाला होवे, संसार समुद्रमें मनुष्य जन्म दुर्लभ है ऐसा जानता है. संपदा, चंचल और जन्म मरणका निमित्त है, विषय दुःखका हेतु है, संयोग्य वियोगका हेतु है, प्रतिसमय मरण है, इस लोकमेंही पापका फल भयानक है, इत्यादि भावनासें जाना है संसारका निर्गुण स्वभाव जिस्से विरक्त हुआ है, कषाय पतला हुआ है. सुकृतज्ञ है, विनीत है, राजविरुद्ध काम जिसनें नहि करा है, कोइ अंगहीन नहि, सर्व अंग कल्याणकारी है. श्रद्धावान् है, स्थिरस्वभाववाला है, उपशम संपन्न होवे इत्यादि अ-

धिकारीओके लक्षण कहे है तो फिर एकवीश गुणांवाला कौनसें धर्मका यहां अधिकारी कहा है ?

श्रावकका भेद,

उत्तर—ये सर्व शास्त्रांतरके लक्षण सर्व प्राये इन एकवीस गुणांकेही अंगभूत है. इस वास्ते इन गुणांके हुए भाव श्रावक होता है.

प्रश्नः—क्या भाव श्रावक विना अन्यभी श्रावक है जो ऐसें कहते हो ?

उत्तर—इहां जिनागममें सर्व भाव अर्थात् पदार्थ चार प्रकारसें कहे है. " नामस्थापनाद्रव्यभावैस्तन्न्यास " इति वचनात्; सोइ दिखाते है. नाम श्रावक–सचेतन, अचेतन पदार्थका " श्रावक " ऐसा करणा १ स्थापना श्रावक–चित्र पुस्तकादि गत २ द्रव्य श्रावक–ज्ञशरीर, भव्य शरीर, व्यतिरिक्त देवगुर्वादि श्रद्धान विकल तथाविध आजीविकाके वास्ते श्रावकाकारधारक ३. और भावश्रावक–" श्रद्धालुतां श्राति शृणोति शासनं दानं वपेदाशु वृणोति दर्शनं । कृंतत्यपुण्यानि करोति संयमं, तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः ॥ १ ॥ इत्यादि श्रावक शब्दार्थ धारी. यथाविध श्रावक उचित व्यापारमें तत्पर होवे सो इहा ग्रहण करणा, शेष तीनोको यथा कथंचित् होनेसें.

प्रश्नः–आगममें अन्यथाभी श्रावकोके भेद सुनते है, यदुक्तं श्री स्थानांगे,

" चउविहा समणो वासगा पन्नत्ता, तं जहा अम्मापिइसमाणे १ नाय समाणे २ मित्तसमाणे ३ सव्वत्ति समाणे ४ अथवा चउव्विहासमणोवासगा पन्नत्ता, तं जहा आयंसमाणे १ पडाग समाणे २ खाणुसमाणे ३ खरंट समाणे ४, ये साधुओंकी अ-

पेक्षासें चार प्रकारके श्रावक जानने. ये नामादि चारोमें किसमें समवरतते है.

उत्तर–व्यवहार नयके मत करके ये चारो पूर्वोक्त नाव श्रावकही हैं, श्रावकवत् व्यवहारकरनेंसें. और निश्चय नयके मत करके शौकन समान और खरंट समान ये दोनों प्राये मिथ्यादृष्टि होनेंसें ऽव्यश्रावक है. शेष षट् नावश्रावक है. इन आगेंका स्वरूप आगममें ऐसा कहा है.—

" चिंतइ जइ कज्जाइं न दिट्ठ खलिनविहोइनिन्नेहो । एगंत वछलो जइजणस्स जणणी समोसङ्को ॥१॥ " नावार्थ साधुओ के सर्व कार्य आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, ओषधी प्रमुख जे होवे तिनके संपादन करनेकी चिंता राखे, संपादन करे; कदापि प्रमादोदयसें साधु समाचारीसें चूक जावे तब आंखोसें देखकेनी स्नेह रहित न होवे. साधु जनांका एकांत वत्सलकारक होवे सो माता समान श्रावक कहते है.

" हियए ससिणेहोच्चिय मुणीण मंदायरो विणयकम्मे । नमो साहूणं पराज्नवे होइ सुसहाओ " २ नावार्थ–हृदयमेंतो साधुओ उपर बहुत स्नेह रखता है परंतु साधुओकी विनय करनेमें मंद आदरवाला है, साधुओको संकट पमे तब नली रीते साहाय्य करे सो श्रावक नाइ समान है.

" नित्तसमाणो माणाईसिंरूसइअपुछिनकज्जे । मन्नंतो अप्पाणं मुणीण सयणान अप्नहियं " ३ नावार्थः—जब साधु किसी कार्यमें न पुछे तब रूस जावे परंतु साधुको अपने स्वजनोसेंनी अधिक मानता है सो मितसमान श्रावक है.

" थड्ढोछिद्दप्पेही पमायखलियाणि निच्चमुच्च रई सड्ढो । सवत्ति कप्पो साहु जणं तणसमं गणइ " ४ नावार्थ–अनिमानी

काष्ट वत कठिन होवे, ढीठ देखनेवाला होवे, प्रमादसें चूक जावे तो तीस दोषको नित्य कहे, साधु जनोको तृण समान गणे, सो श्रावक शौकन तुल्य है.

दुसरे चतुष्कमें—" गुरु जणिउ सुत्तथ्थो बिंबिज्जइ अवितहा मणे जस्स । सो आर्यससमाणो सुसावउ वन्निउंसमए " ॥१॥ जावार्थ—गुरुका कहा हुआ सूत्रार्थ अवितथ्यपणे जिसके मनमें बिंबित होवे सो आदर्श समान सुश्रावक सिद्धांतमें कहा है.

" पवणेण पडागाइव जामिज्जइ जो जणेन मूढेण। अविणिछिय गुरुवयणो सो होइ पडाइयातुलो " २ जावार्थ—जो मूर्खोंके कहनेसेजी पताकाकी तरे फिर जावे, गुरुका वचनका जिसको निश्चय नहि है सो पताका समान है.

" पडिवन्नमसंग्गहं नमूयइगीयथ्थ समणुसिठोवि । थाणु समाणो एसो अप्पजसी मुणिजणेणवरं ॥ ३ ॥ " जावार्थ—जो असत् आग्रह पकडा है तिसको गीतार्थके कहनेसेजी नहि छोडते है सो स्थाणु अर्थात् खीला, खुंटा, ठुंठ समान श्रावक है इतना विशेष है मुनिजनों विषे तिसका द्वेष नहि.

" उम्मग्ग देउस निन्हवोसि मूढोसि मंदधर्मोसि । इय सम्मं पिकहंत खरंट एसो खरंट समो. " ४ जावार्थ. तुं उन्मार्गका उपदेशक है, निन्हव है, मूढ है, मंद धर्मी है. इत्यादि. शुद्ध साधुको पूर्वोक्त वचनो करके जो खरंट कलंक देवे सो खरंट समान है. जैसे ढीली अशुचि द्रव्य स्पर्श करनेंसे पुरुषकोही लबेडती है तैसे शिक्षा देनेवालोकोंही दूषित करे सो खरंट समान.

इन पूर्वोक्त आठो जेदोंमेंसे शौकन समान और खरंट ये दोनो निश्चय नयसेतो मिथ्या दृष्टि है और व्यवहार नयसें श्रावक है, क्योंकि जिनमंदिरादिकमें जाते है.

भाव श्रावकका छ लक्षण.

पूर्वोक्त न्नाव श्रावकके लक्षण पूर्वसूरि सद्गुरु ऐसे कहते हुए है. करा है व्रत विषय अनुष्टान कृत्य जिसने सो कृतव्रत-कर्मा १ शीलवान् २ गुणवान् ३ ऋजु—सरल मन ४ गुरु सेवा कारी ५ प्रवचन कुशल—जैनमतके तत्वका जाननेवाला ६ एसा जो होवे सो न्नावश्रावक होता है. इन उहों गुणांका विस्तारसें स्वरूप लिखते है.

उहों लिंगोंमेंसें प्रथम कृतव्रतकर्माके चार न्नेद है. श्रवण करणा १ ज्ञानावबोध करणा २ व्रत ग्रहण करणा ३ सम्यक् प्रकारे पालना ४ तिनोंमें प्रथम सुननेकी विधि लिखते है. विनय बहुमान पूर्वक गीतार्थसें व्रत श्रवण करे. यहां चार न्नंग है, कोइक धूर्त वंदना करके ज्ञान वास्ते सुने परंतु वक्ता विषे न्नारी कर्मी होनेसे बहुमान न करे. डुसरा बहुमानतो करे परंतु विनय न करे, शक्ति रहित रोगी आदि. तीसरा दोनोंही करे, निकट संसारी. कोइक न्नारी कर्मी दोनोंही नहि करे सो अयोग्य है. इस वास्ते विनय बहुमान सार पुरुष गीतार्थ गुरु पासे व्रत श्रवण करे. गीतार्थ उसको कहते है जो वेद ग्रंथोके गीत पाठ, और अर्थका जानकर होवे. गीतार्थ विना अन्यसें सुने तो विपरित बोधका हेतु होवे. यह व्रत श्रवण उपलक्षण मात्र है तिस्सें जो ज्ञान सुने सो गीतार्थसे सुने, सुदर्शनवत्, यह एक व्रत धर्म. १.

सर्व व्रतोके न्नेद जाने तथा सापेक्ष, निरपेक्ष और अतिचारोको जाने. (बारां व्रतांका स्वरूप जैनतत्वादर्श, धर्मरत्न, आवश्यकादिसें जान लेने). संयम, तपादि सर्व बस्तुके स्वरूपके बोधवाला होवे, तुंगीआ नगरीके श्रावकवत्. २.

तीसरा जावजीव अथवा थोडे काल तांइ व्रत ग्रहण करे तो गुरु आचार्यादिकके समीपे ग्रहण करे, आनंदवत् व्रतके लेनेमें जो चर्चा है सो श्रावक प्रज्ञप्तिसें जान लेनी ३.

चौथा प्रतिसेवनं अर्थात् पालना सो रोगांतकमें तथा देवता मनुष्य, तिर्यंचादिकके उपसर्ग हुए जैसे भांगेसें ग्रहण करा है तैसे पाले परंतु चलायमान न होवे, आरोग्यद्विजवत्. उपसर्गमें कामदेव श्रावकवत्. इति प्रथम कृतव्रतकर्मका स्वरूप.

संप्रति शीलवान् दुसरे लक्षणका स्वरूप लिखते है. प्रथम आयतन सेवे. आयतन धर्मी जनोके एकठे मिलनेके स्थानको कहै. जहां साधर्मी बहुत शीलवंत, ज्ञानवंत, चारित्राचारसम्पन्न होवे सो सेवे अनायतन वर्जे. अनायतन यह है. भीलपल्ली–चौरोका ग्रामाश्रय-पर्वत प्रमुख हिंसक दुष्ट जीवोंके स्थानमें वास न करे. तथा जहां दर्शन भेदनी सम्यक्त्वके नाश करनेवाली निरंतर विकथा होती होवे सो महापाप अनायतन है, सो वर्जे इति प्रथम शील.

विना काम परघरमें न जावे–जावेतो चौर यारकी शंका होवे. दुसरा शील.

नित्य उद्भट वेष न करे. शिष्टोंको असम्मत वेष न पेहरे. तीसरा शील.

विकार हेतु, राग द्वेषोत्पत्तिहेतु वचन न बोले चौथा शील. बालक्रीडा, मूर्खोंका विनोद जूआदि व्यापार न करे, पांचमा शील. जो अपना काम साधे सो मीठे वचन पूर्वक साधे छठा शील. ये पूर्वोक्त षट् प्रकारके शील युक्त होवे सो शीलवान् श्रावक है.

तीसरा गुणवंतका स्वरूप लिखते है.

यद्यपि गुण बहुत प्रकारके औदार्य, धैर्य, गांज्ञीर्य प्रियंवद-त्वादिक है तोज्ञी इहां पांच गुणो करके गुणवान् ज्ञावश्रावकके विचारमें गीतार्थ मुनिवरोनें कहा है, वे गुण ऐसे है,

स्वाध्याय करणेमे नित्य उद्यमी, अनुष्ठानमेंज्ञी उद्यमी, गुरु आदिककी विनयमें नित्य प्रयत्नवान् होवे, सर्व प्रयोजन—इह लोक, परलोकिकमें कदाग्रही न होवे, ज्ञगवानके कहे आगममें

प्रथम स्वाध्याय गुणका स्वरूप लिखते है.

पठना १, पृच्छना २, परावर्त्तना ३, अनुप्रेक्षा, ४ धर्मकथा ५, ए पांचो वैराग्य निबंधन—वैराग्यका कारण विधि पूर्वक शेन-श्रेष्ठिवत् करे. तिनमें पठन विधि—" पर्यस्तिकामवष्टंज्ञं तथा पाद-प्रसारणं । वर्जयेच्चापि विकथामधीयन् गुरुसन्निधौ ॥१॥ पर्यस्तिका करके, अवष्टंज्ञ लेके, पग पसारके गुरुके पास न बेठे तथा वि-कथा न करे. पुछनेकी विधि—आसन उपर वा शैया उपर वैठा हुआ न पूछे, किंतु गुरुके समीप आ करके पगज्ञर बैठी हाथ जोडी पूछे. परावर्त्तनाकी विधि—इर्यावहि पडिक्कमी सामायिक करी मुख ढांकी, दोष रहित सूत्र पदच्छेद गुणे पढे. अनुप्रेक्षा गीतार्थ गुरुसें जो अर्थ सुना है, तिसका एकाग्र मनसें विचार करे. गुरुसें यथार्थ धारी होवे और स्वपरके उपकारकारक होवे ऐसी धर्म क-था करे शेनश्रेष्ठिवत् इति स्वाध्याय गुणका स्वरूप. करणनामा दुसरा ज्ञेदका स्वरूप—तप नियम वंदनादिकके करणेमें, कराव-वणेमें, अनुमोदनेमें नित्य प्रयत्नवान् होवे. आदि शब्दसें चैत्यवं-दन जिनपूजादि करणेमें तत्पर होवे, इति करण नामा दुसरा ज्ञेद. गुणवान् गुरुकी विनय करे. गुरुको देखके आसनसें उठे, गुरुको आवता जाणी सन्मुख जावे, गुरुको आगे मस्तकमें अं-जलि धरे. आप आसन निमंते, गुरु बैठे तब बैठे. वंदन करे,

सेवा भक्ति करे, गुरु जातेको पहुचाने जावे, यह आठ प्रकारका विनय है. पुष्पसालसुतवत्. इति तिसरा भेद. अनभिनिवेश—हठ रहित गीतार्थका कहा अन्यथा न जाने, सत्य माने, श्रावस्ती नगरीके श्रावक समुदायवत्. इति चौथा भेद. जिनवचन गुण रुचि पूर्वक—सम्यक्त्व पूर्वक सुने, विना रुचि श्रवण करना व्यर्थ है. क्योंकि सम्यक्त्व रत्न शश्रूषा और धर्मराग रूप होनेसे. शुश्रूषा और धर्मराग इन दोनों सम्यक्त्वके सद्भावि लिंग करके प्रसिद्ध है. जयंती श्राविकावत्, इति पांचवा भेद. इति भावश्रावकका गुणवंतनामा तिसरा भेद.

ऋजु व्यवहारी नामा भावश्रावकका चौथा गुण लिखते है. ऋजु व्यवहारगुणके चार भेद है. यथार्थ कहना, असंवादी वचन धर्म व्यवहारमें, क्रय विक्रय व्यवहारमें, साक्षी व्यवहारादिकमें सत्य बोलना. इसका भावार्थ यह है परवंचन बुद्धिसें धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म भाव श्रावक न कहे, सत्य और मधुर वचन बोले, और क्रय विक्रयमेंभी वस्तुका जैसा भाव होवे तैसाही कहे; मोंघेको सस्ता और सस्तेको मोंघा न कहे, राजसभामेंभी जूठ बोलके किसीको दूषित न करे, और जिन बोलनेसे धर्मकी हांसी होवे ऐसा वचनभी न बोले, कमल श्रेष्ठिवत्, इति प्रथमभेद. अब दुसरा भेद लिखते है, अवंचिका क्रिया—परको दुःख देनेवाली मन वचन कायाकी क्रिया न करे, हरिनंदीवत्. इति दुसरा भेद. अशुद्ध व्यवहारसें जो भाविकालमें कष्ट होवे तिसका प्रगट करना जैसे हे भद्र! मत कर पाप चोरी आदिक जिस्से इस लोक परलोकमें दुःख पावेगा. भद्रश्रेष्ठिवत्. इति तीसरा भेद.

सद्भावसें मैत्रीभावका स्वरूप कहते है. निष्कपटसें मैत्री करे, सुमित्रवत् क्योंकि मैत्री और कपटभावको परस्पर

छाया आतपकी तरे विरोध है, उक्तंच—

" शाठयेन मित्रं कलुषेण धर्मं, परोपतापेन समृद्धिभावं।
सुखे न विद्यां परुषेण नारीं, वांछंति ये व्यक्तमपंडितास्ते ॥ १ ॥

अर्थ—जे पुरुष शठतासें मित्र, मलिन तासें धर्म, परोपतापसें समृद्धि, सुखसें विद्या और कठोरतासें नारीकुं इछता है सो पुरुष पंमित नहि है, इति चतुर्थ भेद.

जेकर श्रावक पूर्वोक्त चारों गुणोंसें विपरीत वर्ते तो धर्मकी निंदा करावणेंसे अपनेकों और धर्मकी निंदा करनेवालोंको जन्म तकभी बोधि प्राप्त नहि होवे है. इस वास्ते श्रावक ऋजु व्यवहार गुणवाला होवे.

गुरु शुश्रूषा नामा पांचमा भाव श्रावकका लक्षण लिखते है. गुरुके लक्षण ऐसे है,

धर्मज्ञो धर्मकर्त्ताच, सदा धर्मप्रवर्त्तकः।
सत्वेभ्यो धर्मशास्त्राणां देशको गुरुरुच्यते॥ १॥

अर्थ—धर्मकुं जाननेवाला, धर्मका कर्त्ता, सर्वदा धर्मका प्रवर्त्तक और प्राणीयोकुं धर्मशास्त्रोका उपदेशक होवे सो गुरु कहेवाता है.

जो इन गुणों संयुक्त होवे सो गुरु होता है. तिस गुरुकी शुश्रूषा सेवा करता हुआ, गुरु शुश्रुक होवे सो चार प्रकार है, प्रथम सेवा भेद लिखते है. यथावसरमें गुरुकी सेवा करे, धर्मज्ञान आवश्यकादिकोंके व्याघात न करणेसें, जीर्णश्रेष्टिवत्. इति दुसरा कारण भेद. सदा गुरुके सद्भुत गुण कीर्त्तन करणेंसें प्रमादी अन्य जीवांको गुरुकी सेवा करणेंमें तत्पर करे. पद्मशेखर महाराजवत्. इति ओषध भेषज प्रणामनामा तिसरा भेद—औषध के-

वल द्रव्यरूप अथवा शरीरके बाहीर काममें आवे—नेषज बहुत द्रव्यका नेलसें बनी अथवा शरीरके अन्यंतर नोगमें आवे आ-शब्दसें अन्यनी संयमोपकारी वस्तु आप देवे, अन्य जनोंमें दी-लावे, सम्यक प्रकारे निष्पादन करे, श्री युगादि जिनाधीश जीव अनय धोषवत् गुरुके तांइ नक्तंच—

अन्नं पानमथौषधं बहुविधं धर्मध्वजं कंबलं,
वस्त्रं पात्र मुपाश्रयश्च विविधो दंडादि धर्मोपधिः ।
शस्तं पुस्तकपीठकादि घटते धर्माय यच्चापरं,
देयं दानविचक्षणैस्तदखिलं मोक्षार्थिने भिक्षवे ॥१॥

अर्थ—दानमें निपुण ऐसा पुरुषोंए अन्न, पान, विविध औषध, रजोहरण, कांबल, वस्त्र, पात्त नपाश्रय, विविध दंम प्र-मुख धर्मका नपधि और नत्तम पुस्तक पीठक, प्रमुख सब मो-क्षार्थी मुनिकुं देना चाहिए.

जो मन वचन काया गुप्तिवाले मुनिजनांको शुद्ध नावसें औषधी आदिक देवे सो जन्म जन्ममें निरोगी होवे.

नाव नामा चौथा नेद लिखते हैं. गुरुको बहुमान देवे, प्रीतिसार मनसें श्लाघा करे, संप्रति महाराजवत्. गुरुके चित्तके अनुसारे चले, गुरुको जो काम सम्मत होवे सो करे. नक्तंच—

" सरुषि नतिः स्तुतिवचनं, तदन्निमते प्रेम तद्द्विषि द्वेषः दानमुपकारकीर्तन, ममूलमंत्रं वशीकरणं ॥ १ ॥

अर्थ—क्रोधीसें नमस्कार और स्तुति वचन, तिनका स्ने-हीसें प्रेम और द्वेषीसें द्वेष, दान, नपकारकी प्रशंसा ओ मूल मंत्र शिवायका वशीकरण है. इति.

अथ प्रवचन कुशलनामा बम गुण लिखते है, सूत्रमें कुश ल १, अर्थ सूत्रानिधेय तिसमें कुशल २, नत्सर्ग सामान्योक्तिमें

कुशल ३. अपवाद विशेष कहनेमें कुशल ४. भाव विषे विधि-सार धर्मानुष्ठान करणेमें कुशल, ५. व्यवहार गीतार्थ आचरित रू-पमें कुशल ६. इन छहोंमे गुरु उपदेशसें गुण कुशलपणेको पा-म्या है. अथ इन छहोंका भावार्थ कहते है. उचित योग्य श्रा-वक भूमिका तक सूत्र पठण करे, प्रवचन माता और छ जीव निकाय अध्ययन पर्यंत आगम सूत्र और अर्थसें पढे. और अन्य-भी पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, कर्मग्रंथादि शास्त्र समूह गुरुगमसें पठण करे, जिनदासवत्. इति प्रवचन कुशलका प्रथम भेद.

सुणे सूत्रका अर्थ स्वभूमिकातक सुगुरु समीपे गीतार्थ गुरु समीप श्रवण करनेसें समुत्पन्न प्रवचन कौशल करके भाव श्रावक होवे, ऋषिभद्र पुत्रवत्. इति प्रवचन कुशलका दुसराभेद.

अथ उत्सर्गापवादनामा तीसरा चौथा भेद लिखते है. उ-त्सर्ग और अपवाद जिनमतमें दोनों प्रसिद्ध है, तिनका विषय विभाग करणा, कसवणा यथावसरमें सो जाने. तात्पर्य यह है कि केवल उत्सर्गही नही माने, न केवल अपवादही माने किंतु यथावसरमें जो योग्य होवे सो करे. क्योंकि उंचि जगाहकी अ-पेक्षा नीची प्रसिद्ध है, और निंचिकी अपेक्षा उंची प्रसिद्ध है. ऐसेही उत्सर्ग अपवाद दोनों तुल्य है. इस वास्ते यथावसरे दो-नोंमेंसें अल्प बहुत देखें तैसें प्रवर्ते, क्योंकि सिद्धांतमें जितने उत्सर्ग है तितनेही तिस जगे अपवाद है. इस वास्ते यथावसरे प्रवर्त्ते. दोनों गुणो उपर अचलपुरके श्रावक समुदायकी कथा जाननी. इति प्रवचन कुशले तीसरा चौथा भेद.

अथ विधिसार अनुष्टाननामा पंचम भेद लिखते है. धारण करे, पक्षपात करे, विधिप्रधान अनुष्ठानमें देव गुरु वंदनादिकमें तात्पर्य यह है–विधिसें करणेवालेका बहुमान करे. आपभी साम-

ग्रीके हुए विधि पूर्वक धर्मानुष्ठानमें प्रवर्त्ते. सामग्रीके अन्नावसें विधि न हो शके तो विधिका मनोरथ न त्यागे, अविधि करता हुआ विधिका मनोरथ करे तोन्नी आराधक है ब्रह्मसेन श्रेष्टिवत् इति प्रवचन कुशलका पांचमा न्नेद.

अथ व्यवहार कुशलनामा बगा न्नेद लिखते है. देश सुस्थित दुःस्थितादि, काल सुन्निक्ष दुर्निक्षादि, सुलन्न दुर्लन्नादि द्रव्य हृष्ट ग्लानादि न्नाव, इनको अनुरूप योग्य जाने. गीतार्थोंका व्यवहार जो जहां देशमें, कालमें, न्नावमें, वर्तमान गीतार्थोंनें उत्सर्गापवादिके जानकारोनें गुरु लाघव ज्ञानमें निपुणोनें जो आचरण करा है व्यवहार तिसको दूषित न करे. ऐसा व्यवहारमें तथा ज्ञानादि सर्व न्नावमें कुशल होवे, अन्नयकुमारवत्. इति प्रवचन कुशलका व्यवहार कुशल बगा न्नेद.

तिसके कहनेसें कथन करा प्रवचन कुशल न्नाव श्रावकका बगा लिंग ६.

यह उक्त स्वरूप प्रवचन कुशलके ब न्नेद. न्नाव श्रावकके लक्षण क्रियागत कहे है, जैसे धूम अग्निका लिंग है ऐसेही यह न्नाव श्रावकके लक्षण कहे है.

प्रश्न—तुम तो यह लक्षण क्रियागत कहते हो क्या अन्य न्नी लिंग है ?

उत्तर—न्नावगत सतरे लिंग अन्यन्नी है वे न्नी यहां लिखते है.

स्त्री, इंद्रिय, अर्थ, संसार, विषय, आरंन्न, गृह, दर्शन, गाडरिकादी प्रवाह, आगम पुरस्सर प्रवृत्ति, दानादिकमें यथाशक्ति प्रवर्त्तना धर्मानुष्टान करतां हुआ लज्जा न करे, सांसारिक न्नावमें रक्तद्विष्ट न होवे, धर्म विचारमें मध्य स्वन्नावे होवे, धन स्व-

जनादिकके प्रतिबंधसे रहित होवे, परके उपरोधसें काम भोग भोगे है, वेश्याकी तरे गृहवास पाले.

अथ इनका स्वरूप लिखते है. प्रथम स्त्री भेदका स्वरूप लिखते है. स्त्री कुशीलता निर्दयतादि दोषांका भवन है, चल चित्त है, अन्य अन्य पुरुषकी अभिलाषा करणेसे नरकके जानेको सीधी सम्रक है, स्त्रीको ऐसी जानके श्रेयार्थी पुरुष स्त्रीके वशवर्ती तदधीनचारी न होवे, काष्ठश्रेष्ठीवत्. इति प्रथम भेद.

अथ इंद्रियनामा दुसरा भेद. यहां इंद्रिय, श्रोत्र चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन, पांच भेद है. ये पांचो चंचल घोम्रेकी तरे दुर्गति, दुर्योनि, पदकी तर्फ जीवको खेंचके ले जाते है. इस वास्ते इनको दुष्ट घोम्रेकी तरे शोभनिक ज्ञानरूप लगाम करके वश करे, विजयकुमारवत्. इति दुसरा भेद.

अथ अर्थनामा तिसरा भेद. धनकों सर्व अनर्थका मूल जाणी तिसमें लुब्ध न होवे. उक्तंच—

अर्थानामर्जने दुःखं अर्जितानां च रक्षणे। नाशे दुःखं व्यये दुःखं धीगर्थो दुःख भाजनं ॥ १ ॥

अर्थ—द्रव्य उपार्जन करनेमें दुःख है. उपार्जन पीछे उसकी रक्षामें दुःख है. और नाश तथा खर्चमें दुःख है, द्रव्य दुःखका पात्रज है, उसको धिक्कार है. तथा धन चित्तको खेद कर्त्ता है. यथा—

राजा रोक्षति किंतु मे हुतवहो दग्धा किमेतद्धनं, किं वामी प्रभविष्णवः कृतनिभं लास्यंत्यदो गोत्रिकाः। मोषिष्यंति च दस्यवः किमु तथा नष्टा निखातं भुवि, ध्यायन्नेवमहर्निशं धनयुतोप्यास्तेतरां दुःखितः ॥ १ ॥

मेरा धन राजा ले जायगा, क्युं अग्नि जालेगा, क्युं मेरा

समर्थ ज्ञागीदार ले जायगा ? चोर लुंटेगा, पृथ्वीमें डाटनेंसें नाश होवे तो क्या होवे ? एसा धनवान् रातदिन दुःखी रहेता है. तथा क्लेश और शरीर परिश्रम तिनका कारण है, तथाहि—

" अर्थार्थि नक्रचक्राकुलजलनिलयं केचिदुच्चैस्तरंति, प्रोद्यच्छस्त्राग्निघातोत्थितशिखिकणकं जन्यमन्ये विशंति । शीतोष्णांभः शरीरग्लपिततनुलताः क्षेत्रिकां कुर्वतेऽन्ये, शिल्पं चानल्पभेदं विदधति च परे नाटकाद्यं च केचित् ॥ १ ॥

अर्थ—धनके वास्ते कोई कोइ लोक मगरझूमवाला समुद्रकूं तरत है, कोइ शस्त्रके घातसें अग्निकण प्रगट होवे ऐसें संग्राममें घूमते है. शीत, ताप और जलसें शरीरकुं ग्लानि करके खेती करते है. कोइ अनेक प्रकारकी कारिगरि करते है और कोइ नाटकादि करते है. तथा धन असार है, धनसें संपादन करनेसें, यदाह—

व्याधीन्नो निरुणद्धि मृत्युजननज्यानिक्षयेन क्षमं, नेष्टानिष्टवियोगयोगहतिकृतघृड् नच प्रेत्य च । चिंतावंधविरोधबंधनवधत्रासास्पदं प्रायशो, वित्तं वित्तविचक्षणः क्षणमपि क्षेमावही नेक्षते ॥ १ ॥ इस वास्ते बुद्धिमान् धनमें लुब्ध न होवे चारुदत्तवत्. भाव श्रावक अन्यायसें धन उपार्जनेमें थोभाभी न प्रवर्त्ते और न्यायसें उपार्जनेमें अत्यंत तृष्णावान्भी न होवे. तबतो क्या करे. जितना नफा होवे तिनमेंसें अर्ध धन धर्ममें खरच करे, बाकी शेष रहे तिससें शेष काम यत्नसें करे. इस लोक संबंधी यथायोग्य विचारी सो पूर्वोक्त अर्ध धन सात क्षेत्रोंमें खर्च करे. इति तिसरा भेद.

अथ संसारनामा चौथा भेद लिखते है. इस संसारमें रति न करे—क्या करके संसारका स्वरूप जाणिने कैसा है

संसारका स्वरूप—डुखरूप है. जन्म, जरा, मरण रोग, शोक आदि करके ग्रस्त होनेसें डुःख रूप है, तथा डुःख फल है. जन्मांतरमें डुःख नरकादि फल है. डुःखानुबंधि बारंवार डुःख बांधनेसें तथा विम्बनाकी तरें- जीवांको सूर, नर, नरक, तिर्य-ग, सुज्ञग, डुर्ज्ञगादि विचित्र रूप है. विम्बना जिसमें ऐसा चार गतिरूप संसारको असार सुख रहित जाणी इसमें रति, धृति न करे, श्रीदत्तवत्. इति चौथा ज्ञेद.

अथ विषयनामा पंचम ज्ञेद लिखते है, क्षणमात्र जिनसें सुख है ऐसे जो शब्दादि पांच विषय जिनको जहर समान परिणाम खोटे जानता हुआ, जैसें विष किंपाक फल खाते हुऐ, मधुरस्वाद दिखलाता है और परिणाममें प्राणाका नाश करता है ऐसेही विषय विरसावसान है, ऐसा जानता हुआ ज्ञाव श्रावक तिनमें आसक्त न होवे, जिनपालितवत्. ज्ञवज्ञीरु संसारवासमें चकित मनवाला विषयमें क्यों नहि गृद्ध करता है ? तिसने जाना है तत्वार्थ जिनवचन श्रवण करणेसें वे जिन वचन यह है. विषयमें सुख नहि है, निःकेवल सुखाज्ञिमान है परंतु सुख नहि है, जैसें पित्तातुर और धतुरा पीनेवालेको उपलमें और सर्व वस्तु सुवर्ण दिखती है. तथा ये विषयज्ञोगमें मधुरपणा मालुम होता है परंतु विपाकमें किंपाक फल समान है. पामा रोगके खाज समान है, डुःखका जनक है, मध्यान्ह कालमें मृगतृष्णा तुल्य है, विषयमें कुयोनि जन्म गहनमें पडता है, ज्ञोग महावैरी है, अनित्य है, तुच्छ है, मलमूत्रकी खान है, इत्यादि. इति पांचवा ज्ञेद.

अथ आरंज्ञनामा छठा ज्ञेद लिखते है. जिस व्यापारमें बहुत जीवांको पीमा होवे, खर कर्मादिमें सो आरंज्ञ वर्जे. क-

दाचित् ऐसा आरंभ करे बिना निर्वाह न होवे तब सम्यक् गुरु-लाघव विचार पूर्वक करे. परंतु निध्वंस परिणामोंसें न करे. स्वयंभूदत्तवत्. तथा निरारंभी साधुजनोंकी प्रशंसा करे, धन्य है है महामुनि जे मन करकेभी परपीडा नहि करते है, आरंभसें निवर्त्ते हैः त्रिकोटी शुद्ध भोजन करते है. तथा दयालु कृपावान् सर्व जीवोमें है. एक अपने जीवितव्यके वास्ते क्रोडो जीवांको दुःखमें स्थापन करते है तिनका जिवना क्या शाश्वता है ? ऐसे भाव श्रावक भावना करे. स्वयंभूदत्त कथा अत्र ज्ञेयाः इति छठा भेद.

अथ गेह नामा सातमा भेद लिखते है. गृहस्थावासको पाशबंध समान मानता हुआ गृहस्थवासें रहे, जैसें पाशीमें पड्या पक्षी उड नहि सक्ता है, तिस पाशीको कष्टरूप मानता है. ऐसे संसारभीरु माता पितादिकके संबंधसे संयम नहि धारण करशक्ता है तोभी शिवकुमारकी तरे भाव श्रावकगृहवासमें दुःखीही होता है. इस वास्ते चारित्र मोहनीय कर्मके नाश करनेको तप, संयम रूप प्रयत्न करता है. इति सातमा भेद.

अथ दर्शन नामा आठमा भेद लिखते है. भाव श्रावक दर्शन—श्रद्धा—सम्यक्त्व निर्मल अतिचार रहित धारण करे कैसा हो के—देव गुरु धर्मतत्वोंसें आस्तिक्यरूप परिणाम तिस करके संयुक्त होके, जिन, और जिनमत और जिनमतमें स्थिर पुरुषांको वर्जके शेष संसारको अनर्थरूप माने. निश्चयसारकी प्रतिपत्ति जिनमतकी प्रभावना यथाशक्ति करे, शक्तिके अभावसें प्रभावना करणेवालेकी उपष्टंभ बहुमानसें करे तथा प्रशंसा करे. जिनमंदिर, जिनचैत्य तीर्थयात्रादिसें उन्नति करे. गुरु धर्माचार्यकी विशेष भक्ति करे. इत्यादि धर्म कृत्योंसें अच्छी बुद्धिवाला निश्चल

निःकलंक सम्यग् दर्शन धारण करे, अमरदत्तवत्. इति आठमा भेद.

अथ गाडुरिका प्रवाह नामा नवमा भेद लिखते है. गाडरिका एडिका, गाडर, घेटी, भेड नामांतर तिनका प्रवाह चलना. एक भेडके पीछे सर्व भेडां चलने लगती है, इसका नाम गडुरिप्रवाह है. एक भेड भां करती है तब सर्व भां करने लग जाती है. आदि शब्दसें कीडे मकोडोंका प्रवाह तिनकी तरे ये संसारी लोक तत्वको तो समजते नहि है, एकही देखादेखी करने लग जाते है. इस गाडरी प्रवाहका यत्किंचित् स्वरूप हम यहां जैनमतादि और इतिहासादि पुस्तकोमें देखा है और जैसें सुना है और जो हमनें देखा है सो लिखते है. असली ईश्वर भगवंतका मत छोड के कुच्छकतो पीछले मतोकी बातां लेकर और कुच्छक स्वकपोलकल्पित बातां मिलाके नवीन मत चलाना तिस मतको जब एक भोला जीव अंगीकार करे तब तिसकी देखादेख अन्य जीव भेडोंकी तरे विना तत्वके जाने भां भां, हां हां करते हुए तिस मतवालेके पीछे चलने लग जाते है, तिसको हम गाडरिका प्रवाह कहते है, सो इस तरेका है.

प्रथम ईश्वर, भगवान् श्री ऋषभदेवनें जैनमत इस अवसर्पिणी कालमें इस भरतखंडमें प्रगट करा और तिसके पुत्र भरतनें श्री ऋषभदेवकी स्तुति और गृहस्थ धर्मका स्वरूप प्रतिपादन करनेंवाले चार वेद रचे थे. तिस अवसरमें भरतका पुत्र और श्री ऋषभदेवका चेला मरीचि नामा मुनि संयमसें भ्रष्ट हुआ, तब स्वकपोलकल्पित परिव्राजकोके मूल वेशका हेतु त्रिदंडादि रूप धारण करा. तिसका चेला कपिल मुनि हुआ, तिसनें स्वकपोलकल्पित सांख्य मुख्य नाम कापिल मत अपने शिष्य आसूरीकों उपदेश करा. षष्ठितंत्र नामा पुस्तक रचा. जैनमतकों

जैनमतको छोडके कितनेंक लोक इस मतकों मानने लगे जब नवमा सुविधनाथ पुष्पदंतका तीर्थ व्यवछेद हुआ तब ब्राह्मणाजासोंनें हिंसक वेदांके नामसें अनेक श्रुतियां रची तिनसें राजादिकोंके घरमें यजय याजन करनें लगे. जब विसमें अरिहंत मुनिसुव्रत स्वामीकी जलादमें वसुराजा शुक्तिमती नगरीमें हुआ तिसके समयमें क्षीरकदंबक उपाध्यायके पुत्र पर्वतनें महाकाल असुरके सहायसें महा हिंसक नवीन ऋचांओ रची. तदपीछे व्यासजीने सर्व ऋषि अर्थात् जंगलके ब्राह्मणोंसें सर्व श्रुतियां लेकर तिनके चार हिस्से करे. प्रथम हिस्सेका नाम ऋग्वेद रखा और अपनें पैल नामा शिष्यको दिया. दुसरें हिस्सेका नाम यजुर्वेद रखा और अपने शिष्य वैशंपायनकों दिया. तिसरे हिस्सेका नाम सामवेद रखा सो अपने जैमिनि नामा शिष्यको दिया. चोथे हिस्से का नाम अथर्व्ववेद रखा सो सुमंतु नामा शिष्यको दिया. इन चारों वेदोके चार ब्राह्मण जाग है, तिनके अनुक्रमसें नाम रखे ऐतरेय, तैतरेय, तांम, गोपथ. तिस अवसरमें वैशंपायन प्रमुखोंसें वैशंपायनके शिष्य याज्ञवल्यकी लडाइ हुइ, तब याज्ञवल्क्यनें और सुलसाने शुक्ल यजुर्वेद रचा. तिसका शतपथ नामा ब्राब्राह्मणजाग रचा. तिसमें लिखा है, याज्ञवल्क्यनें सूर्यके पास विद्या शीखके शुक्ल यजुर्वेद रचा है. यह सूर्य नामा कोइ ऋषि होगा. पीछे इनमेंसें जैमिनिने पूर्व मीमांसा रची. जब तिस मतकी बहुत वृद्धि हुइ तब तिस मतके प्रतिपक्षी ब्रह्माद्वैत मतके प्रतिपादक सांख्यमतके साहाय्यसें ब्रह्मसूत्र रचे. तिनके अनुसार अनेक ऋषियोंनें केन कठ मुंम छांदोग्यादि उपनिषद् रचे. एकदा समये मगध देशमें गौतम ऋषिको ब्राह्मणोंने बहुत सताया तब गौतमनें उपनिषद् और वेदके मतको खंमन करने वास्ते ईश्वर कर्तृ नैयायिक मत चलाया, तब लोक इसको मानने लगे.

तब ईश्वर वादीओंको देखके पतंजलिने सेश्वरसांख्य अपरनाम पातंजल मत चलाया. उधर उपनिषदवालोनेभी वेद और उपनिषदोंमें ईश्वर दाखल करा. उधर जैनमतवालाभी आता था. तिस समयमें हिंदुलोक मतोंके वास्ते परस्पर बहुत विरोध करने लगे, तब अनेक ऋषिओके नामसें अनेक स्मृतिओ रची. कीसीमें कुछ और कीसीमें कुछ लीख दीया. ऐसें गडुरी प्रवाह चला आया. जब श्रीपार्श्वनाथ जिनको हुआ २८०० वा २३०० वर्षके लगभग गुजरे है तिनके निर्वाण पीछे. तिनोंके शिष्योंके शिष्योके पीछे कीसी गामके क्षत्रिके पुत्रनें जैनमुनि पासे दिक्षा लीनी साधुपणेमें तिसका नाम बुद्धकीर्त्ति रखा सो सरजू नदीके किनारे उपर किसी पर्वतमें तप करता था, तिसके मनमें तप करता अनेक कुविकल्प उत्पन्न हुए, तब तिसने जैनमतकी कितनीक वास्ते लेकर योगाचार विज्ञानाद्वैत क्षणिकवाद नामा मत चलाया. तब लोग उसको मानने लगे, तब तिस मतके चार मत हुए. योगाचार १, माध्यमिक २, वैभाषिक ३, सौत्रांतिक ४. तब लोक चारो मतांको मानने लगे. तिसकी परंपरामे मौदगलायन और शारिपुत्र और आनंद श्रावक हुए, इनोने बौधमतकी वृद्धि करी. जब महावीर स्वामिके पीछे राजा अशोक जैन मतको छोडके बौद्ध हुआ तिसने अत्यंत बौद्ध मतकी वृद्धि करी. अशोक राजाके पौत्र संप्रति राजानें फिर जैनमतकी वृद्धि करी. बौधोके और जैनमतके बलसें वेदमत, अद्वैत पातांजल, सांख्य प्रमुख मतो बहुत कम हो गये. तिस समय संवत ७००० के लगभग कुमारिलभट्ट उत्पन्न हुए तिनोनें मीमांसाके उपर वार्त्तिका रची. तिसमें कितनेक हिंसक काम निषेध करके और मनकल्पनासें कितनेक वेदश्रुतियोंके नवीन अर्थ बनाके फिर वैदिक मत चलाया, लोक

तिसको मानने लगे. तिस समयमेंही शंकरस्वामी उत्पन्न हुए, तिसनें विचार कियाकी जैनमत और बौधमत मानके अब लोक वैदिक मतकी हिंसा कदापि नहि मानेगे तिस वास्ते समयानुसारी उपनिषदो उपर भाष्य रची. तिसके समयमे पुराने शास्त्रोमें कीतनीक बातां निकाल दिनी और नवीन रचना करी. तिनके समयमें नवीन पुराण, उपपुराण नामसें बहुत शास्त्रों रचे गये. शंकर स्वामीनें राजाओका बल पाकर बौद्धमतवालोंको हिमालयसें लेकर श्वेतबंधु रामेश्वर तक कतल करवा माला परंतु जैन मत सर्वथा नष्ट नहि हुआ, किंतु कम हो गया. शंकरस्वामिनें अद्वैतमत, शैवमत और वाममतके मुख्य देव श्री चक्रको द्वारिका शृंगेरी प्रमुख मठोंमे स्थापन करा, तब लोक तिनको मानने लगे. तिनके पीछे रामानुज उत्पन्न हुआ. संवत ११३३ के लगभग तिसने शंकरके मतको खंडन करके श्री वैष्णव चक्रांतियोका मत चलाया और उपनिषदोपर शंकरभाष्यसें विरुद्ध भाष्य बनाया, लोक तिसको मानने लगे. तिस पीछे संवत १५०० के लगभग वल्लभाचार्यनें रास विलासी मत चलाया. वैष्णवमतमेंसें अनेक शाखा निकली. निंबार्क, मध्वकें रामानंदजीने वैरागीओका मत चलाया. गुजरात देशमें १०० वर्ष लगभग गुजरे है तिस समयमें एक ब्राह्मणने स्वामिनारायणका पंथ चलाया है. पीछले सर्व मतोंको रद करते है. इस मतकें चलानेवालेका चालचलन कैसी होवेगी यह तो हम देखते है. परंतु तिनकी गादीवालेको तो हम देखते है. करोडो रुपइओकी जमा उनोंने अपने सेवकोसें एकठी करी है, ऐसी बात लोक कहते है. और अस्वारी वास्ते सर्व वस्तु मोजूद है. गहना गांठा पहनते है, स्त्रीओंसें विवाह करते है, स्त्रीओंसें भोग भोगते है, लडके उत्पन्न करते है, खुब खाते और मजे उडाते है.

और जो उनके चेले साधु है वे दो तरेके है. एक धवले वस्त्र रखते है, रुपइए रखते है, उघराणी करके महंतको देते है, और जो भगवे वस्त्र रखते है. वे तुंबा रखते है रुपईये नहि रखते है, जुत्ते पेहरते है; अस्वारिपर चढते है, माथे उपर फेंटा बांधते है, स्नान करते है, खुब नोंतरेसे जिमते है, लोकोंकों कहते है नववाम सहित शील पालते है, इनके भक्तजन जैनीओ की तरे कांसिये बजाते है. इस मतको गुजरातमें रजपुत, कुनबी, कोली प्रमुख बहुत लोको मानते है. इनोंने मत बहुत गुजरातमें चलाया है. उधर सिकंदर लोदी बादशाहके समयमें काशीके पंडितोसें लम्भिडके और पतंजल शास्त्र कुच्छक सुण सुणांके कुच्छ मनकल्पित गप्पे मिलाके कबीर जुलाहेनें कबीरमत चलाया. लोक तिसकोभी मानने लगे. कबिरने मूर्ति पूजन निषेध करा. तिसके पीछे तदनुयायी वेद, पुराण और, जैनमतके आर मारफतवाले मुसलमानोके मतसें कुच्छक बात लेकर नानकसाहिब बेदि क्षत्रिनें नानकपंथ चलाया, तिसको लाखो लोक मानते है. अकबर बादशाहकी वखतमें दादुजीने दादुपंथ चलाया, तिसको हजारो लोक मानने लगे. उधर तुकाराम भक्तने दक्षिणमें भक्तिपंथ चलाया, तिसको हजारो लोग मानने लगे. दीह्लीके पास बुडाणी गामके रहनेवाले गरीबदास नामा जाटनें गरीबदास पंथ चलाया. तिसके संप्रदायी साधु परमानंद, ब्रह्मानंद, हंसराम प्रमुख अब वेदांती बन रहे है. ब्रह्मानंदतो भाषाकवित बनानेमें कवि बन रहा है, इस मतको लोग मानने लगे. उधर नानकसाहेबके समयमे गोरखनाथने कानफाडे योगीओका मत चलाया, और सूरोदय विगेरे ग्रंथ रचे. तिसके पीछे मस्तनाथने नास्तिक कानफाडे जोगीओका पंथ चलाया. इस पंथका महंत दीह्लीके पास बाहेर गाममे रहता है, इनकोभी लोक मा-

नने लगे. मेवामके शाहपुरमे रामस्नेही पंथ चलाया. निःकेवल सर्व दीन राम–राम–राम रटते है. जियानीके पास मेडराज और नानकीने एक मस्कर पंथ निकाला है, तिसकोजी कितनेक मानते है. पंजाबमे जाइरामसिंह सुतारने कुकापंथ चलाया है, तिसको हजारो लोक मानते है. गुरु गोविंदसिंहने निर्मला पंथ काढा, अब वेदांत मानते है. चक्कु, कटे, रोडे, गुलाबदासी इत्यादि छोटे छोटे अनेक पंथ निकले है सर्व पंथवाले अपनी अपनी खीचमी न्यारी न्यारी पकाते है. एक डुसरे मतको जूठा कहता है, आप सच्चा बनता है. उधर युरोपीअन लोकोने हिंडुस्थानमे इसाइीके मतका उपदेश करणा शुरु किया है. उपदेशसें, धनसें, स्त्री देनेसें लोकोको अपने मतमे बेप्टिझम् देके मिलाते है उधर बंगालेमे रायमोहन, केशवचंड, नवीनचंड, विगेरे बाबुओनें ब्रह्मसमाज मत खमा करा है. तिसका कहनाँ ऐसा है कि ईश्वरका कहा पुस्तक जगतमें कोईजी नहि है. लोकोनें अपनी अपनी बुद्धिसें पुस्तक बनाके ईश्वरके नामसें प्रसिद्ध करे है, पुरुषकों नेक काम करना चाहिये, परजव है वा नहि, नरक स्वर्ग कोन जाने है कि नहि. इत्यादि मतोंसे आर्य लोकोंकी बहुत डुर्दशा हो रही है तोजी इतनेमें दयानंद सरस्वतिकोंजी नवीन मत चलानेकी हिरस उत्पन्न जइ. तब अपनी अक्कलसें खुब विचारा और शौचा होवेगा कि जेकर ब्राह्मण, सन्यासी, वैष्णव वगैरां के पुस्तकानुसार उपदेश करूंगा तो प्रतिवादीओकों उत्तर देना कठिन पमेगा, और ब्रह्मा, शिव, विष्णु ये देव ठीक नहि और पुस्तकजी सन्यासी ब्राह्मणोंने बहुत जूठे रच दिये है, तिनके माननेसें आदमीका बहुत फजिता होता है, प्रतिवादीओकों उत्तर देनाजी मुशकील है, इस वास्ते वेदकी संहिता ईश्वरकी कथन करी हुइ है, एक ईशावास्यक उपनिषद् छो-

न्नि बाकि शेष ज्ञपनिषद्, वेदोंके चारे ब्राह्मणन्नाग, और सर्व स्मृतिओ, सर्व पुराणादि प्रमाणिक नहि है, जितने तीर्थ गंगा विगेरे है वे सर्व मिथ्या कल्पित है, वेदकी संहिताके जे प्राचीन न्नाष्य, टीका, दीपिकादि है वे न्नी यथार्थ नहि है, इस वास्ते अपनी बुद्धिसें दो वेद अर्थात् ऋग् और यजुर्वेद ज्ञपर न्नाष्य रचना शुरु करा. (सो हमने अधूरा देखा है) दयानंदजीतो अजमेरमें काल कर गये संवत् १९४० में मैंने सुणे है, सो कहा जाने न्नाष्य पुरा हुआ के नहि. हमारी समजमें दयानंदने बहुत बाते जैनमतसें मिलती कथन करी है. इतनाही फरक है कि दयानंद सरस्वति अठार दूषण वर्जित पुरुषका कथन मान लेता और घृतादि सुगंधी वस्तुका हवन, यजन करना गेड देता. जगतकों प्रवाहसें अनादि मान लेता और सदामुक्त रहना जीवांकां मान लेता तो दयानंद परमानंद सरस्वति हो जाता. परंतु न्नगवंतनें ऐसाही ज्ञानमें देखाथा सो बन गया. इसके मतमें बहुत अंग्रेजी, फारसीके पढनेवाले लोक है, वे कदाग्रहसें लोकोंसें मतकी बावत झगडते फिरते है, परंतु ब्रह्म समाजीओनें और दयानंदजीनें कितने हिंदुओको इसाही होनेंसें रोका है. ये कबीरसें लेकर दयानंदजी तक सर्व मतोंवाले मूर्तिपूजन नहि मानते है. बाकी अन्य जो देश देशांतरोंमें नवीन नवीन, गेटे गेटे पंथ निकले है वे सर्व आर्योंकी बुद्धि बीगाडने के हेतु है, ये सर्व कितनेक हिंदुलोक अंधी गदही समान है. जैसें अंधी गदहीको अपने मालीककी तो खबर नहि. जिसने वांसे पर दंडा मारा और कान पकडा सोही ज्ञपर चढ बेठा. इसी तरें हिंदु कितनेक है, जिसनें नवीन पंथ चलाया तिसके पीछेही लग जाते है. ज्ञधर जैनमतमेंसें सात निन्हव निकले परंतु तिनका मत नहि चला है. श्रीमहावीरके निर्वाण पीछे ६०९ वर्षे दिगंबर मत

नीकला, तिसके चार मत अर्थात् संघ बने. मूलसंघ, काष्ठासंघ माथुरसंघ, और गोप्य संघ. इनमेंसें वीसपंथी, तेरापंथी, गुमानपंथी, तोतापंथी, इनकेन्नी परस्पर कितनीक बातोका विरोध है. और मूल श्वेतांबर मतमेंसें पुनमीआ निकला, पुनमीएसें अंचलीआ निकला, नागपुरीआ तपामेंसें पासचंदीआ मत निकला; पीछे लुंपक लिखारीनें विना गुरुके जिन प्रतिमाका उत्थापक सन्मूर्छिम पंथ निकाला, लुंपकमेंसें बीजा नामकनें बीजा मत निकाला कडुआ बनीयेंनें कडुआ मत निकाला, धर्मसी ढुंढीएनें आठ कोटि पंथ निकाला, लवजीनें मुखबंधे ढुंढकोका पंथ निकाला, धर्मदास छीपीनें गुजरातके मुखबंधे ढुंढकोका मत निकाला, रघुनाथ ढुंढकके चेले न्नीषम ढुढकनें तेरापंथीओका पंथ चलाया, रामलाल ढुंढकनें अजवी पंथ निकाला, वखता ढुंढकनें कालवादीओका मत चलाया, अब आगे क्या बस हो गइ है. वहुत कुमती नवीन पंथ चलावेगे, इन पुर्वोक्त सर्व मताको परस्पर विरोध है. इन सर्व मतोके माननेवाले हिंडु न्नेड तुल्य है; जैसे एक न्नेम न्नां करती है तब सर्व न्नेमें न्नां करती है. इस वास्ते हिंडुलोक सर्व मतको छोमके नवीन मतोके माननेंसें गडुरी प्रवाहकी तरें चलते है, और हल्लो हल्लो करते फिरते है. कोइ इसाइ बनता है, कोइ महमदका कलमा पढता है, कोइ कुछ करता है और कोइ कुछ करता है तत्व सर्व मतोके शास्त्र यढके कोइ नहि निकालता है. इस वास्ते गडुरिका प्रवाह करते है. तिसको बुद्धिमान् परिहरे. कुरुचंद्रनरेंद्रवत्. इति नवमा न्नेद.

अथ आगम पुरस्सर सर्व क्रिया करे ऐसा दशमा न्नेद लिखते है. मुक्तिके मार्गमें अर्थात् प्रधान लोक मोक्ष तिसका मार्ग ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपमें प्रमाण कोइ नहि है. एक राग द्वेश-

दि अठारह दूषणके जितनेवाले जिनके कहे सिद्धांतको वर्जके, क्योंकि जीनागम जूठा नहि है. उक्तंच—

“ रागाद्वाद्वेषाद्वा मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतं । यस्य तु नैते दोषास्तस्यानृतकारणं किं स्यात् ॥ १ ॥ ”

अर्थ–जे राग, द्वेष और मोहसें जूठा वाक्य बोलते है, जीसकुं ए दोष नहिं लागता है, सो असत्यका कारण क्युं न होता है.

जिनागम पूर्वापर विरुद्ध नहि है, इस वास्ते सत्य है. तथा धर्मका मूल दया है और जिनागममें जो क्रिया करणी कही है सो सर्व दयाकीही वृद्धि करती है, इस वास्ते भगवंतनें प्रथम सामायिक कथन करा है; और क्षांति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, अकिंचन. ब्रह्मचर्यादि है ये सर्व दयाके पालक कथन करे है. इस वास्ते जिनागम समान कोइभी पुस्तक प्रमाण प्रतिष्ठित नहि है. इस वास्ते सर्व क्रिया, चैत्यवंदनक, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमणादि (चैत्यवंदन, गुरुवंदन, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण विधि सर्व धर्मरत्नकी वृत्तिसें जाननी) बहुत विस्तार है इस वास्ते इहां नहि लिखी है. सर्व विधि वरुण महाश्रावकवत् करे. इति दशमा भेद.

अथ अग्यारमां यथाशक्ति दानादिकमें प्रवर्त्ते सो गुण लिखते है. अपनी शक्ति न गोपवे और जिस्से आत्माको पीमा न होवे, परिणाम भग्न न होवे तेसें दानादि चार प्रकारके धर्ममें चंद्रोदय राजाकी तरें आचरण करे. कैसे आचरण करे जैसें बहुत काल तक दानादि करणेमे सामर्थ्य होवे. इहां भावार्थ यह है. बहुत धन होवे तो अति तृष्णावान् कृपण न होवे. धन थोमा होवे तो अति उदार न होवे, जिस्से सर्व धनका अभाव होवे

पीछे डुःखी होजावे. इसी वास्ते आगममें कहा है, "लाभोचिय-दाणे, लाभोचियपरिभावे, लाभोचियनिहीगरे सियासो" ऐसे करता हुआ बहुत कालमें प्रभूत दान देवे. ऐसेही शील तप भावमेंभी विचार लेना. पारिणामिक बुद्धिसें विचारके धर्ममें प्रवर्त्ते, चंद्रोदयवत्.

चतुर्विध धर्मका स्वरूप.

अथ दान, शील, तप, भावना, इन चारोंका स्वरूप इस जगे भव्य जीवोंके जानने वास्ते धर्मरत्न शास्त्रकी वृत्तिसें लिखते है, तिनमेंसें प्रथम दानके तीन भेद है, ज्ञानदान, अभयदान, धर्मोपग्रहदान तिनमें ज्ञानदान इस तरेंका है. जीवादि नव पदार्थका विस्तार और उभय लोकमें करणीय कृत्य जिस करके जीव जाणे तिसको ज्ञान कहते है, सो ज्ञान पांच प्रकारका होता मतिज्ञान; श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, और केवलज्ञान तिनमें मति ज्ञानके तीनसो बत्तीस भेद है, और श्रुतज्ञानके चौदह भेद है, अवधिज्ञानके दो भेद है, मनः पर्यायज्ञानके दो भेद है, केवलके भवस्थ, अभवस्थ दो भेद है. इन पांचो ज्ञानका स्वरूप अनुमाने १०००० लोकप्रमाण भाष्यटीकासें विशेषावश्यकमें कथन करा है, तहांसें जान लेना. इन पांचों ज्ञानमेंसें व्यवहारमें श्रुतज्ञान उत्तम है, दीपककी तरें स्वपरप्रकाश होनेंसें. इस वास्ते श्रुतज्ञान प्रधान है. श्रुतज्ञान मोह महांधकारकी लेहेरोके नाश करणेंको सूर्य तुल्य है, और ज्ञान दिष्ट, अदिष्ट, इष्ट वस्तुको मेलनेको कल्प वृक्ष है. ज्ञान दुर्जय कर्मकुंजरकी घटाके नाश करणेकों सिंह समान है. ज्ञान जीव, अजीव वस्तुका विस्तार देखनेको लोचन है. ज्ञान करके पुण्य पाप जाणीने पुण्यमें प्रवृत्ति और पापसें निवृत्ति करे, पुण्यमें प्रवर्त्तमान हुआ स्वर्ग,

अपवर्गका सुख पामे, और पापसें निवृत्ति करे तो नरक, तिर्यंच-के फुःख पापसें बुटे. जो अपूर्व ज्ञान पढे सो अन्य जवमें तीर्थंकर पद पामे, जो पढावे परको सम्यग् श्रुत तिसका फल हम क्या कहे यद्यपि बहुत दिनोंमें एकपद धारण करे, पक्षमें अर्ध श्लोक पढे तोजी उद्योग न बोडे. जो ज्ञान पढनेकी इच्छा है तो अज्ञानी प्राणीजी बहुमान पूर्वक माषतुषवत् ज्ञान पढनेमें उद्यम करे तो शीघ्रही केवल ज्ञान पामे. यह ज्ञान निर्वाणका कारण और नरकका वारणेवाला है. जला मुनिजी ज्ञान रहित होवे तोजी कदापि मुक्ति न होवे. संविज्ञपक्षी जैसें सम्यक्त्व सहित सुदृढ ज्ञान धरता है सो अच्छा है; परंतु ज्ञान विहीन तीव्र तप चरणमें तत्पर होवे तो ठीक नहि. जो जीव जिनदीक्षा पाकर पुनः पुनः संसारमें भ्रमण करता है सो परमार्थके न जाननेसें, ज्ञानावरणके दोषसें ज्ञानहीन चारित्रमें उद्यतजी निर्वाण न पामे, अंधेकी तरें दोमता हुआ संसार कूपमें पमे. अज्ञानी वैराग्यवानजी जिनजाषित साधुश्रावकधर्म विधि पूर्वक कैसे कर सके. जे सकल जगतको करतलगत मुक्ताफलवत् जानते है और ग्रह, सूर्य, चंद्र, नक्षत्रकी आयु जानते है ये सर्व ज्ञानदानका प्रजाव है.

दानका स्वरूप.

ज्ञान दान देता हुआ जगतमें जिन शासनको वहता है, श्री पुंडरीक गणधरकी तरें अमोल परम पद पावे. तिस वास्ते ज्ञानदान देना चाहिए, और ज्ञानवानमुनिके पीबे चलना चाहिये और कल्याणके इन्नकनें सदाज्ञानकी जक्ति करणी चाहिये. इति ज्ञानदान.

फुसरा अजय दान—सर्व जीवांकी रक्षा करणी ऐसा दयाधर्म प्रसिद्ध है, एकही अजयदान सर्व जीवांको देकर वज्रायु-

थकी तरें क्रममें प्रक्षीण जरामरण सिद्ध होवे. जवनीरू जीवोंको शरण रहितोंको जाणीने स्वाधीन अजयदान सब जीवने देना चाहिये. इति अजयदान.

धर्मोपग्रहदान अन्नादिदान आरंजसें निवृत्ते मुनियोंको देवे. इस दानके प्रजावसें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, मंमलीक जगतमें अधिक पदवीवाला होता है, सो सुपात्र दानसें होता है. जैसें जगवान श्री ऋषज जगतनाथ हुआ घृतके दान देनेसें, और मुनियोंको जक्तदान देनेसें जैसें जरत चक्रवर्ती हुआ. मुनिवरका दर्शन करनेसे एक दीनका पाप नष्ट होता है, और जो कोइ मुनिको दान देवे तो तिसके फलका तो क्या कहेना है. ज्यां समजाववाला मुनि प्रवेश करे तो वो घरजी पवित्र है. साधु विना जिनधर्म कदापि प्रगट नहि हो सकताहै, इस वास्ते मुनियोंकों शुद्ध दान गृहस्थनें देना चाहिये. और सुपात्र विना अनुकंपादान सर्व जीव जूखे, प्यासे, नंगे, रोगी प्रमुखकों अपनी शक्ति अनुसारे देना चाहिये. गृहस्थोसें शुद्ध तपजी नहि हो शकता है, और विषयासक्तोंसें शीलजी पूर्ण नहि पल शकता है, आरंजी होनेसें जावी कठिन होता है, इस वास्ते गृहस्थके दानही मुख्य स्वाधीन है. ऐसे दानके तीन जेद है.

शीलका विचार.

शील है सो अपने कुल घर नजस्थलमें चंद्रमाकी तरें जगतमें कीर्त्तिका प्रकाशक है. नर, सुर, शिव सुखका करणेवाला शील है सो सदा पालना चाहिये. जाति, कुल, रूप, बल, श्रुत, विद्या, विज्ञान, बुद्धि करके रहितजी शीलवान् पुरुष सर्वत्र पूजनीय है, सो शील दो तरेंका है, देश और सर्व; तिनमें देशशील सम्यक्त्व मूल बारा व्रत गृहस्थके है और साधुओके अढारह ह-

जार शीलांग निरतिचार जावजीव विश्राम रहित धारण करणा सर्वशील है. लघुकर्मी और महासत्ववानो जीव विषम आपदामेंजी पमा हुआ मन वचन काया करके शील पालता है सीताकी तरें.

तपका विचार.

असंख्य जावोंमें उपार्जित कर्मरूप कचवरके पुंजको उमावनेमें पवन समान ऐसा तप, शीलयुक्तकोंजी यथाशक्ति करना चाहिये, सो तप दो प्रकारका है, बाह्य ने अज्यंतर; दोनोंके ठ ठ जेद है. इतने कर्म नरकवाला जीव बहुत हजारो वर्ष तक दुःख जोगनेंसें क्षय नहि कर शक्ता है. जिसने कर्म चतुर्थजक्त एक उपवास शुज जावांसे करनेवाला क्षय कर शकता है. तीव्र तप चरण करनेंसें सिंह समान साधु तीर्थकी उन्नति करके विष्णुकुमारवत् परम पदको प्राप्त हुए है. इस वास्ते तपयुक्त साधुजनोकी जक्ति करे और आपजी कर्मक्षय करणे वास्ते तप करे. इति तप.

भावका विचार.

शील पालो, दानजी देवो, तपजी करो परंतु निर्मल जाव विना सर्व करणी निष्फल है, इक्षुके फुलवत्. शुज जावकी वृद्धि वास्ते अनित्यादि बारां जावना जव समुद्रमें नावा समान जावनी चाहिये. नाक विना जैसे रूप और लक्ष विहीन पंमित, जाव विहुणा धर्म ये तीनो हसनेही योग्य है. जिसनें पूर्व जवमें सुकृत्य नहि करा, मरुदेवी स्वामिनीकी तरें शुज जावनाके वशसें जीव निर्वाण पद पामे है. इति जावना. इति अग्यारमा जेद.

अथ विहीक नामा बारमा गुण लिखते है. हितकारी,

पच्यकारी इसलोक परलोकमें पाप रहित षमावश्यककी क्रिया जिनपूजादि निरवद्य क्रिया तिसको सम्यग् गुरुके उपदेशसें अंगीकार करता हुआ, सेवता हुआ लज्जा न करे. कैसी है क्रिया, चिंतामणि रत्नकी तरें डुर्लभ पावणी है, तिस क्रियाको देखके जेकर मूर्ख लोक हांसीनी करे तोनी लज्जा न करे. दत्तवत्, इति बारमा नेद.

अथ अरक्तद्विष्ट नामा तेरमा गुण लिखते है. देवकी स्थितिके निर्बंधनकारण धन, स्वजन, आहार, घर, क्षेत्र, कलत्र, वस्त्र, शस्त्र,यानपात्रादिक जे है तिनमें रागद्वेष रहितकी तरें वास करे, संसार गत पदार्थोंमें अत्यंत गृद्धि न करे, शरीरके निर्वाहकी वस्तुमें अरक्तद्विष्ट न होवे, ताराचंद्रनरेंद्रवत्. इति तेरमा नेद.

अथ मध्यस्थ नामा चोदमा नेद लिखते है. उपशम कषायका अनुदय तिस करके सार पधान धर्मस्वरूप जो विचारे सो उपशम सार विचारवाला नाव श्रावक होता है. कैसे ऐसा होवे, विचार करता हुआ राग द्वेषसें बाधित न होवे, सो दिखाते है. मैंने यह पक्ष बहुत लोकोंके समक्ष अंगीकार करा है, और बहुत लोकोंने प्रमाण करा है. अब में इस पक्षको कैसे डोडुं यह विचार मध्यस्थके मनमें नहि आता है, इस वास्ते रागनी पीडा नहि कर शक्ता है, तथा मेरा यह प्रत्यनीक है, मेरे पक्षको दूषित करनेसें; इस वास्ते इसको बहु जनो समक्ष खिष्ट करूं, सत्, असत् दूषण प्रगट करी आक्रोश देने करके तिरस्कार करूं. मध्यस्थ पुरुष ऐसे द्वेष करकेनी पीडित नहि होता है किंतु मध्यस्थ सर्वत्र तुल्यचित्तहितकानी अपना और परका उपकार वांडता हुआ असत् आग्रह सर्वथा गीतार्थ गुरुके वचनसें त्याग देता है प्रदेशी महाराजवत्. इति चौदमा नेद.

अथ असंबद्ध ऐसा पंदरवा जेद लिखते है. विचार निरंतर करता हुआ तव, मल, धन, स्वजन, यौवन, जीवित प्रमुख सर्व वस्तु क्षणजंगुर है, ऐसा जानता हुआ बाह्य संबंधजी बाह्य वृत्तिसें प्रतिपालन वर्धनादि करके संयुक्तजी है तोजी तन, धन, स्वजन करि हरि प्रमुख वस्तुओमें प्रतिबंध मूर्छा न करे, नरसुंदर नरेश्वरवत्. जाव श्रावक ऐसा विचारता है, जोरू करके द्विपद चतुष्पद क्षेत्र, घर, धन धान्य, सर्व. एक कर्म डुसरा आत्मा यह आत्मा कर्मके वश जैसें अच्छे जुंमे कर्म करे है तैसे अच्छे जुंमे परजवको जाता है. कोइ दिनकी बाजी स्वप्नेंइजालवत् है. हे चिदानंद ! इनमेंसे तेरी वस्तु कोइ नहि है. इति पंदरवा जेद.

अथ परार्थ कामोपजोगी ऐसा सोलमा गुण लिखते है. यह संसार अनेक डुःखकां जाजन है. यतः—

" डुःखं स्त्रीकुक्षिमध्ये प्रथममिह जवेद् गर्जवासे नराणां बालत्वे चापि डुःखं मललुलिततनुः स्त्रीपयःपानमिश्रं । तारुण्ये चापि डुःखं जवति विरहजं वृद्धजावोप्यसारः संसारे मर्त्य मुक्त्वा वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित्. " ॥ १ ॥

अर्थ—प्रथम स्त्रीका उदर में गर्जावासमें डुःखहै, पीछे बाल वयमें शरीर मलसें मलिन होता है, और स्त्रीका स्तनपानमेंजी डुःख है. यौवन वयमें विरहका डुःख वृद्ध पणमें तो सब असार है. कहो संसारमें अल्प पण सुख है ? अर्थात् नहिं है.

तैसें विरक्त मन हुआ थका ऐसा विचारे, इन जोगोंसें प्राणीओकों कदी तृप्ति नहि होती है ऐसा जानकर अन्य जनोंकी दाक्षिण्यसें जोगोमें प्रवर्त्तते है, जाव श्रावक पृथ्वीचंद्र नरेंद्रवत् इति सोलमा जेद.

अथ वेश्याकी तरें निराशंस होके गृहवास पाले ऐसा स-त्तरमा भेद लिखते है. वेश्याके तरें छोडी है टकाबवाली बुद्धि, जैसें वेश्या निर्धन कामुकसें जब विशिष्ट लाभ नहि जानती है और किंचित लाभभी नहि जानती है तब विचारती है, आज वा कल्ल इसको छोड दऊंगी तब तिसका मंदादरसें उपचार करती है. ऐसेही भाव श्रावकभी आज वा कल्ल मैंने यह संसार छोड दे-ना है ऐसे मनोरथ वाला परकीय पर संबंधी घर मानके गृहवास पालन करे, किस वास्ते ? संसार छोडनेकीतो शक्ति नहि है, इस वास्ते शिथिल भाव मंदादरवाला हुआ थका संयमके न प्राप्त होनेसेंभी कल्याणको प्राप्त होता है, वसुश्रेष्ठिसततसिद्धवत्. इति सत्तरमा भेद.

इति कथन करे सतरे प्रकारके भाव श्रावकका भेद. इन पूर्वोक्त गुण युक्तको जिनमतमें भाव श्रावक कहा है. भाव श्रावक कहो वा द्रव्य साधु कहो. आगममें भाव श्रावकको द्रव्य साधु कहा है. यदुक्तं—" मिउपिंडो दव्वघडो सुसावओ तह दव्व साहुत्ति. " अर्थ—मृत पिंड है सो द्रव्य घट है और भाव श्रा-वक है सो द्रव्यसाधु है. इति भावश्रावक धर्म निरूपणं संपूर्ण.

भावसाधुका स्वरूप.

अथ भावसाधुका स्वरूप लिखते है. पूर्वोक्त भाव श्रावकके गुण उपार्जनेंसे शीघ्र भाव साधुपणेको प्राप्त होता है. यह उ-त्सर्ग है एकांत नहि, इनके विना उपार्जेभी साधु व्यवहार नयके मतसें हो शक्ता है. परंतु यहां भावसाधुहीका स्वरूप लिखते है. भाव साधु कैसा होता है सो लिखते है. निर्वाण साधक यो-गांको जिस वास्ते साधते है, निरंतर और सर्व जीवो विषे स-मभाववाला है तिस वास्ते साधु कहते है. क्षमादि गुण संपन्न

होवे, मैत्र्यादि गुण जूषित होवे, सदाचारमें अप्रमादी होवे, सो जाव साधु कहा है. यतः—" निर्वाणसाधकान् योगान् यस्मात् साधयतेऽनिशं । समश्च सर्वजूतेषु तस्मात् साधुरुदाहृतः " ॥ १ ॥ क्षांत्यादिगुणसंपन्नो, मैत्र्यादिगुण जूषितः । अप्रमादी सदाचारे जावसाधुः प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥ अर्थ—जे निर्वाणका साधने वाला योगकुं सदा साधते है. और सर्व प्राणी मात्रमें समजाव रखते है, उसकुं साधु कहते है. जे क्षमा प्रमुख गुणवाले है, मैत्री आदि गुणथी सुशोजित है, प्रमाद रहित और सदाचारी है, सो जावसाधु कहा है. १–२

प्रश्न—कैसे छद्मस्थ जीव जाव साधुको जाणी शके ?

उत्तर—लिंगो, चिन्हो करके जाणे,

प्रश्न—वे चिन्ह कौनसें है ?

उत्तर—वेही लिखे जाते है. तिस जाव साधुके लिंग चिन्ह सकल संपूर्ण मोक्ष मार्गानुपातिनी मार्गानुसारिणी क्रिया पडि-लेहनादि चेष्टा करे तथा करणेकी इच्छा प्रधान धर्म संयममें हो-वें तथा प्रज्ञापनीयत्व असत् अजिनिवेशपणेका त्यागी अर्थात् कदाग्रहका त्यागी, कुटिलतासें रहित तथा क्रिया सुविहित अ-नुष्ठानमें अप्रमाद अशिथिल पणा तथा तप, संयम, अनुष्टानमें यथा शक्ति प्रवर्त्तना तथा महानुगुणानुराग गुण पक्षपात तथा गुरु आज्ञा आराधन धर्माचार्यके आदेशमें वर्त्तना, यह सात ल-क्षण जाव साधुके है.

भाव साधुका लिंग.

अथ इनका विस्तारसें स्वरूप लिखते है.

अन्वेषण करीए अजिमत स्थानकी प्राप्तिके ताई पुरुषोने जो, सो मार्ग कहीये है. सो मार्ग द्रव्य, जाव जेदोंसें दो तरेका

है. द्रव्य मार्ग ग्रामादिकका है. और भाव मार्ग मुक्ति पुरका सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप है अथवा क्षयोपशम भावरूप भाव मार्ग है. तिस करके इहां अधिकार है. सो फेर मार्ग कारणमें कार्यका उपचार करणेमें आगम नीति अर्थात् सिद्धांतमें कथन करा आचार है. अथवा संविझ, पापसें डरनेवाले बहुत सत् साधुओने जो आचीर्ण करा है सो वीतरागके वचन रूप है उक्तंच—

" आगमो हि आप्तवचनं, आप्तं दोषक्षयाद्विदुः, वीतरागोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसंभवात् ." ॥ १ ॥ इसका भावार्थ आगम सिद्धांत आप्तके वचनांको कहते है; और आप्त अठारह दूषणोंके नाश होनेसें होता है. आप्त कहो चाहे वीतराग कहो. और वीतराग अनृत वाक्य असत्य वचन नहि बोलता है, हेतुके असंभव होनेसें. तिस आगमकी नीति उत्सर्ग, अपवादरूप शुद्ध संयमोपाय, सो मार्ग है. उक्तंच—

" यस्मात् प्रवर्त्तकं भुवि निवर्त्तकं चांतरात्मनो वचनं । धर्मश्चैतत्संस्थो मौनींद्रं चैतदिह परमं ॥ १ ॥ अस्मिन् हृदयस्थे सति हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनींद्र इति । हृदये स्थिते च तस्मिन् नियमात् सर्वार्थसंसिद्धिः ॥ २ ॥ " भावार्थ—जिस हेतुसें जगतमें प्रवर्त्तक और निवर्त्तक वचन अंतरात्माके है और यही धर्म है जब ऐसा धर्म संस्थित है सो जैनमतमें परम मुनींद्र तीर्थंकर भगवान् है. ऐसें धर्मके हृदयमें स्थित हुआ निश्चयही सर्वार्थकी सिद्धि है. तथा संविझ मोक्षाभिलाषी बहुत पुरुष अर्थात् गीतार्थ मुनिजन तिनके विना अन्य जनोंके वैराग्य नहि हो शक्ता है. तिनोंने जो आचीर्ण करा है, क्रियारूप अनुष्ठान यहां संविझ ग्रहणेंसें असंविझ बहुत जनेंभी कोइ आचीर्ण करे तोभी प्रमाण नहि ऐसा दिखलाया है. यह व्यवहारभाष्ये,

"जंजीयमसोहीकरं पसत्थपमत्तसंजयाइहिं । बहुएहिवि आयरियं न पमाणं सुद्धचरणाणं ॥ १ ॥" जो जीतव्यवहार शुद्धिका करनेवाला नहि, क्योंकि पार्श्वस्थोनें प्रमत्त संयती बहुते आलसीओ नें आचरण करा है, प्रवर्त्ताया है सो जीत अर्थात् आचरणा, शुद्ध चारित्र पालनेवाले मुनिओंको प्रमाण नहि. बहु जनोंके ग्रहण करनेंसें कदाचित् किसी एक संविग्ननें अजाणपणे आदिसें वितथ आचरणा करी होवे सोन्नी प्रमाण नहि. इस वास्ते संविग्न बहुजनोंने आचरण करा होवे सो मोक्ष मार्ग है. इस वास्ते नजयानुसारणी आगम बाधा रहित संविग्न व्यवहाररूप सो मार्गानुसारिणी क्रिया है.

प्रश्न—आगममें कथन करा है सोइ मोक्षमार्ग कहना युक्त है, परंतु बहुजनाचीर्णको मार्ग कहना अयुक्त है, शास्त्रांतरसें विरोध होनेसें; और आगमको अप्रमाणकी आपत्ति होनेसें; सोइ दिखाते है. जेकर बहुत जनोंका आचरण करा मार्ग सत्य मानोगे तबतो लौकिक धर्म मानना चाहिए, तिसको बहुत लोक मानते है. इस वास्ते जो आगम अनुगत है सोइ बुद्धिमानोंको मानना—करणां चाहिये. बहुतोने मानातो क्या है, क्योंकि बहुते माननेवाले श्रेयार्थी नहि होते है. तथा ज्येष्ठ—नमे नचितके विद्यमान हुआ कनिष्टको पूजना अयुक्त है. इसी तरें नगवंतके वचन आगमके विद्यमान हुआ चाहो बहुतोनें आचरण करा है, तोन्नी तिसको मानना अयुक्त है. और आगमको तो केवली न्नी अप्रमाण नहि कर शक्ता है, क्योंकि समुच्चय नपयोग संयुक्त श्रुतज्ञानी यद्यपि अशुद्ध सदोष आहार ग्रहन करे तिस आहरको केवलीन्नी खा लेता है. जेकर केवली तिस आहारको न न्नोगे तब तो श्रुतज्ञान अप्रमाणिक हो जावे. एक अन्य दूषण यह है कि

आगमके होते हुआ आचरणा प्रमाण करीए तो आगमकी लघुता प्रगट होवे है.

उत्तर–पूर्वपक्षीनें जो कहा सो सत्य नहि है. "अस्यसूत्रस्य"–इस सूत्रका और शास्त्रांतरोंका विषय विभागगे न जाननेंसें, सोइ दिखाते है. इस सूत्रमें संविज्ञ गीतार्थ जे है वे आगम निरपेक्ष नहि आचरणा करते है. तो क्या करते है ? जिस आचरणासें दोषतो रुक जाते है और पूर्वकृत कर्म क्षय हो जाते है सो सो मुख्योपाय रोगीकी रोगावस्थामें जैसे रोग शांती होवे तैसें करते है " दोषा जेण निरुझंति जेण खिझंते पुव्वकम्माइं । सो सो मुक्खो वाउ रोगावथ्था सुलमणंच " ॥ १ ॥ इत्यादि आगम वचनका अनुस्मरण करते हुए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव पुरुषादि विचारके यथा उचित संयमकी वृद्धि करनेवालाही आचरणा करते है, सो अन्य संविज्ञ गीतार्थ प्रमाण कर लेते है, सोइ मोक्ष मार्ग कहा जाता है. पूर्वपक्षीके कथन करे शास्त्रांतर जे है वे असंविज्ञ अगीतार्थोंनें जो असमंजसपणे आचरणा करी है तिसके निषेध वास्ते है इस वास्ते आचरणांका शास्त्रांतरोंके साथ कैसें विरोध संभव होवे. तथा आगमकोंभी अप्रमाणता नहि है किंतु सुष्ठुतर प्रतिष्ठा है जिस वास्ते आगमभी आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा, जीत भेदसें पांच प्रकारका व्यवहार प्ररूपण करता है. यदुक्तं श्री स्थानांगे—

" पंचविहे ववहारे पन्नत्ते, तं जहा, आगमववहारे, सूयववहारे, आणाववहारे, धारणाववहारे, जीयववहारे, " जीत और आचरणा दोनों एकही नामके अर्थ होनेंसें. जब आगम आचरणाकों प्रमाण करता है तब तो आगमकी अतिशय करके प्र-

तिष्ठा सिद्ध है. इस वास्ते आचरणा आगमसें विरुद्ध नहि और प्रमाणिक है, यह स्थित पक्ष है. इस वास्ते धर्मरत्न शास्त्रका कर्त्ता कहता है—

" अन्नह भणियं पिसुए किंची कालाइ कारणा विख्ख । आइन्न मन्नहच्चिय दीसइ संविग्ग गीएहिं ॥ ८१ ॥ व्याख्या—अन्यथा प्रकारांतर करके पारगत तीर्थंकरके आगममें कथन कराभी है तोभी कोइ कोइ वस्तु कालादि कारण विचारके दुःखमादि स्वरूप आलोचन पूवक आचरणा व्यवहार गीतार्थ संविझोनें अन्यथा करा देखते है, सोइ दिखाते है. गाथा—

" कप्पाणं पावकरणं अग्गोयरचाअझोलिया भिखा । उवग्गहिय कडाहय तुंबय मुहदाण दोराइ ॥ ८२ ॥ " व्याख्या कल्प साधुकी चांदरा पछेवडीयां प्रावरणा आत्मप्रमाण लंबीया और अढाइ हाथ प्रमाण विस्तार चौडीयां कथन करीयां है सो आगममें प्रसिद्ध है. प्रावरणका अर्थ जिस्से शरीर सर्व ओरसें वेष्टन करीये ते प्रावरण है ते प्रसिद्ध है. वे प्रावरण कारण विना जब भिक्षादिकके वास्ते जावे तब प्रावरणा समेटके, स्कंधे उपर रखे, यह आगम कथन है. और आचरणासें तो इस कालमें सर्व शरीर ढांकके जाते है. तथा अग्रावतार नामा वस्त्र साधु जनोंमे प्रसिद्ध है सो साधु राखे ऐसा आगममें कथन है. संप्रति कालमें पूर्व गीतार्थ संविझोकी आचरणासें तिस अग्रावतार वस्त्रका त्याग करा है. तथा कटीपट्टक, चोलपट्टकका अन्यथाकरणा, आगममें तो चोलपट्टक करणा कारण पडे तो कहा है और कायोत्सर्गादिकमें चोलपट्टेको कुहणीओंसें दाबके रखना कहा है. और संप्रति कालमें आचरणासें चोलपट्टक सदा कटिमें कडी दोरसें बांधते है. तथा झोलिका दो गांठे करके नियं-

वित पात्र बंधरूप तिस्सें भिक्षा लेनेको जाना. आगममें तो मणिबंध प्रत्यासन्न पात्रबंध झोलिके दोनों अंचल मुष्टिसें धारण करणे कहे है. और आचरणासें अब कुहणीके समीप बांधते है. तैसेंही उपग्राही तुबकके नवीन मुख जोडना तथा डुंबक लेपनकादिके मुखमें डोरी देनी यह मुनि जनोंमें प्रसिद्ध है. ये आचरण संप्रतिकालमें है. तथा—

" सिक्किगनिखिवणाइ पज्जोसवणाइतिहिपरावत्तो । भोयण विहियअन्नत्तंएभाइं विविहमन्नंपि ॥ ८३ ॥ टीका दवरक डोरी करके रचा हुआ भाजनाधारविशेष तिसमें रखके पात्रांको बांधना आदि शब्दसें उक्त लेपरोगानादिसे पात्रांको लेप करणां, तथा पर्युषणादि तिथिका परावर्त्त करणा. पर्युषणा तिथि संवत्सरिका नाम है, तिसका परावर्त्त पंचमीसें चौथके दिन करणी, आदि शब्दसें चतुर्मासिक ग्रहण करणा, तिसकी तिथिका परावर्त्त चौमासा पूर्णमासीसें चौदसकों करणां ऐसा जो तिथ्यंतर करणा सो प्रसिद्ध है. तथा भोजन विधि जो अन्यतरें सें करते है सो यतिजनोंमें प्रसिद्ध है. यह सर्व व्यवहार पूर्व गीतार्थ संविग्नोंकी आचरणासें संप्रतिकालमें चलता है. एवमादि ग्रहण करणेंसें षट् जीवनिकाय अध्ययन पढनेंसें शिष्यकों छेदोपस्थापनीय चारित्र देते है. इत्यादि गीतार्थोंकी आचरणासें विविध प्रकारका आचरित प्रमाणभूत है ऐसा भव्य जीवोंकों जानने योग्य है. तथा च व्यवहार भाष्यं—

"सत्थ परिन्ना छक्काय संजमो पिंम उत्तर झाए रूखे वसहे गोवे जो सोहीय पुक्खरिणी ॥ १ ॥ " इस गाथाका लेश मात्र अर्थ ऐसे है. आचारांगका शस्त्रपरिज्ञाध्ययन सूत्रसें और अर्थसें जब जाणे, पढ लिया होवे तब शिष्यो महाव्रतमें उपस्थापन करना;

ऐसा अप्रेय प्रजाव परमेश्वरके वचनकी मुद्रा है. और जीत व्यवहार ऐसा चलता है. षट्काय संयम, दशवैकालिकका चौथा षट्जीवनिकाय अध्ययन सूत्रार्थसें जाणे तब पीछे उपस्थापन करते थे. तथा प्रथम पिंडैषणा पठन करके पीछे उत्तर अध्ययन पठन करते थे. संप्रति कालमें प्रथम उत्तराध्ययन पठन करके पीछे आचारांग पढते है. पूर्वकालमें कल्पवृक्ष लोकांके शरीर स्थिति निर्वहके हेतु होतेथे, संप्रतिकालमें आंबकरीर प्रमुखसें निर्वाह होता है. पूर्वकालमें अतुल बल धवल वृषभ होतेथे, संतकालमें सामान्य बैलोंसें व्यवहार चलाता है. गोपा और कर्षका गोपाल और खेती करनेवाले चक्रवर्तीके गृहपति रत्नकी तरें जिस दिन बोवे तिसही दिनमें धान्यके निष्पादक थे. संप्रति कालमें तिनके अजावसें थोमी गौवाले गोपाल और जाट कुणबीओसें काम चलता है. तथा पूर्वकालमें योधा सहस्र योधादिक होते थे, संप्रति कालमें अल्प बल पराक्रमवालेजी राजे शत्रुओकों जीतके राज्य पालन करते है. पूर्वोक्त दृष्टांतोकी तरे साधुजी जीतव्यवहारकरके संयम आराधन करते है, यह उपनय है. तथा शोधि प्रायश्चित्त षड्मासिक प्राप्त हुएंजी जीतव्यवहारसें द्वादशक अर्थात् पांच उपवास लगत मार करनेंसे उमासी तपकी तरें शुद्धि करता है. पुष्करणीयांजी पूर्व पुष्करणीयोसें हीन है तोजी लोकोंको उपकारिणी है. दार्ष्टान्तिक योजना पूर्ववत् कर लेनी, इस प्रकारसें अनेक प्रकारका जीत उपलब्ध होता है. अथवा–

"जंसव्वहान सुत्ते पमिसिद्धं नयजीववहहेउ तं सव्वंपि पमाणं चारित्त धणाण जणियंच ॥ ७४ ॥" जो वस्तु सर्वथा सर्व प्रकारसें सिद्धांतमें निषेध नहि करी है, मैथुन सेवनवत्. उक्तंच निशीथ जाष्यादौ–

"नय किंचि अणुन्नायं पिडिसिद्धं वाविजिणवरें देहिं; मो-

पुमेहुंधजावं नतं विणारागदोसाहिं ॥ १ ॥ " और जीवबधन्नी जिसमें नही है, आधाकर्म ग्रहणवत्. सो अनुष्ठान सर्वथा प्रमाणिक है. चारित्र धनवाले मुनिजनांको आगममें अनुज्ञात आज्ञा देनेसें कथन करा है. पूर्वाचार्योनें जो कथन करा है सो दिखाते है–

"अवलंबिऊणकज्जं जंकिंपिसमायरंतिगीयथ्था । थोवावराहबहु गुण सव्वेसिं तं पमाणंतु ॥ ३५ ॥ अवलंबनको आश्रित होके जोजो संयमोपकारी कृत्य गीतार्थ सिद्धांतानुसारी आचरण करते है तिसमें दूषणतो अल्प है और निष्कारणें परिन्नोग करेतो प्रायश्चित्त पामे और जिसमें बहु गुण होवे, गुरु, ग्लान, बाल, वृद्ध, क्षपक प्रमुखोंके उपष्टंन्नक उपकारकारक होवे, मात्रक अर्थात् मोटे वस्त्रे पात्रादि परिन्नोगकी तरें सो सर्व चारित्रयोंको प्रमाण है, आर्यरक्षित सूरि समाचरित दुर्बलिका पुष्पमित्रकी तरें. इहां आर्यरक्षित दुर्बलिका पुष्पमित्रकी कथा जाननी. आर्यरक्षित सूरिनें चारों अनुयोग प्रथक् प्रथक् करे, और मुनियोंकी दया करके मात्रक मोटे वस्त्रे पुत्रके परिन्नोगके आज्ञा दीनी, और

आर्यरक्षित. दुर्बलिकाओर पुष्पमित्रकी कथा.

साधु पुरुष साध्वीको दीक्षा न देवे, साध्वी साधु आगे आलोयणा न करे, और साध्वीकों छेदसूत्र नहि पढाने. यद्यपि आगममें पूर्वोक्त काम करणेंन्नी कहे है तोन्नी काल न्नाव देखी आर्यरक्षित सूरियें अशठ न्नावसें आचरणां बांधी सो सर्व अन्य आचार्योका तथ्य करके मानी. यहां कोइ प्रश्न करे. उक्त रीतिसें तुमनें आचरणा जैसें अपनें वडे वडेरोकी प्रमाण करी है. तैसे हमकोन्नी अपने पिता दादादिककी नानारंन्न मिथ्यात्व क्रियाकी चलाइ प्रवृत्तिमें चलना चाहिये. उत्तर तिसको देते है, हे सौम्य ! तेरी समज ठीक नहि क्योंकि हमने संविज्ञ गीतार्थोका आचरित प्रमा-

पन करा है. न तु सर्व पूर्व पुरुष आचरित, इस वास्ते ग्रंथकार कहता है—

" जंपुण पमायरूवं गुरुलाघव चिंता विरहियं सवहं। सुहसील सढाइन्नं चरित्तिणो तं न सेवंति " ॥ ८६ ॥ व्याख्या, जो आचरित प्रमादरूप है संयमका बाधक होनेसें, इस वास्तेही गुरु लाघव सगुण अवगुणकी चिंता करके विचार करके वर्जित है. इस वास्तेही सवधं जीव वध संयुक्त यतनाके अजावसें सुखशील इसलोकमें जे प्रतिबद्ध है. शठा मिथ्या जूठा आलंबन करा है जिनोंमें तिनोंने जो आचीर्ण आचरा है सो आचीर्ण शुद्ध चारित्र वंत नहि सेवते है. इस वातकाही उल्लेख स्वरूप दिखाते है.

" जह सड्ढे सममत्तं राढाइ अशुद्ध उवही जत्ताइ, निद्दिज्ज वसहि तूलीमसूरगाईणपरिजोगो. ॥ ८७ ॥ " अर्थ—व्याख्या, यथा शब्द उपदर्शनमें है. श्रावकों विषे जिनको ममत्व ममीकार मेरा यह श्रावक है ऐसा जिसको अति आग्रह है; गाममें, कुलमें, नगरमे, देशमे ममत्व जाव कहींजी नहि करे; " गामे कुले वा नगरे वादेशेवा ममत्तजावं न कहिं चिकुज्जा. " ऐसे आगममें निषिद्धजी है, तोजी कितनेकी ममत्व करते है. तथा राढाया शरीरकी शोजाकी इच्छासें अशुद्ध उपधि जक्त पाणी आदिक कितनेक ग्रहण करते है. तहां अशुद्ध उद्गम उत्पादनादि दोष दुष्ट उपधि वस्त्र पात्रादि, जक्त अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यादि आदि शब्दसें उपाश्रय ग्रहण है. ये पूर्वोक्त आगममें अशुद्ध लेने निषेध करे है. " पिंम सिज्जंच वच्छंच चउत्थं पायमेवय। अकप्पियं नइच्छेजा पडिगाहिज्जकप्पियं ॥ १ ॥ इहां राढा ग्रहण करणेसें पुष्टालंबन करके दुर्जिक्ष अक्षेमादिकमे पंचक परिहानी करके किं-

चित् अशुद्धनी ग्रहण करे तो दोष नहि. यह ज्ञापन करा है. यतोऽन्नाणि पिंडनिर्युक्तौ.

" ऐसो आहार विही जह नणिओ सव्वनावदंसीहिं । धम्मावसग्ग जोगा जेण नहायंति तं कुज्जा ॥१॥" तथा, " कारण पमिसेवा पुणन्नावेण सेवणत्ति दठव्वा । आणाइ तिइनवे सोसुद्धो मुखहेउत्ति ॥ २ ॥ इन दोनों गाथाका नावार्थ यह है. जिस्सें आवश्य करणे योग धर्म कृत्यकी हांनि न होवे, ऐसा आहारादि ग्रहण करणा नगवंतने कहा है १ और जो कारणसें दूषण सेवना है सो नहि सेवना है. सो दोष सेवना शुद्ध है, मोक्षका हेतु है २. जिनकी वसति मनोहर चित्र सहित होवे ऐसी वसतिमें रहनेवालेके अनगारपणेकी हानि है. तथा नग्न हुइ वसतिकों समरावे तोन्नी साधु नहि, षट्कायका वध होनेंसें. तथा तुलीमदयला और मसुरकगिंडुयातकीया ये दोनों प्रसिद्ध है. आदि शब्दसें तुलीका खल्लक कांस्य ताम्रके पात्रादि ग्रहण करणें यहन्नी साधुको नहि कल्पते है. " इच्चाई असमंजसमणे गहा खुद्द चिठीयं लोये बहुएहिवि आयरियं नपमाणं सुद्ध चरणाणं ॥ ८८ ॥ " इत्यादि इस प्रकारका असमंजसमणा जो कहना सोन्नी उचित नहि शिष्ट जनांको. अनेक प्रकारका क्षुद्र तुच्छ जीवांका आचरण लिंगीयोनें बहुतोनेंन्नी आचरण करा है तोन्नी प्रमाण आलंबनका हेतु शुद्ध चारित्रीयोंकों नहि है. इस आचरणको अप्रमाणता इस वास्ते है; सिद्धांतमें निषेध करणेंसें, संयमके विरोधी होनेंसें, विना कारण सेवनेंसें; ऐसें आनुषंगिक कथन करके प्रारंन्नितकी समाप्ति करते है. " गीयत्थ पारतंता इय दुविहं मग्गमणुसरंतस्स नावजइत्तं वुत्तं दुप्पसहंतं जउचरणं ॥ ८९ ॥" गीतार्थकी पारतंत्रतासें आगमके जानकारकी आज्ञासें जैसें पूर्व दो प्रकारका मार्ग एक आगमानुसारी दुसरा संविज्ञ गीतार्थ वृद्धोंकी

आचरणारूप इन दोनों मार्गानुसारे जो प्रवर्त्तते है साधु तिसको भाव साधु कहना उचित है, सत्य है, कहां तक यावत् दुःप्रसह नाम पर्यंतवर्त्ति आचार्य होवेगा तहां तक क्योंकि तिस आचार्य तक सिद्धांतमें चारित्रवान् चारित्रिये कहे है. इहां यह अभिप्राय है, जेकर मार्गानुसारी क्रिया करता हूआ और यतन करता हूआ चारित्रिया साधु न मानीये तबतो ऐसें साधुयोंके विना अन्यतो कोइ देखनेंमें आता नहि है, तबतो चारित्र व्युच्छेद हूआ. चारित्रके व्यवच्छेद होनेंसें तीर्थ व्यवच्छेद कहना प्रत्यक्ष अतीत, वर्तमान, अनागत कालके सर्व जिननाथके कथन करे सिद्धांतसें विरुद्ध है. इस वास्ते परीक्षावान् पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टि लिंगी, शिथिलाचारी निर्धर्मीओका कहना कदापि नहि मानते है. तथा च व्यवहारभाष्यं—

"केसिंचयआए सो दंसण। नाणेहिं वट्टएतिथ्थं वो छिन्नंच चरित्तं वयमाणो भारिया चउरो ॥ १ ॥ जो भणीइनथ्थि धम्मो नय सामइयं नचेव वयाइं। सो समण संघ वझ्झो कायव्वो समण संघेण ॥ २ ॥" इन दोनोंका भावार्थ—कितनेक लिंगि बुद्धिहीन, मिथ्यादृष्टि स्त्रीओके लोलुपीयोंका ऐसा कहना है, ज्ञान दर्शनसेंही तीर्थ चलता है, चारित्रतो व्यवच्छेद हो गया है. ऐसा कहनेवाला अवश्य विषय लंपटी जानना. जो कहता है साधुधर्म नहि है, सामायकभी नहि और व्रतभी नहि है तिसको श्रमण संघसें बाहिर काढना चाहिये. इत्यादि आगमके प्रमाणसें मर्गानुसारि क्रिया करणेवालेकों भावयति साधुपणा है. यह स्थितपक्ष है. इति सकलमार्गानुसारीणी क्रिया रूप भाव साधुका प्रथम लिंग ॥ १ ॥

संप्रति श्रद्धा प्रवरा प्रधान है धर्म विषे ऐसा दुसरा लिंग कहते है. श्रद्धा अभिलाषवाला है श्रुत चारित्ररूप धर्ममें. प्रवर

जो विशेषण है सो कहेंगे तिस श्रद्धाका फलन्नूत सो यह है. विधि सेवा, अतृप्ति. शुद्ध देशना, स्खलित हूए शुद्धि करणी, यह प्रवर विशेषणवाली श्रद्धके लिंग है. तिनमें प्रथम विधि सेवाका ऐसा स्वरूप है. विधि करके प्रधान अनुष्ठान सेवे श्रद्ध गुण-वाला, शक्तिमान्. सामर्थ्य संयुक्त होता हूआ अनुष्ठान प्रतिलेख-नादि करणोंमें श्रद्धवान् होवे, अन्यथा श्रद्धालु नहि हो शक्ता है, यदि पुनः शक्तिमान् न होवे तब क्या करे. ज्व्य आहा-रादिक, आदि शब्दसें क्षेत्र, काल, न्नाव ग्रहण करीये है. तिनकी प्रतिकूलतासें गाढ पीमित होवे, तब विधि सेवाका पक्षपात करे.

प्रश्न—विधि अनुष्ठानके अन्नावसें पक्षपात कैसे संन्नवे?

उत्तर—रोग रहित पुरुष खंम खाद्यादि सुंदर न्नोजनके र-सका जाननेवाला किसी आपदा दरिज्ञावस्थामें पमा हुआ अ-शुन्न अनिष्ट न्नोजन करतान्नी है तोन्नी तिसमें राग नहि करता है, क्योंकि वो जानता है मैंतो इसकु न्नोजनके खानेसे आपदा-को उल्लंघन करता हूं, जब सुन्निक्ष होवेगा तबशोन्ननिक आहार न्नोगुंगा ऐसा तिसका मनोरथ होता है. अब इस दृष्टांतका दा-ष्टांत कहते है. ऐसे कुन्नोजनके दृष्टांतसें शुद्ध चारित्र पालनेका रसीआ है पण ज्व्यादिककी आपदासें बाह्य वृत्ति करके आगम विरुद्ध नित्यवासादि करता है और एकला होगया है, परंतु सं-यम आराधनेकी लालसा जिसके मनमें है सो पुरुष न्नावचारि-त्र, न्नावसाधुपणा उल्लंघन नहि करता है; एतावता वो न्नाव साधुही है संयम सूरिवत्. तथा चोक्तं, 'दव्वाइ' इत्यादि अ-शुद्ध ज्व्यादिक न्नोगनिक न्नावोंका प्राये विघ्न नहि कर शकते है. न्नाव शुद्ध और बाह्य क्रिया विपर्यय यह लोकमें प्रसिद्ध है.

संग्राममें अपने प्रभुकी आज्ञासें सुभटको जो बाण लगता है सो परम वल्लभ अपनी स्त्रीके करे कमल प्रहारकी तरें मालुम होता है. तथा जैसें स्वदेशमें, तैसेंही परदेशमें सत्वसें धीर पुरुष नहि चलायमान होते है धीर पुरुष मन वांछित कार्यको सर्व जगे सिद्ध करते है. तथा दुर्भिक्षादिकके उपद्रव दानमें, शूरमे पुरुषांके आशयरूप रत्नको नहि भेद शकते है, किंतु तिन दातांके अविधि दानके देनेको शुद्ध करते है. इस दृष्टांत करके महानुभाव शुभ समाचारि गत चारित्रीयेके भावकों इत्यादि आपदाके उपद्रव नाश नहि कर शकते है. जो असामर्थ्य होवे, रोग पीडित जर्जर देहवाला जैसें सिद्धांतमें मुनिमार्ग कहा है कदापि वेसें नहि पालता है. सोभी अपने पराक्रम धैर्य बलको अणगोपता हूआ और कपट क्रियासें रहित हो करके प्रवर्त्ते वोभी अवश्य साधुही जानना. इति विधि सेवास्वरूप प्रथम श्रद्धाका लक्षण.

अतृप्ति श्रद्धाका स्वरूप.

संप्रति अतृप्ति स्वरूप दुसरा लिखते है. तृप्ति संतोष, बस मेरोकों इतनाही चाहिये, ऐसी तृप्ति ज्ञानके पढनेमें चारित्रानुष्टानके करणेमें कदापि न करे, किंतु नव नव श्रुत संपद उपार्जनेमें विशेष उत्साहवान् होवे; क्योंकि सिद्धांतमें कहा है, जैसें जैसें श्रुतशास्त्र मुनि अवगाहन करता है, पढता है कैसा श्रुत अतिशय रस प्रसर विस्तार संयुक्त, अपूर्व श्रुत, तैसे तैसे मुनि नव नव श्रद्धा सेवंग करके आनंदित होता है. तथा जिन शास्त्रका अर्थतो मोहक्षयवाले जिनोत्तम तीर्थंकरोने कथन करा है, और महाबुद्धिमान् गौतम, सुधर्म स्वाम्यादिकोंने सूत्ररूप रचा है सो सूत्र संवेगादि गुणाका जनक है. जैसे अपूर्व ज्ञानके

पढनेका यत्न, नवीन ज्ञानका उपार्जन सदा करणा. तथा चारित्र विषये विशुद्ध विशुद्धतर संयमके स्थानकोंकी प्राप्तिके वास्ते सद्भावनासार अर्थात् शुद्धभाव पूर्वक सर्व अनुष्टान उपयोग संयुक्त करे; क्योंकि अप्रमादसें करे हुए सर्व साधुके व्यापार अनुष्टान उत्तरोत्तर संयम कंडकमें आरोहण करणेंसें केवल ज्ञानके लाभ वास्ते होते है. तथा चागमे—

जिनशासनमें जे योग कहे है तिनमेंसे एकैक योगको कर्म क्षयार्थ प्रयंजुन करता हुआ एकैक योगमे वर्त्तते हुए अनंते केवली हूए है. तथा वैयावृत्त तपस्वि प्रमुखकी आदि शब्दसे पडिलेहना, प्रमार्जनादि ग्रहण करणें तिनमे यथाशक्ति शुद्ध भाव पूर्वक प्रयत्नवान् होवे, अचल मुनीश्वरवत्. इति अतृप्ति नामा दुसरा श्रद्धाका लक्षण.

शुद्ध देशना श्रद्धाका स्वरूप.

अथ शुद्ध देशना स्वभाव तिसरा लक्षण लिखते है. प्रथम देशनाका अधिकारी लिखते है. सुगुरु, संविझ गीतार्थ आचार्यके समीपे पूर्वापर सम्यक् प्रकारसें सिद्धांत आगमके वाक्य पदार्थ, वाक्यार्थ, महावाक्यार्थ, तिनका यह तात्पर्यार्थ है, ऐसा तत्व स्वरूप सिद्धांतका, जाना है, जिसनें उक्तंच—

" पयवक्क महावक्क पअइदं पज्जथ्थ वत्थु चत्तारि । सुय, भावावगमंभीइंदिपगाराविणिदिठा ॥ १ ॥ संपुन्नेहिं जायइ भावस्सय अवगमो इहरहाउ । होइ विविज्जा सो विहु अणिक्रफल ओय नियमा ॥ २ ॥ " इनका भावार्थ, पदवाक्य, महावाक्य-यह तात्पर्य, यह वाक्य है, यह चार श्रुतभावके जाननेके प्रकार कहे है. इन चारों प्रकारसें पदार्थका यथार्थ स्वरूप जाना जाता है. अन्यथा विपर्यय होनेंसे नियमसें अनिष्ट फल है. ऐसे ज्ञानके

हुएन्नी गुरुकी आज्ञासें नतु स्वतंत्र मौखर्यादिकी अतिरेकतासे इस वास्ते धन्य धर्म धनके योग्य होनेंसें मध्यस्थ, स्वपक्ष पर-पक्षोमे रागद्वेष रहित सतन्नूतवादी ऐसा जो होवे सो देशना धर्म कथा करे. इति धर्मदेशनाका अधिकारी.

धर्मदेशनाका स्वरूप.

अथ धर्मदेशना किस तरेसे करे सो कहते है. सम्यक् प्रकारसें जाना है पात्र धर्म, सुनने योग्य पुरुषका आशय जिसनें सो ' अवगतपात्रस्वरूपः." तथाहि, बाल, मध्यम बुद्धि, और बुद्ध येह तीन प्रकारके पात्र धर्म सुणावने योग्य है. तत्र " बालः पश्यति लिंगं मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तं । आगमतत्वं तु बुधः परीक्षते सर्वयत्नेन ॥ १ ॥

अर्थ—बाल लिंग देखते है, मध्यम बुद्धि आचरणका विचार करते है, और बुद्ध सर्व यत्न करके आगम तत्वकी परीक्षा करते है.

इन तीनोंका देशना देनेकी विधि ऐसें है. बालको बाह्यचारित्र प्रवृत्तिकी प्रधानताका उपदेश करणा, और उपदेशकनें आपन्नी तिस बालके आगे बाह्य क्रिया प्रधान चारित्राचार सेवन करना, लोच करणा, पगामें उपानह, मौजा प्रमुख न पहनना, न्नूमिका उपर उकका एक आसन और एक उपर एक उपरपट्ट, बीगके सोना, रात्रिमें दो प्रहर सोना, शीतोष्णको सहना, उपवास वेला आदिक विचित्र प्रकारका तप महाकष्ट करना, अल्प उपकरण राखने, उपधि निर्दोष लेनी, आहारकी बहुत शुद्धि करणी. नाना प्रकारके अन्निग्रह ग्रहण करके, विगयका त्याग करणा, एक कवलादिकसें पारणा करणा, अनियत विहार करणा. नवकल्प करणा, कायोत्सर्गादिक करणा, इत्यादि क्रिया चारित्रकी

बाह्यप्रवृति आप करणी, और बालजीवोंकों नपदेशभी इसी बाह्य क्रियाका करणा.

मध्यम बुद्धिकों इर्यासमित्यादि पांच समिति, तीन गुप्ति' यह अष्ट प्रवचन मातारूप मोक्षार्थीने कदापि नहि गेमके. इन अष्ट प्रवचनके प्रधान होनेसे साधु मुनिकों संसारका नय नहि होता है अत्यंत हितकारक फल होवे. गुरुकी आज्ञामें रहणा, गुरुका बहुमान करणा, परम गुरु होनेका यह बीज है. तिस्सें मोक्ष होता है. इत्यादि सावृत्ति मध्यम बुद्धिकों सदा कहनी. आगमका परम तत्त्व बुद्धको कहना. नगवंतका वचन आराधना धर्म है, तिसका न मानना अधर्म है. यही सर्व रहस्य गुह्य सर्व सुधर्मका है इत्यादि. अथवा पारिणामिक, अपारिणामिक, अति पारिणामिक नेदसें तीन प्रकारके पात्र है. इत्यादि पात्र स्वरूप जान करके श्रद्धावान् तिस पात्रको अनुग्रह हेतु नपगारी शुन परिणामाकी वृद्धिकारक आगमोक्त कथन करे, नत्सूत्र मोक्षके वैरी नूतको वर्जे, जैसे श्रेणिक राजा प्रति महा निर्ग्रंथने नपदेश करा.

प्रश्न. देशना नाम धर्मोपदेशका है, सो नाव साधुकों सर्व जीवांको विशेष रहित करनी चाहिये. पात्र अपात्रका विचार काहेकों करणा चाहिये ?

नत्तर—पूर्वोक्त कहना ठीक नहि. जैसें अन्य जीवांको छुध मीसरी पथ्य और स्वादनीय है तैसें संन्निपात रोगवालेकों देनेंसें गुण नहि होता है. इसी वास्ते निषेध करते है, क्वाथादि कडवी वस्तु देते है; इस वातमें देनेवालेका नाव विषम नहि कहा जाता है; तैसें देशनामेंनी योग्य अयोग्यका विचार करना ठीक है. सर्वदान पात्रके तांइ दीआ कल्याणफलका जनक है. पात्र कहते है. नचित ग्राहक जीवादि पदार्थका जाननेवाला

और समभावसें सर्व जीवांकी रक्षा करणेंमें उद्यतमति साधु यति सो पात्र है, तिसकों दीक्षा कल्याण फल है. अन्यथा अनिरुद्ध आश्रवद्वारवाले कुपात्रको दीक्षा अनर्थजनक संसारके दुःखांका कारक होता है. क्या वस्तु प्रधानदान अर्थात् श्रुतज्ञानदान देशनादिरूप अतिशय करके कुपात्रकों नहि देना शास्त्रके जानकारोने ? रक्त, दुष्ट, पूर्वकुग्राहित ये उपदेश देने योग्य नहि है. उपदेश देने योग्य मध्यस्थ पुरूष है. इस वास्ते अपात्रको छोडके पात्रकुं उचित देशना करणी; शुद्ध देशना कहते है. जेकर अपात्रकुं देशना देवें तब श्रोताकु मिथ्यात्व प्राप्ति होवे. द्वेष करे, तिस्सें भात, पाणी, शय्या, वस्ति आदिकका व्यवच्छेद प्राणनाशादिक उपद्रव करे. इतने दूषण देशना करनेवालेकुं होते है. इस वास्ते जो अपात्रकों त्याग के पात्रको देशना करे सो गीतार्थ स्तुति करणे योग्य है.

प्रश्न—तुमने कहा है. जो सूत्रमें कथन करा है सो प्ररूपण करे. जो पुनः सूत्रमें नहि है और विवादास्पद लोकांमे है, कोइ कैसें कहता और कोइ किसीतरें कहता है. तिस विषयक जो कोइ पूछे तब गीतार्थको कया करणा उचित है.

उत्तर—जो वस्तु अनुष्ठान सूत्रमें नहि कथन करा है, करणे योग्य चैत्यवंदन आवश्यकादिवत्; और प्राणातिपातकी तरें सूत्रमें निषेधभी नहि करा है, और लोकोमें चिरकालसें रूढिरुप चला आता है सोभी संसार भीरु गीतार्थ स्वमतिकल्पित दूषणे करी दूषित न करे. गीतार्थोके चित्तमें ये वात सदा प्रकाशमान रहती है सोइ दिखातें है.

संविग्न गीतार्थ मोक्षाभिलाषी तिस तिसकाल संबंधी बहुत आगमोके जानकार और विधिमार्गके रसीये, विधिकों बहुमान

देनेवाले, संविग्न होनेसें पूर्वसूरि चिरंतन मुनियोके नायक जे होगये है तिनोनें निषेध नहि करा है; जो आचरित आचरण सर्व धर्मीलोक जिस व्यवहारको मानते है तिसकों विशिष्ट श्रुत अवधि ज्ञानादि रहित कौन निषेध करे ? पूर्व पूर्वतर उत्तमा चार्योकी आशातनासे डरनेवाला अपितु कोइ नहि करे, बहुल कर्मीकों वर्ज के ते पूर्वोक्त गीतार्थो ऐसें विचारते है. जाज्वल- मान अग्निमें प्रवेश करनेवालेसेंभी अधिक साहस यह है. उत्सूत्र प्ररूपणा, सूत्र निरपेक्ष देशना, कटुक विपाक, दारुण, खोटे फलकी देनेवाली, ऐसे जानते हुएभी देते है. मरीचिवत्. मरीचि एक दुर्भाषित वचनसें दुःखरूप समुद्रकों प्राप्त हुआ एक कोटा कोटि सागर प्रमाण संसारमें भ्रमण करता हुआ; जो उत्सूत्र आचरण करे सो जीव चीकणे कर्मका बंध करते है. संसारकी वृद्धि और माया मृषा करते है तथा जो जीव उन्मार्ग- का उपदेश करे और सन्मार्गका नाश करे सो गूढ हृदयवाला कपटी होवे, धूर्ताचारी होवे, शल्य संयुक्त होवे, सो जीव तिर्यंच गतिका आयुबंध करता है. उन्मार्गका उपदेश देने सें भगवंतके कथन करे चारित्रका नाश कवता है. ऐसे सम्यग् दर्शनसें भ्रष्टकों देखनाभी योग्य नहि है. इत्यादि आगम वचन सुणकेभी स्व-अप ने आग्रहरूप ग्रह करी ग्रस्तचित्तवाला जो उत्सूत्र कहता है क्योंकि जिसका उरला परला कांठा नहि है ऐसे संसार समुद्रमें महा दुख अंगीकार करणेसें.

प्रश्न. क्या शास्त्रकों जानकेभी कोइ अन्यथा प्ररूपणा क- रता है. ?

उत्तर—करता है सोइ दिखाते है. देखनेमें आते है–दुषम कालमें वक्रजड बहुत साहसिक जीव भवरूप भयानक संसार

पिशाचसें मरनेवाले निज मतिकल्पित कुयुक्तियों करके विधि मार्गकों निषेध करणेमे प्रवर्त्तते है. कितनीक क्रियांकों जे आगममें नहि कथन करी है तिनको करते है और जे आगमने निषेध नहि करी है—चिरंतन जनोंने आचरण करी है तिनको अविधि कह करके निषेध करते है, और कहते है—यह क्रियायो धर्मी जनांकों करणे योग्य नहि है. किन किन क्रिकायों विषे " चैत्य कृत्येषु स्नात्रबिंबप्रतिमाकरणादि. "

तिन विषे पूर्व पुरुषोंकी परंपरा करके जो विधि चली आती है तिसकों अविधि कहते है. और इस कालकी चलाइकों विधि कहते है. ऐसे कहनेवाले अनेक दिखलाइ देते है. वे महा साहसिक है.

प्रश्न. तिनोंने जो प्रवृत्ति करी है तिसकों गीतार्थ प्रसंशे के नहि प्रसंशे ?

उत्तर. तिस प्रवृत्तिकों विशुद्धागम बहुमान सार श्रद्धा है जीनकी ऐसे गीतार्थ सूत्र संवादके विना अर्थात् सूत्रमें जो नहि कथन करा है तिस विधिका बहुमान नहि करते है किंतु तिसका अवधीरण अर्थात् निरादर करके मध्यस्थ न्नावसें उपेक्षा करके सूत्रानुसार कथन करते है. श्रोताजनोंको उपदेश करते है. ऐसे कथन करा शुद्ध देशना रुप विस्तार सहित तीसरा श्रद्धाका लक्षण.

स्खलित परिशुद्धि श्रद्धाका लक्षण.

संप्रति स्खलित परिशुद्धि नामा चौथा श्रद्धाका लक्षण लिखतेहै. मूल गूण, उत्तरगुणकी मर्यादाका उल्लंघन करना तिसका नाम अतिक्रम अतिचार कहते है, सो अतिचारही रुंडीर जायके पिंडकी तरे उज्वल गुण गणांके मलीनताका हेतु होनेसें मल अर्थात् मैल है; सोइ चारित्तरूप चंद्रमाकों कलंककी

तरें कलंक है. सो कलंक प्रमादादि प्रमाद दर्प कल्पादि करके, आकुट्टि करके हिंसादिका करणा साधुकों प्राये संज्ञव नहि है; परंतु किसी तरें कांटो वाले मार्गमें यतनसें चलतांज्ञी जैसें पगमें कांटा लग जाता है तैसें यतना करता हुआ जीव हिंसादि हो जाती है. आकुट्टिका उसको कहते जो जानके करे १ दर्प्प उसकों कहते है जो जोरावरीसें पिलचीने करे २ विकथादि करके करे सो प्रमाद है ३ जो कारणसें करे सो कल्प कहते है ४ कदाचित इन चारों प्रकारसें हिंसादिक करे.

अथ दश प्रकारसें साधुको दूषण लग जाते है. दर्प्पसें १ प्रमादसें २ अजाणपणसें ३ रोगपीडित होनेंसें ४ आपदामें पडनेसें ५ शंका उत्पन्न होनेसें ६ बलात्कारसें ७ ज्ञयकरके ८ द्वेष करके ९ शिष्यादिककी परीक्षा वास्ते १० इन पूर्वोक्त कारणोंसें कदाचित् चारित्रमें अतिचारादिक कलंक लग जावे तिसकों गुरु आगे आलोचन प्रगट करनेंसे शुद्ध करे प्रायश्चित लेनेसें. कौन शुद्ध करे ? जिसको विमल श्रद्धा निष्कलंक धर्मकी अज्ञिलाषा होवे शिवज्ञद्र मुनिवत्. इति चतुर्थ लक्षण. इति उसरा ज्ञावसाधुका प्रवरा श्रद्धानाम लक्षण. ऐसी श्रद्धावाला मुनि अज्ञिनिवेश असत् आग्रह करते रहित सुप्रज्ञापनीय होता है.

साधुकुं दूषण लगनेका दश प्रकार.

प्रश्न—क्या साधुयोकेज्ञी असत् ग्रह होता है ?

उत्तर—होता है. मतिमोह महात्म्यसें. मतिमोह किस्सें होता है. सो लिखते है. जैनमतके शास्त्रोमें इस प्रकारके सूत्र है. विधिसूत्र १ उद्यम सूत्र २ वर्णक सूत्र ३ ज्ञय सूत्र ४ उत्सर्ग सूत्र ५ अपवाद सूत्र ६ उज्ञय सूत्र ७ इन सातोंका स्वरूप ऐसें है. कितनेक विधमार्गके सूत्र है. यथा दश वैकालिकके पांचमे अध्ययने.

" संपत्ते भिरक कालंमि असंभंतो अमुछिउ । इमेख कम्म जाएण, भत्त पाणंग वेसइ ॥ १ ॥ " इत्यादि. तथा कितनेक उद्यम सूत्र है. यथा उतराध्ययन दशमे अध्ययने,

" दुम पत्तए पंडुय यज्हा निवडे इराय गणाण अञ्चए, " एवं मणुयाण जिवियं समयं गोयम मापमायए ॥ १ ॥ इत्यादि. तथा कितनेक वर्णक सूत्र है. ज्ञाता, उववाइ प्रमुखमें.

' रिद्धि च्छमिय समिद्धा. ' इत्यादि तथा कितनेक भय सूत्र है. जैसें नरकमें मांस रुधिरका कथन करना उक्तंच—

" नरएसु मंस रुहिराइ वन्नणं जंपसिद्धि मित्तेणा भय हेउ इह रइतेसिं वेउ व्विय भाव उनतयं " इत्यादि. उत्सर्ग सूत्राणि यथा.

" इच्चे सिं छएहं जीव निकायाणं नेवसयं दंडं समारंभिज्जा" इत्यादि. षट्‌जीवनिकायके रक्षाके प्रतिपादक विधायक है. अपवाद सूत्रतो प्रायछेद ग्रंथोसें जाने जाते है. तथा

" नयालभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुण उस्समं-वा । इक्कोवि पावाइ विवज्जयंतो, विहरिज्ज कामे सुय सज्जमाणो ॥ १ ॥ इत्यादि भावार्थ. जब निपुण सहायक गुणाधिक अथवा बराबर गुणवाला न मिले तब पपांको वर्जता हुआ और काममें अनाशक्त होकर एकलाभी विचरे. तथा तदुभय सूत्र जिनमें उत्सर्गापवाद दोनो युगपत् कहे जाते है. यथा

. " अट्टझाणं भावे समं अहियासि यव्व उवाही " तझावं मिझ विहिणा पडिवार पवत्तणं नेयं ॥ इत्यादि. भावार्थ. जीस रोगव्याधिके हुए आर्त्तध्यान न हावे तवतो सहनी जेकर आर्त्त-ध्यान तिस रोग-व्याधिके हुवे तब तिसके उपचारमें वर्त्तना. औ-षधी करणी. ऐसे नाना प्रकारके स्वसमय परसमय, निश्चय व्यव-

द्वार, ज्ञान क्रियादि, नानां नयोंके मतके प्रकाशक सिद्धांतमे गंभीरभाव वाले महा मतिवालोंके जानने योग्य जिनका अभिप्राय है, ऐसे सूत्र है. तिन पूर्वोक्त सूत्रोंका विषय विभाग, इस सूत्रका यह विषय है; ऐसे न जानता हूआ ज्ञानावरण कर्मके उदयसे मतिमंदा होता है; तब वो जीव अपनेको और उपासकको असत् अग्रह, असत् बोध उत्पन्न करता है. जमालीवत्. ऐसे मूढ अर्थी विनीतको, गीतार्थ संविज्ञ गुरु पूज्य, परोपकार करणेमें रसिक, दयासे विचारते है; यह प्राणी दुर्गतिमें न जावे. ऐसी अनुग्रह बुद्धि करके प्रेरे हुए प्रतिबोध करते है. आगमोक्त युक्तिकरके जिसको प्रतिबोधके योग्य जानते है. अयोग्यकोतो सर्वज्ञभी प्रतिबोध योग्य मुनि सुनंदनराजऋषिके सदृश सरलभावसें होता है. इति कथन करा प्रज्ञापनीयत्वनामा भावसाधुका तिसरा लिंग.

द्धि करके प्रेरे हुए प्रतिबोध करते है, आगमोक्त युक्तिकरके जिसको प्रतिबोधके योग्य जानते है. अयोग्यकोतो सर्वज्ञभी प्रतिबोध करणे सामर्थ्य नहि है. सोभी प्रतिबोध योग्य मुनि सुनंदनराजऋषिके सदृश सरलभावसें होता है. इति कथन करा प्रज्ञापनीयत्व नामा भाव साधुका तीसरा लिंग.

संप्रति क्रियासें अप्रमाद ऐसा चौथा लिंग लिखते है. भली जो होवे गति सो कहिये सुगति—मुक्ति तिसके वास्ते चारित्रयति धर्म है. तदुक्तं—

" विरहिततरिकांडा बाहुदंडैः प्रचण्डं, कथमपि जलराशिं धीधना लंघयन्ति । नतु कथमपि सिद्धिः साध्यते शीलहीनैर्दृढयत इति धर्मे चित्तमेवं विदित्वा " ॥ १ ॥

अर्थ—बुद्धिरूप धनवाले झांझविना बाहु दंडसे समुद्रको तर जाते है. शीलहीन पुरुषसें सिद्धि साध्य नहि होती है ऐसा

जानकर धर्ममें चित्त दृढ लगाना. सो चारित्त षट्कायाका संयम-ही है. पृथ्वी, जल, ज्वलन, पवन, वनस्पति, त्रसकायकी रक्षा-करणी सोइ चारित्र है. इन छहों कायोमेंसे एक जीवनिकायकी विराधना करता हुआ जगदीश्वरकी आज्ञा पालनेवाला साधु सं-सारका वर्धक है. तथा चाहुः—

" प्रतिसकलव्यामोहतमिश्राः श्रीधर्मदासगणिमिश्राः कोइ राजाका मंत्री सर्ववस्तु राजाकी, स्वाधीनन्नी कर लेता है तो राजाकी आज्ञा खंरुन करे तोन्नी वध बंधन, इव्यहरणादि दंरु पाता है. तैसें छकाय महाव्रत सर्व निवृति ग्रहण करके जेकर एक कायादिककी विराधना करते तो संसार समुइमें भ्रमण करे तथा षट्काय और महाव्रतका पालना यह यतिका धर्म है. जे-कर तिनकी रक्षा न करे तब कहो शिष्य ! तिस धर्मका क्या नाम है ? षट्कायकी दया विवार्जित पुरुष नतो दीक्षित साधु है साधुधर्मसें भ्रष्ठ होनेसें, और नतो गृहस्थ है, दानादि धर्मसें रहि-त होनेसे. यहां मागधी गाथा नहि लिखी किंतु तिनका अर्थ लिखता है.

सो पूर्वोक्त पुरुष संयम पालनेको समर्थ नहि है. विकथा करणेसें. विरुद्ध कथा, राज कथादि जैसें उपर रोहणीके दृष्टांतमें स्वरूप लिखा है तैसें जानना. विषय कथा विकथादि प्रमाद युक्त, संयम पालने समर्थ नहि है. इस वास्ते साधुको प्रमाद नहि क-रणा चाहिए, प्रमादही विशेष करके कष्टका हेतु है. सोइ कहते है. प्रवर्ज्या जिनमतकी दीक्षा तिसको विद्या जिसकी देवी अ-धिष्टाता होवे तिस विद्यांको साधता हुआ जो प्रमादवान् होवे तिसकों विद्या सिद्ध नहि होती है. किंतु उपड्व करती है; तैसेंही पारमेश्वरी विद्या दीक्षाकी तरे महा अनर्थ करती है; अर्थात् शी-तल विहारी, पार्श्वस्थादिकको जिन दीक्षा सुगतिके तांइ नहि

किंतु देव दुर्गति और दीर्घ नवभ्रमणरूप कष्टकी करता है. आर्यमंगुवत् . क्योंकि शास्त्रमें कहा है. शीतल विहारसें दीर्घकालकृत संसारमें बहुत क्लेश पाता है. तीर्थंकर १ प्रवचन २ श्रुत ३ आचार्य ४ गणधर ५ महर्द्धिक ६ इनकी बहुत वार आशातना करते तो अनंत संसारी होवे. इस वास्ते साधुने सदा अप्रमादी होना चाहिए. प्रमादकांही युक्त्यंतरसें निषेध करते है. प्रतिलेखना चलनादि चेष्टा क्रिया व्यापार षट्कायके घातक हेतु प्रमादी साधुकी सर्व क्रिया सिद्धांतमें कही है. इस वास्ते साधु सर्व क्रियायोंमें अप्रमत्त होके प्रवर्त्ते.

अप्रमादि साधुका स्वरूप.

अथ अप्रमादी साधु जैसा होवे सो लिखते है. जो व्रतोंमे अतिचार न लगावे, प्राणातिपात व्रतमें त्रस स्थावर जीवांको संघट्टण, परितापन, उपद्रव न करे. मृषावाद, व्रतमें सूक्ष्म मृषावाद अजाणपणेंसें, और बादर जाणके न बोले. अदत्तादान व्रतमें सूक्ष्म अदत्तादान स्थानादिककी आज्ञा विना लेके न रहे, और बादर स्वामि १ जीव २ तीर्थंकर ३ गुरु ४ इनकी आज्ञाविना भोजनादिक न करे. चौथे व्रतमें नव गुप्ति सहित ब्रह्मचर्य पाले पांचमें व्रतमें सूक्ष्म बालादिकि ममत्व न करे बादर अनेषणीय आहारादि न ग्रहण करे. मूर्छासें अधिक उपकरण न राखे. रात्रि भोजन विरतिमें सूक्ष्म लेप मात्र बासी न राखे और बादर दीनमें लेकर रातकों खावे १ रात्रिमें लेकर दिनमें खावे २ दीनमें लेकर अगले दिनमें खावे ३ रात्रिमें लेकर रात्रिमे खावे ४ इन चारों प्रकारसें भोजन न करे. एसें सर्व व्रतांके अतिचार टाले और पांच समति तिन गुप्तिमें उपयोगवान् होवे. अधिक क्या लिखे. स्थिर चित्त होकर पाप हेतु प्रमादकी सर्व क्रिया वर्जे; और

अवसरमें जो जिस प्रतिलेखनादि क्रियाका अवसर होवे तिसमें सर्व क्रिया करे. प्रमादसें अधिक ओछी क्रिया न करे. अन्य क्रिया करता हुआ विचमें अन्य क्रिया न करे. सर्व क्रिया सूत्रोक्त रीतिसें करे. सूत्र तिसकों कहते है जो गणधरोंने रचे होवे, प्रत्येक बुद्धियोंके रचे, श्रुत केवलिके रचे, अभिन्न दश पूर्वधरके रचे, इनको निश्चय सम्यक्तवान् सद्भूतार्थ, सत्यार्थवादी होनेसें इनका कथन सत्य है. इनके विना जो कोइ इनके कहे अनुसार कहे तोभी सत्य सूत्रही जानना. ऐसी पूर्वोक्त क्रिया करे, अप्रमादसें. सो जिन मतमें अप्रमत्त साधु है. इति कथन करा क्रियामें अप्रमादनामा भावसाधुका चौथा लिंग.

संप्रति जिस अनुष्ठानके करणेकी शक्ति होवे सो अनुष्ठान करे ऐसा पांचमां लिंग लिखते है. संहनन वज्र रीषभ नाचारादि और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इनके उचितही अनुष्ठान करे. अनुष्ठान तप १ कल्प २ प्रतिमादि जिस संहननादिकमें जो निर्वहण कर शकिये सोइ अनुष्ठान करे. क्योंकि अधिक करे तो पुरा न होवे. बीचमें छोडना पडे. प्रतिज्ञाका भंग होवे. फेर कैसें अनुष्ठानका आरंभ करे—जिसमें लाभ बहुत हुवे, और संयमको बाधा न होवे, और प्रारंभित अनुष्ठान बहुतवार वारंवार कर शके; क्योंकि अनुचित अनुष्ठान करके पीडित हुआ फेर उस अनुष्ठानके करणेमें उत्साह नहि करता है. जैसें साधु रोगी हो जावे, तिसकी चिकित्सा करे तो सदोष औषधी लेनी पडे. जेकर सदोष औषधी न करे तब अविधिसें मरे, और संयमकी अंतराय होवे, इसी वास्ते कहा है, सो तप करणा जिस्सें मनमें आर्त्तध्यान न होवे, और जिस्सें इंद्रियांकी हानि न होवे, और योगांकी हानि न होवे तिस अनुष्ठानके करणेमें अन्यजन सामान धर्मीयोंको करणेकी देखादेखी इच्छा उत्पन्न होवे. फिर कैसी क्रिया करे जिस

के करणेसें गच्छकी, गुरुकी उन्नति होवे. धन्य यह गच्छ गुरु है. तिसके सहायसें ऐसें दुष्कर कारक मुनि दिखते है, ऐसें लोक श्लाघा करे. तथा जिस्सें जिनशासनकी उन्नति होवे. बहुत अच्छा यह जैनमत है. हमभी इसको अंगीकार करेंगे. फेर कैसी क्रिया करे जिस्सें इसलोक, परलोककी वांछा न करे. आर्यमहागीरी भगवंतका चरित वृत्तांत स्मरण करता हुआ सत्क्रिया करे. अत्र कथाज्ञेया पूर्वोक्त अर्थ प्रगटपणें कहते हैं. जिसके करणेकी सामर्थ्य होवे. समिति, गुप्ति, प्रतिलेखना, स्वाध्याय, अध्ययनादि तिसके करणेंमे आलस्य न करे. सो साधु चारित्र संयम, विशुद्ध निःकलंक, कालसंहनन आदिके अनुसारे संयम पालने सामर्थ्य है. क्योंकि शक्यानुष्टानही इष्ट सिद्धिका हेतु है.

प्रश्न. धर्मभी करता हुआ कोइ असत् आरंभ अशक्यानुष्ठान करता है.

उत्तर. मतिमोह मानके अतिरेकमें करता है. किसकी तरे करता है ? जो कोइ मंदमति गुरु धर्माचार्यकों अपमान करे यह गुरु हीनचारी है. ऐसी अवज्ञासें गुरुको देखता हुआ आरंभ करता है. अशक्यानुष्टानका जो काल संहननादि करके हो नहि शक्ता है जिनकल्पादिकका मार्ग, जिसको शुद्ध गुरु नहि कर शक्ते है तिसको मतिमोह अभिमानकी अधिकतासें उद्धत अभिमानी जीव करता है सो कदापि नहि चल शक्ता है. शिवभूति आदि दिगंबर वत् . इति कथन करा शक्यानुष्टानारंभ रूप पांचवा भाव साधुका लिंग.

अथ गुणानुराग नाम छठा लिंग लिखते है. चरण सत्तरि ७० करण सत्तरि ७० रूप मूल गुण उत्तर गुणांमें राग प्रतिबंध शुद्ध चारित्र निष्कलंक संमयका रागी. और परिहरे—वर्जे तिस

गुणानुरागसें दूषणांको कैसे दूषणांको गुण गुणांके मलीनता करणेके हेतुयोंको ज्ञानादिकोंके अशुद्धि हेतुयोंको ज्ञाव साधु.

अथ गुणानुरागकाही लिंग कहते है. थोडासाज्ञी जिसमें गुण होवे तिसके गुणकी ज्ञावसाधु प्रशंसा करे. कुथितकृष्णसारमेय शरीरे सितदंतपंक्तिश्लाघाकारक कृष्णवासुदेव वत्. और दोष लेश मात्रज्ञी प्रमादसें स्खलित हुए अपने आपकों निस्सार मानें. धिग् है मेरेको प्रमाद शीलकों. इस रीतिवाला ज्ञावयति होता है. कर्णस्थापितविस्मृतशुंठीखंमापश्चिम दशपूर्वधर श्री वज्रस्वामिवत् . इहां कृष्णवासुदेव और वज्र स्वामिकी कथा जाननी. तथा गुणानुरागकोही लिंगांतर कहते है. क्षयोपशम ज्ञावसें पाये है जे ज्ञान दर्शन चारित्रादि रूप गुण तिनकों जैसें माता प्रियपुत्रकों पालती है तैसें पाले. तथा गुणवानके मिलनेसें ऐसा आनंद मानता है जैसा चिरकालसें प्रदेश गये प्रियबंधवके मिलनेसें आनंद होता है. तद्यथा.

असतां संगपंकेन यन्मनो मलिनीकृतं
तन्मेद्य निर्मलीभूतं साधुसंबंधवारिणा ॥ १ ॥
पूर्वपुण्यतरोरद्य फलं प्राप्तं मयानघं
संगेनासंगचित्तानां साधूनां गुणवारिणा ॥ २ ॥

अर्थ—असत्पुरुषरूप कादवका संग करनेसें मेरा मन मलिन हुआ था, सो आज सत्साधुका संबंधरूप जलसें निर्मल हुआ है. असंगचित्तवाले साधुओका गुणरूप जलसें मेरे पूर्वपुण्य रूप वृक्षका फल आज प्राप्त हुआ.

तथा गुणानुरागसेंही उद्यम करता है. ज्ञाव, सार सद्ज्ञाव सुंदर होके ध्यान अध्ययन तप प्रमुख साधुके कृत्योमें. और क्षा-

यक ज्ञावसें जो उत्पन्न होते है ज्ञान दर्शन चारित्र रूप गुण र-त्न, तिनका अभिलाषी होवे. होतीही है उद्यमवंतको अपूर्व कारण क्षयक श्रेणि क्रम करके केवलज्ञानादिककी संप्राप्ति. यह कथन जैनमतमें प्रसिद्ध है. गुणानुराग गुणकाही प्रकारांतरसें ल-क्षण कहते है. आपणा स्वजन होवे १ शिष्य होवे २ अपणा पूर्वकालका उपकारी होवे ३ एक गच्छका वसनेवाला होवे ४ इनके उपर जो राग करणा है सो गुणानुराग नहि कहा जाता है.

प्रश्न—तब साधुचारित्रिया इन स्वजनादिकोंके साथ कैसें वर्ते करुणा परदुःखनिवारण बुद्धि उक्तंच—

परहितचिन्ता मैत्री, परदुःखविनाशिनी तथा करुणा । पर-सुख तुष्टिर्मुदिता परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ १ ॥

अर्थ—परके हितमें चित्त रखना सो मैत्री, परदुःखको नाश करना सो करुणा, परसुखसें संतोष होवे सो मुदिता और परदोषकी उपेक्षा करे सो उपेक्षा होती है.

तिस करुणा करके रसिक राग द्वेष छोडके स्वजनादिकको शिक्षा करे अथवा स्वजनादिकाको तथा अन्यजनांको मोक्षमा-र्गमें प्रवर्त्तावे. गुणानुरागका फल कहते है. उत्तम–उत्कृष्ट जे गुण ज्ञानादिक तिनमें रागप्रीति प्रकर्ष होनेसें दुषमकाल, निर्बल संहननादि दूषणो करके पूर्णधर्म सामग्री नहि प्राप्ति हुइ है, सो सामग्री गुणानुरागी पुरुषको ज्ञावांतरमें पावणी दुर्लज्ञ नहि किंतु सुलज्ञ है, कथन करा गुणानुराग रूप छठा ज्ञाव साधुका लिंग.

अथ गुरुकी आज्ञा आराधन रूप सातमा लिंग लिखते है. प्रथम गुरु कीसकों कहिये ? जो छत्तीस गुणां करके युक्त होवे तिसको गुरु अर्थात् आचार्य कहतें है. वे छत्तीस गुण येह है.

आचार्यके छत्तीस गुण.

आर्य देशमें जन्म्या होवे तिसका वचन सुखाववोधक होता है, इस वास्ते देश प्रथम ग्रहण करा १ कुल–पिता संबंधी इक्ष्वाकु आदि उत्तम होवे तो यथोक्तिप्त–यथा उगाया संयमादि जारके वहनेसें थकता नहि है २ जाति माता अच्छे कुलकी जिसकी होवे सो जाति संपन्न होवे सो विनयादि गुणवान् होता है ३ रूपवान् होवे. " यत्राकृतिस्तत्र गुणा जवन्ति " ॥ इस वास्तेरूप ग्रहण करा ४ संहनन धृति युक्त होवे, दृढ बलवान् शरीर और धैर्यवान् होवे तो व्याख्यानादि करणेसें खेदित न होवे ५–६ अनाशंसी श्रोताओंसें वस्त्रादिककी आकांक्षा–वांछना न करे ७ अविकथ्थनो हितकारी–मर्यादा सहित बोले ८ अमायी–सर्व जगे विश्वास योग्य होवे ९ स्थिरपरिपाटी परिचित ग्रंथ होवे तो सूत्रार्थ जुले नहि १० ग्राह्यवाक्य सर्व जगे अस्खलित जिसकी आज्ञा होवे ११ जितपर्षत्–राजकी सजामें क्षोजको प्राप्त न होवे १२ जितनिद्रे–जितीहोवे निंदतो प्रमादि शिष्यको सूतांको स्वाध्यायादि करणे वास्ते सुखे आगता करे. १३ मध्यस्थ–सर्व शिष्योमें समचित्त होवे १४ देशकाल जावज्ञ–देशकाल जावका जानकार होवे तो सुखमें गुणवंत देशमें विहारादि करे १५ १६–१७ आसन्नलब्धप्रतिजः शीघ्रही पर वादीको उत्तर देने समर्थ होवे १८ नानाविधदेशजाषाविधिज्ञः नाना प्रकारके देशोंकी जाषाका जानकर होवेतो नाना देशोंके उत्पन्न हुए शिष्योंको सुखे समजाय शके १९ ज्ञानादि पंचाचार युक्त होवे तो तिसका वचन मानये योग्य होता है. २०-२१-२२-२३-२४ सूत्रार्थ तडुजयविधिज्ञः सूत्रार्थ तडुजयका जाननेवाला होवे तो उत्सर्गापवादका विस्तार यथावत् कह शकता है २५ आहारण दृष्टांत

हेतु अन्वय व्यतिरेकवान् कारणम दृष्टांतादि रहित उपपत्ति मात्र नय नैगमादिक इनमें निपुण होवे तो सुखसें प्रश्नको कह शकता है २९ ग्रहणा कुशल–बहुत युक्तियों करके शिष्योंको बोध करे ३० स्वसमयपरसमयज्ञ–स्वमतपरमतका जानकार होवे सुखसेंही तिनके स्थापन उच्छेद करनेमें निपुण होवे ३१–३२ गंभीरः अलब्ध मध्य होवे ३३ दीप्तिमान् पराधृष्य होवे ३४ शिवका हेतु होनेसें शिव जिस देशमें रहे तिस देशके मारि आदिकके शांति करणेसें ३५ सौम्य–स्वजनोके मन नयनको रमणिक लागे ३६ प्रश्रयादि अनेक गुणां करके संयुक्त होवे सो आचार्य प्रवचनानु योगके कथन करने योग्य होता है. अथवा आठ गणी संपदाको चार गुणां करीए तब बत्रीस होते है. आचार १ श्रुत २ शरीर ३ वचन ४ वाचना ५ मति ६ प्रयोगमति ७ संग्रह परिज्ञाता ८ इनका स्वरूप आचार नाम अनुष्ठानका है. सो चार प्रकारका है. संयम, ध्रुव, योग युक्तता. चारित्रमें नित्यसमाधिपणा १ अपने आपको जात्यादिकके अभिमानसें रहित करके २ अनियत विहार ३ वृद्ध शीलता शरीर मनके विकार रहित होवे ४ ऐसेही श्रुतसंपदा चार प्रकारे बहु श्रुतता जिस कालमें जितने आगम होवे तिनका प्रधान जानकार होवे १ परिचित सूत्रता. उत्क्रम क्रम करके वांचने समर्थ होवे २ विचित्र सूत्रका स्वसमयपरसमयादि भेदोका जानकार ३ घोष विशुद्धि करणता उदात्तादि घोषका जानकार ४ शरीर संपदा चार प्रकारे आरोह परिणाह युक्तता उचित दीर्घादि शरीर वान् १ अनवत्रप्यता अलज्जनीय अंग २ परिपूर्ण चक्षु आदि इंद्रिय होवे ३ तप प्रमुखमें शक्तिवान् शरीर संहनन ४ वच संपद् चार प्रकारे. आदेय वचन १ मधुर वचन २ मध्यस्थ वचन ३ संदेह रहित वचन ४ शिष्यको योग्य जानके उद्देश करावे १ शिष्यको

योग्य जानके समुद्देश करावे २ पूर्व दीया आलावा शिष्यकों आगया जानके नवीन आलावा—पाठ देवे ३ पूर्वापर अर्थकों अविरोधीपणेसें कहे ४ मति संपदा चार प्रकारे. अवग्रह १ ईहा २ अपाय ३ धारणा ४ संयुक्त होवे. प्रयोगमति संपद चार प्रकारे. यहां प्रयोगनाम वादमुद्राका है सो अपनी सामर्थ जानके वादीसें वाद करे १ पुरुषकों जानें क्या यह बौद्धादि है २ क्षेत्र परिज्ञानं क्या यह क्षेत्र माया बहुल है, साधुयोंका जक्तिवान् है वा नहि ३ वस्तुज्ञानं क्या यह राजा, मंत्री सजाजद्रक है वा अजद्रक है ४ संग्रह स्वीकरणंतिस विषे ज्ञान सो आठमी संपदसो चार प्रकारे. पीठ फलकादि विषया १ बालादि शिष्य योग्य क्षेत्र विषया २ यथावसरमें स्वाध्यायादि विषया ३ यथोचित विनयादि विषया ४ विनय चार प्रकारे आचार विनय १ श्रुत विनय २ विक्षेपणा विनय ३ दोष निर्घातन विनय ४ तिनमें आचार विनय. संयम १ तप २ गच्छ ३ एकल विहार ४ विषये चार प्रकारकी समाचारी स्वरूप जाने. तिनमे पृथ्विकाय संयमादि सत्तरे जेद संयमे आप करे, अन्यासें करावे, डिगतेकों संयममे स्थिर करे, संयममे यतन करने वालेकी उपवृंहणा करे. यह संयम समाचारी है १ पक्षादिकमें आप चतुर्थादि तप करे, अन्योंसे करावे. यह समाचारी है २ पडिलेहणादिमे, बाल ग्लानादिककी वैयावृत्तिमें डिगतकों गच्छमें प्रवर्तावना इनमे आप स्वयमेव उद्यम करे. यह गच्छ समाचारी है ३ एकल विहार प्रतिमा आप अंगीकार करे अन्योंको अंगीकार करावे. यह एकल विहार समाचारी ४ श्रुत विनयके चार जेद है. सूत्र पढाना १ अर्थ सुनावना २ हित, योग्यता अनुसारे वांचना देनी ३ निःशेष वाचना निःशेष समाप्तितक वाचना देनी ४ विक्षेपणा विनयके चार जेद है. मिथ्यात्व विक्षेपणा मिथ्या दृष्टिकों

स्वसमयमें स्थापन करना १ सम्यग् दृष्टिकों आरंभसें विक्षेपणा चारित्रमें स्थापन करना २ धर्मसें भ्रष्टकों धर्ममें स्थापन करना ३ चारित्र अंगीकार करनेवालेको तथा अपणेकों अनेषणीय भक्ता- दि निवारण करके हितार्थमें उद्यम करणा ४ दोष निर्घात विन- यके चार भेद है. क्रोधीका क्रोध दूर करणा १ परमतकी कांक्षा वालेकी कांक्षा छेदनी २ आपणा क्रोध दूर करणा ३ अपणी कांक्षा निवारणी येह देश मात्र स्वरूप लिखा है. विशेष स्वरूप देखवाहो वे तो व्यवहार सूत्र भाष्यसें जानना. ये पूर्वोक्त सर्व एकठे करीए तो छत्तीस गुण आचार्यके होते है. तीसरे प्रकारे छत्रीस गुण लिखते है,

छत्रीस गुणका तिसरा प्रकार.

व्रतषट् , कायषट् , ये प्रसिद्ध है अकल्पादि षट्क ऐसे है. एक शिष्यक स्थापना कल्प १ दूसरा कल्प स्थापना कल्प २ ति- समें प्रथम जिसने पिंडेषणा १ शय्या २ वस्त्र एषणा ३ पात्र एष- णा ४ ये चारों अध्ययन जिस शिष्यने सूत्रार्थसें पढे नहि है ति- सका आण्या आहार वस्त्रपात्रादि साधुओंकों लेने नहि कल्पते है. तथा स्तुबद्ध कालमे असमर्थ १ और वर्षा चतुर्मासमें असमर्थ स- मर्थ दोनोंको प्राये दीक्षा देनी नहि कल्पते है. यह स्थापना कल्प प्रथम १ दुसरा अनेषणीय पिंम १ शय्या २ वस्त्र ३ पात्र ४ ग्रहण नहि करणा ॥ १ ॥ गृहिभाजन कांस्यकटोरी प्रमुखमें भोजनादि नहि करे २ पर्यंक मंचकादि ऊपर नहि बैठना ३ भिक्षा वास्ते गयें गृहस्थके घरमें बैठना नहि ४ स्नान दो प्रकारका आंखकी पक्ष्मणामात्रभी प्रक्षालन करे तो देशस्नान सर्वांग क्षालना सर्वस्नान ये दोनो नहि करणा ५ शोभा विभूषा करणी वर्जे ६ सर्व अठारह हूए इनकों आचा-

यके गुण इस वास्ते कहते है, इनमें दोष लगे तो तिनका, प्रायश्चित्त आचार्य जानता है ज्ञानादि पंचाचारसहित होवे सो आचारवान् १ शिष्यके कहे अपराधको धारण करे सो आचारवान् २ पांच प्रकारके व्यवहारका जानकार होवे सो व्यवहारवान् ३ उव्वीलए अपव्रीमकः लज्जापनोदको आलोयणा करनेवालेकी लज्जा। दूर करणे समर्थ होवे जिस्से आधोयण करे. ४ आलोचित दूषणकी सिद्धि करणे समर्थ होवे ५ निर्जापक ऐसा प्रायश्चित्त देवे जैसा आगला परजीव वह शके ६ अपरिस्सावी आलोचकके दोष सुणके अन्यजनो आगे न कहे ७ सातिचारको परलोकादिकमें नरकादिकें दुःख दिखलावे ८ यथा दश प्रकारका प्रायश्चित्त जाननेवाला होवे, आलोचना १ प्रतिक्रमणा २ मिश्र ३ विवेक ४ व्युत्सर्ग ५ तप ६ छेद ७ मूल ८ अनवस्थाप्य ९ परांचित. १०

निरतिचार निकट घरसें भिक्षादिका ग्रहणा गुरु आगे प्रगट करणा इतनांही करणा आलोचना योग्य प्रायश्चित्त जानना. १ अना जोगादिसें विना पुंज्या थूंकादि थूंके तिसमें जीव वध नहि होवे तिसका मिथ्या दुःकृत देना सो प्रतिक्रमणाई २ संभ्रम भयादिकसें सर्व व्रतो के अतिचार लगे आलोचना प्रतिक्रमण मिथ्यादुःकृत रुप उभयाई ३ उपयोगसें शुद्ध जानने अन्नादि ग्रहण करे पीछे अशुद्ध मालम हुआ तिस अन्नादिकका परित्याग करणा सो विवेकाई ४ गमना गमन विहारादिमे पच्चीस उछ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करणा सो व्युत्सर्गाई ५ जिसके सेवनेसे निर्विकृतिकादि षट् मास पर्यंत प्रायश्चित दिजीए सो तपाई ६ जीस प्रायश्चितमें पंचकादि पर्यायका छेद करीए सो छेदाई ७ जिसमें फेर दीक्षा देनी पडे सो मूलाई ८ जबतक तपनसेवन चुके तबतक व्रतमें न स्थापन करीए सो अनवस्थाप्याई ९ जिस

में तप लिंग क्षेत्र कालके पारको प्राप्त होवे सो पारांचित. १०

ये पूर्वोक्त सर्व एकठे करीए तब बत्तीस होते है. ऐसा गुणां करी संयुक्त गुरु होवे तिसकी चरणांकी सेवा सम्यग् आराधना परंतु गुरुके निकट वर्त्ति मात्र नहि; किंतु सेवामें अतिशय करके रत होवे. कदाचित् गुरु निष्टुर कठोर वचनसें निर्ब्रंछना करे तोन्नी गुरुकों छोमनेकी इच्छा न करे. केवल गुरु विषये बहुमान करे. ऐसा विचारे कि धन्य पुरुषकी उपर गुरुकी दृष्टि पमती है, और अहित कार्यसें मना करते है. तथा गुरुका आदेश करनेकी इच्छावाला गुरुके समीप वर्त्ति रहे. ऐसा साधु चारित्र न्नार वहनेमें समर्थ होता है. तीस कोही सुविहित कहते है. कैसें यह निश्चय जानीए सोइ कहते है. सकल अगारह सहस्र जे शीलांग गुण है तिनका प्रथम कारण आचारांगमें गुरुकुलवास करणा कहा है तिसका प्रथम सूत्र.—

" सूयंमें आव संतेणं न्नगवया एव मखायं " इस सूत्रका न्नावार्थ यह है. सर्व धर्मार्थियोंनें गुरुकी सेवा करणी. इस वास्ते सदा गुरुचरणके समीप रहे चारित्रार्थी चारित्रका कामी. तथा गच्छमें वसनेंसें गुण है. गुरुके परिवारका नाम गच्छ है. तहां वसतांको बहुत निर्जरा है. विनय है. स्मारण, वारण, नोदनासें दूषण उत्पन्न नहि होते है. कदाचित् संयम छोमके निकलनेकी इच्छा होवेतोन्नी अन्य साधु उपदेशादिकसें तिसकों रख लेते है.

प्रश्न—आगमके तो साधुकों आहार शुद्धिही मुख्य चारित्रकी शुद्धिका हेतु कहा है यडुक्तं.

" पिंडं असोहयंतो अचरित्ती इच्छा संसउनच्छि । चारित्तं मिश्र संते सव्वादि खानिरे यथा. " अर्थ—जो आहारकी शुद्धि न करे वो चारित्रीया नहि, तब सर्व दीक्षा निरर्थक है. तथा—

" जिण सासणस्समूलं भिखायरिया जिणेहिं पन्नत्ता ! इच्छ परितप्पमाणं तंजाण सुमंद सद्धीयं. " अर्थ—जिन शासनका मूल भिक्षाही शुध्धि तीर्थंकरोनें कही है, जो इसमें शिथिल है सो मंद श्रद्धावाला जानना. आहारकी शुध्धि बहुते साधुओंमें वसता दुष्कर है ऐसा मेरेको भासन होता है. इस वास्ते उकला होके आहार शुध्धि करना चाहिये. ज्ञानादिकके लाभकों क्या करणा है. मूल भूत चारित्रही पालना चाहिये. मुलके होतें हुआही अधिक लाभकी चिंता करणी उचित है.

उत्तर—पूर्वोक्त कहना सत्य नहि है. जिस वास्ते गुरु परतंत्रतासें रहित होनेसें दुसरे साधुकी अपेक्षाके अभावसें लोभको अति दुर्जय होनेंसें क्षण क्षणमें परि वर्त्तमान परिणाम करके एकला साधु आहार शुध्धिको पालनेही समर्थ नहि है. तथा चोक्तं.

" एगणियस्स दोसा इच्छी साणे तहेव पडिणीए, भिखवि सोहिं महव्वय तम्हा सवि इद्य एगमणं " ॥ १ ॥

एकले साधुकों स्त्रीसें दोष होवे, श्वानसें, प्रत्यनीकसें उपद्रव रूप दोष होवे, भिक्षाकी शुध्धि न होवे, महाव्रत नहि होवे इस वास्ते दुसरे साधुकों साथ रहना और चलना चाहिये. तथा

" पिल्लि जेसण मिक्को " इत्यादि. अर्थात् एकला एषणाका नाश करे तब एषणाको अभावसें कैसें मूल भूत चारित्र पालनेमें समर्थ होवे. कोइ एकला शुध्द भिक्षाभी ग्रहण करे तोभी.

" सव्व जीण पडिकुठं अणवथ्था थेर कप्प भेउय । एगोय सुया उत्तोवि हणइ तव संजमं अइयारा " ॥ १ ॥ इति वचनात्.

अर्थ—सर्व तीर्थंकरोनें एकला विचरणा निषेध करा है, एकला रहणा अनवस्थाका कारण है. स्थिवर कल्पका नाश भेद

करणा है. एकला साधु अच्छे नपयोगवालाभी तप संयमका नाश करनेवाला है, और अतिचार सेवनेवाला है. तीन भवनके स्वामीकी आज्ञा विरोधनेसें एकलपणा सुंदरताको नहि प्राप्त होता है, तथा चाह सूत्रकारः।

"एयस्स परिच्चाया सुद्धं गाइ विन सुंदरं भणियं। कं-मावियरिशुद्धं गुरु आणा वत्तिनो विंति ॥ १२० ॥ व्याख्या. एयस्स गुरु कुल वासके परित्यागसें सर्वथा गुरु कुल गेमनेसें शुद्ध भिक्षा, शुद्ध नपाश्रय, वस्त्रपात्रादिभी सुंदर शोभनिक नहि है. ऐसा कथन आगमके वेत्ताओंने कथन करा है. तथाच तदुक्तिः

"सुद्धं गाइ सुजुत्तो गुरुकुल चागा इणेह विन्नेन सवर ससर खपिंगव्व घाय पाया भिवण तुल्लो ॥ १ ॥ अस्य व्याख्या. शुद्धों गनिर्दोष भिक्षा लेता है. कलह ममत्व त्यागा है जिसने ऐसा नद्यमी ऐकर गुरुकुलवास त्यागे तथा सूत्रार्थकी हानि जानके ग्लान रोगीकी वैयावृत्त त्याग देवे तिसको जैनमतमें कैसा जानना जैसा सवर राजाको सरजस्ककी पीछी वास्ते मारणा, मारतो देना, परंतु पगां करके गुरुके शरीरका स्पर्श न करना ऐसा पूर्वोक्त एकल विहारीका चारित्र पालना है. कथानक संप्रदायसें ऐसा है.

किसी एक संन्निवेशमें शबर नामा सरजस्कोंका भक्त एक राजा होता भयां; तिसकों दर्शन देने वास्ते एकदा प्रस्तावे तिसका गुरु मोर पांखके चंद सहित छत्र शिर नपर धारण करता हुआ तहां आया तब तिसका दर्शन राजाने राणी सहित करा तिसका मोर पांखका छत्र देखके राणीका मन तिस छत्रके लेनेको चलायमान हुआ, तब राजाकों कहा, तब राजाने सरजस्क गरुसें मोर पांखका छत्र मागा, तिस देशमें मोरपीछी, मोरपंख

नहि होते थे, इस वास्ते गुरुकी देनेकी इच्छा नहि हुइ, तब राजा अपने घेर गया. तहां राणीने तो ज्ञोजनका करना त्यागा; मोर पीछका छत्र आवेगा तबही ज्ञोजन करुंगी. तब राजाने वारबार सरजस्करसें छत्र लेने वास्ते प्रार्थना करी तोज्ञी गुरु देता नहि, तदा दुर्वार प्रेम ग्रहके व्यामोहसें राजा अपने सेवकोंसें कहता है–हगात् जोरावरीसें खोसल्यो ? तब सेवक कहते है गुरु मागनेसें देता नहि और जोरावरीसें लेना चाहते है तब गुरु शस्त्र लेके हमको मारणेकुं आता है. तब राजा कहता है. तुंम दुरसें बाणोंसें विंधके मारगेरो और छत्र लीन लेवो परंतु अपने पगोका स्पर्श गुरुके शरीरसें न करणा, क्योंकि गुरुकी अवज्ञा महा पातकका हेतु है.

जैसा शबरराजा, गुरुका विनाश करता हुआ और पगांका स्पर्श करणा मना करता हुआ विवेक है तैसा गुरुकुल वासके त्यागनेवाले शुद्ध आहार लेनेवाले साधुका संयम पालना है; और आधा कर्म उदेशिकादि दूषण सहितज्ञी आहार गुरु आज्ञा वर्त्तिकों शुद्ध है. निर्दोष है, शुद्ध आहारकातो क्या कहना है जो गुरुका आदेश माने तिसकों गुरु आज्ञा वर्त्ती कहते है, ऐसा कथन आगमके जानकार करते है. इस वास्ते गुरु आज्ञा मोटी है. तिस वास्ते गुरु आज्ञा माननेवाला धन्य है, प्रशंसने योग्य है, ज्ञले मनवाले है. इस वास्ते गुरु कर्कश वचनसें शिक्षा देवे तदा मनमें रोष न करे. गुरु कुलवास न छोडे.

प्रश्न—जैसा तैसा गुरुगण संपत्तिके वास्ते सेवना चाहिये के विशिष्ट गुणवाला सेवना चाहिये ?

उत्तर—गुणवानही, गुण गण अलंकृतही गुरु हो शक्ता है सो श्रुत धर्मका उपदेशक, चारित्र धर्मका पालनेवाला, संविज्ञ,

गीतार्थ गुरु मानना योग्य है. गुरुके व्रत षट्क ५ काय षट्क ६ अकल्प १३ गृहस्नाजन १४ पर्यंक १५ गृहस्थके घरे बैठना १६ स्नान १७ शोन्ना १८ ऐसा अठारह गुणका स्वरूप दश वैकालिकके छठे अध्ययनमें श्री शय्यंन्नव सूरिजीए विस्तारसें कथन करा है. इन अठारह गुण विना गुरु नहि हो शक्ता है–जैसें तंतु विना पट–वस्त्र नहि हो शक्ता है. प्रतिरूप. योग्यरूपवान् होवे १ तेजस्वी होवे २ युग प्रधानागमका जानकार होवे ३ मधुर वचन होवे ४ गंन्नीर होवे ५ बुद्धिमान् होवे ६ सो नपदेश देने योग्य आचार्य है. किसीके आलोया दूषण दुसरे आगे न कहे १ सौम्य होवे २ संग्रह शील होवे ३ अन्निग्रह मति होवे ४ हितकारी मर्यादा सहित बोले ५ अचपल होवे ६ प्रशांत हृदय होवे, इत्यादि, तथा देश कुल रूप इत्यादि विशेष गुण करके संयुक्त होवे सो गुरु जैन सिद्धांतमें माना है. कार्य साधक होनेसें. जिसमें पूर्वोक्त गुण न होवे सो जैन मतके प्रवचन वेत्ताओने गुरु नहि माना है.

प्रश्न—सांप्रत कालके अनुन्नवसें पूर्वोक्त सर्व गुणवाला गुरु मिलना दुर्लन्न है; कोइन्नी किसीसें किसी गुण करके हीन है, कोइ अधिक है ऐसा तारतम्य न्नेद करके अनेक प्रकारके गुरु नपलब्ध होते है. तिस वास्ते तिनमेंसें किसकों गुरु मानना चाहिये और किसकों गुरु न मानना चाहिये ऐसा दोलायमान मनवाले हमकों क्या नचित है. ?

नत्तर—" मूल गुण संपनत्तो नदोस लव जोग नइ मोहेन। मदुर वक्कम नपुण पवत्तियव्वो जहुत्तमि ॥ १३१ ॥ व्याख्या.

मूल गुण पंचमहाव्रत षट्काय आदि तिन करके संयुक्त सम्यक् सद्बोध, प्रधान प्रकर्ष नद्यमातिशय करके युक्त ऐसें मूल

गुणां करके संप्रयुक्त गुरु युक्त होता है. कदाचित् गुरु मंद बुद्धिवाला और बोलनेमें अचतुर, थोमेसे प्रमाद्वाला होवे, इत्यादि लेश मात्र दूषण देखके यह गुरु त्यागने योग्य है ऐसा मनमें न माननां क्योंकि मूल गुण पांच जिसमें होवे सो अन्य किसी गुण करके रहितज्री गुरु गुणवंत है. चंमरुद्रवत्, इत्यादि आगम वचनानुसारे मूल गुण शुद्ध जो गुरु होवे सो बोमने योग्य नहि है. कदाचित् गुरु प्रमादवान् हो जाते तब मधुर वचन करके और अंजलि प्रणाम पूर्वक ऐसें कहे–अनुपकृत, परहितरत तुमने ज्ञला हमको गृहवाससें छोमाया अब उत्तर मार्गके प्रवर्त्तावनेसें अपणी आत्माकों ज्ञीम ज्ञवकांतार संसारसें तारो. इत्यादि प्रोत्साहक वचनोंसें फेर ज्ञले मार्गमें प्रवर्त्तावे जैसे पंथग मुनिने सेलग राजऋषिकों फेर मार्गमे स्थिर करा. अत्र कथा ऐसें करता साधुकों जो गुण होवे सो कहते है. ऐसे मुल गुण संयुक्त गुरुकों न बोडता हुआ और गुरुकों सत्य मार्गमें प्रवर्त्तावता हुआ साधुनें बहुमान सप्रीति ज्ञक्ति गुरुकी जरी है. तथा कृतज्ञता गुण अंगीकार करा तथा सकल गच्छकों गुणांकी वृद्धि अधिक करी, क्योंकि सम्यक् आज्ञावर्त्ती पुरुष गछ गुरुके ज्ञानादि गुणकी वृद्धि करताही है जेकर शिष्य शिखाये पढाये अविनीत होवे गुरुकी शिक्षा न माने तब गुरु तिनको त्याग देता है. कालिकाचार्यवत्. तथा अनवस्था मर्यादाकी हानी तिसका त्याग करणा होता है. यह अज्ञिप्राय है कि जो एक गुरु मुल गुण महाप्रसादको धारण करणेकों स्तंज्ञ समान ऐसें गुरुको अल्प दोष दुष्ट जानके जो त्यागे तिसकों अन्यज्ञी कोइ गुरु नहि रचे. कालके अनुज्ञावसें सूक्ष्म दूषण प्राये त्यागनेकों कोइज्ञी समर्थ नहि हो शक्ता है. इस हेतुसें उसको कोइज्ञी गुरु नहि रुचेगा. तबतो एकला विचरेगा तब.

" एकस्स कउधम्मो सच्छंद मइ पयारस्स । किंवा करे इक्को परिहर उकंइमकज्जंवा ॥१॥ कत्तो सुतथ्थागम पमि पुछण चोइणे वइकस्स । विणय वेया वच्चं आराहण याव मरणंते ॥ २ ॥ पिल्ले जेसण मिक्को पइन्न पमया जणाउ निच्चनयं । काउमणो विअकथ्थं न तरइ काउण बहु मझे ॥ ३ ॥ उच्चार पासवण वंत मुत मुच्छा इमो हिउ इक्को । सदव जाण विहथ्थो निखिव इव कुणइ उडाहं ॥ ४ ॥ एगदिव संपि वहुया सुहाय असुहाय जीव परिणामम । इक्को असुह परिणओ चइय आलंवणं लडु " मित्यादिना निषिद्ध मप्ये काकित्वं. । इनका जावार्थ. एकले विचरणेवाले साधुके धर्म नहि, स्वच्छंदमति होनेसें. एकला क्या करे; कैसें एकला अकार्य परिहरे; एकलेकों सूत्रार्थका आगम नहि, किसको पूछे; एकलेको कौन शिक्षा देवे; एकला विनय वैयावृत्तसें रहितहै. मरणांतमें आराधना न करशके. एषणा न शोधी शके. प्रकीर्ण स्त्रीओंसें तिसकों नित्य जय है. बहुत साधुओंमें रहनेवालाके मनमें अकार्य करणेकी इच्छाजी होवे तोजी नहि कर शक्ता है. उच्चार, विष्टा, मूत्र, वमन, पित्त, मूर्छा इन करके मोहित एकला कैसें पात्रांके हाथ लगावे. कैसें पाणी लावे. जेकर जगत्‌की अशुचि न गिणेतो जगतमें जिन मतका उड्डाह निंदा करावे. एकला एक अवलंबन खोटा लेके सन्मार्गसें भ्रष्ट हो जावे. इत्यादि गाथाओसें साधुको एकला रहणा निषेध करा है. तथा एकला जो होना है सो स्वछंदसें सुख जानके होता है तिसकी देखादेख अन्यअन्य मूढ, विवेक विकलजी एकले होते है. ऐसी अनवस्था करते है. और जो पूर्वोक्त गुरु गच्छमें रहते है वे पूर्वोक्त सर्व दूषणोंसे रहित होते है, गुरूकी सेवा करणेंसें. इत्यादि अन्यजी गुरुग्लान, बाल, वृद्धादिकोंकी विनय वैयावृत्त करणेसें सूत्रागम कर्म निर्जरादि अनेक गुण होते है. जो विपर्यय

होवे तिसकों क्या होवे सो कहते है. मूल गुणधारी गुरुके त्यागनेसें उक्त गुण गुरु बहु मानादि कृतज्ञता सकल गच्छ गुणाकी वृद्धि अनवस्था परिहार इत्यादि गुणांका उच्छेद होवे. लोकमें साधुओंका विश्वास नहि होवे. लोक ऐसे माने—ये एकले परस्पर निंदक स्वछंदचारी अन्यअन्य प्ररूपणा करनेवाले सत्यवादी है ? वा मृषावादी है ? जब लोकमें ऐसा होवे तब तिनकों परन्नवमें जिनधर्मकी प्राप्ति न होवे. इत्यादि एकले स्वच्छन्दचारी साधुकों दूषण होते है. जेकर थोडेसें दूषण प्रमाद जन्य देखके गुरु त्यागने योग्य होवे तब तो इस कालमें कोइन्नी गुरु मानने योग्य नहि सिद्ध होवेगा. क्योंकि जैनमतके सिद्धांतमें पांच प्रकारके निर्गंथ कहे है. पुलाक १ बकुश २ कुशील ३ निर्ग्रंथ ४ स्नातक ५ इन पांचोका न्नेद स्वरूप देखना होवे तो श्री न्नगवती सूत्रसें तथा श्री अन्नयदेवसूरि कृत पंच निर्ग्रंथी संग्रहणीसें जानना. इन पांचोमेंसें निर्ग्रंथ, स्नातक ये दोनों तो निश्चयही अप्रमादी होते है. किंतु ते कदेइ होते है, श्रेणिके मस्तके सयोगी अयोगी गुणस्थानमें होते है. इस वास्ते तीर्थकी प्रवृत्तिके हेतु नहि है. और पुलाकन्नी लब्धिके होनेसेंही होता है. यह तीनो सांप्रत कालमें व्यवच्छेद हो गये है. इस वास्ते बकुश कुशीलसेंही इकवीस हजार वर्ष तक निरंतर श्री वर्धमान न्नगवंतका तीर्थ चलेगा. तीर्थ प्रवाहके हेतु बकुश कुशील है. और बकुश कुशील अवश्यमेव प्रमादजनित दूषण लव करके संयुक्त होते है. जेकर पूर्वोक्त दूषणोवालोकों साधु न मानीये तब तो सर्व साधु त्यागने परिहरणे योग्य हो जायेंगे. यही बात चित्तमें लाकर सूत्रकारकहताहै.

" बकुश कुशीला तीथ्थं दोस लवाते सुनियम संन्नविणो ।
जई तेहिं वद्यणिज्जो अवद्यणिद्यो तऊपण्णि ॥ १३५ ॥ " व्याख्या.
बकुश कुशील व्यावर्णित स्वरूप दोनो निर्ग्रंथ सर्व तीर्थंकरोके

तीर्थ संतानके करनेवाले है. इस वास्तेही सूक्ष्म दोष बकुश कुशलमें निश्चय करके होते है. जिस वास्ते तिनके दो गुण स्थानक प्रमत्त अप्रमत्त होते है. प्रमत्त गुणस्थानकमें अंतर्मुहूर्त्त काल तक रहता है. जब प्रमत्त गुणस्थानकमें वर्त्तता है तब प्रमादके होनेसें अवश्यमेव सूक्ष्म दोष लववाला साधु होता है; परंतु ज्हां तक सातमा प्रायश्चित्त आवनेवाले डुषण सेवे तहां तक तिसको चारित्रवानही कहिये. तिस वास्ते बकुश कुशीलमें निश्चयसेंही दूषण लवांका संजव है. जेकर तिनको साधु न मानीए तवतो अन्य साधुके अन्नावसें जगवंतके कहे तीर्थकान्नी अन्नाव सिद्ध होवेगा. इस उपदेशका फल कहते है.

" इय जाविय परमठ्ठा मझ्झठ्ठा नियगुरुं नमुंचंति । सव्वगुण संप उगं अप्पाए मिवि अपिठंता " ॥ १३६ ॥ व्याख्या. ऐसें पूर्वोक्त प्रकार करके मनमें परमार्थका विचारनेवाला मध्यस्थ अपक्षपाती पुरुष अपने धर्माचार्य गुरुको मूल गुण मुक्ता माणिक्य रत्नाकर गुरुकों न गेमे, न त्यागे. क्या करता हुआ सर्वगुण सामग्री अपणेंमें न देखता हुआ. तथा अन्य दूषण यह है. जो गुरुका त्यागनेवाला है वो निश्चय गुरुकी अवज्ञा करनेवाला है, तब तो महा अनर्थ है सो आगमद्वारा स्मरण कराके कहते है.

" एवं अवमन्नंतो वुत्तो सुत्तं मिपाव समणुत्ति । मह मोह बंध गोविय खिंतंतो अप्पम्मि तप्पंतो ॥ १३६ ॥ व्याख्या. ऐसे पूर्वोक्त कहे गुरुको हीलता हुआ साधु सूत्र उत्तराध्ययनमें पाप श्रमण कहा है. और गुरुकों निंदने, खिजनेवाला आवश्यक, समवायांगादिकमें महा मोहनीय कर्मका बंध करनेवाला कहा है.

प्रश्न—गुरुकों सामर्थ्यके अन्नाव हुए जेकर शिष्य अधिकतर यतनावाला तप श्रुत अध्ययनादि करे सो करणा युक्त है ? वा गुरुके लाघवका हेतु होनेसें अयुक्त है ?

उत्तर—गुरुकी आज्ञा संयुक्त करे तो गुरुके गौरवका हेतु होवे. शिष्य गुणमें अधिक होवे तो गुरुके गौरवका हेतु है. श्री वज्रस्वामिके हुए सिंहगिरि गुरुवत्.

अत्र कथा. शिष्यके गुणाधिक हुआ गुरुका गौरव है, किंतु तिस शिष्य गुणाधिकनेजी गुरुकों गुणहीन जानकर अपमान करना योग्य नहि. ऐसें गुरुकी जावसें विनय, जक्ति, वैयावृत्यादि करे तबही साधु शुद्ध, अकलंक चारित्रका जागी होवे. इस वास्ते डुष्कर क्रियाकारकजी शिष्य तिस गुरुकी अवज्ञा न करे परंतु तिसकी आज्ञा करनेवाला होवे. उक्तंच—

" उठम दसम डुवालसेहिं मासद्ध मासखमणेहिं । अकरंतो गुरुवयणं अणंतसंसारिओ जणिओ. अर्थ—उपवास, उठ, अठम, दसम, द्वादशम, अर्धमास, मासक्षपण तप करनेवाला शिष्य गुरुका वचन न माने तो अनंतसंसारी कहा है.

अथ साधुके लिंग सामाप्ति करता हुआ ग्रंथकार तिसका फल कहता है, पूर्वोक्त सात लक्षण सकल मार्गानुसारिणी क्रिया १ श्रद्धा प्रधान धर्ममें २ समजावने योग्य सरल होनेसें ३ क्रियामें अप्रमाद ४ शक्ति अनुसारे अनुष्टान करे ५ गुरुसें बहुत राग ६ गुरु आज्ञा आराधन प्रधान ७ इन सात लक्षणोका धरनेवाला जाव साधु होता है. तिस जाव साधुकों सुदेवत्व, सुमनुष्यत्व, जातिरूपादिक लाज होवे, और परंपरासें मुक्ति पद मिले. ऐसे साधुकोंही गुरु मानना चाहिये. कथन करा श्रावक साधुके संबंध जेदसें दो प्रकारका धर्म रत्न.

इति श्री धर्मरत्न प्रकरणानुसारेण गुरुतत्वका स्वरूप किंचित मात्र लिखा है.

अथ जैनमतका किंचित् स्वरूप लिखते है.

प्रथम तो आत्माका स्वरूप जानना चाहिये. यह जो रचा है सोइ जीव है, यह आत्मा स्वयंभू है परंतु किसीका रचा हुआ नहि है. अनादि अनंत है. पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध आठ स्पर्श इन करके रहित है. अरूपी है आकाशवत. असंख्य प्रदेशी है. प्रदेश उसको कहते है जो आत्माका अत्यंत सूक्ष्म अंस कथंचित् भेदाभेदरूप करके एक स्वरूपमें रहे तिनका नाम आत्मा है. सर्व आत्म प्रदेश ज्ञानस्वरूप है. परंतु आत्माके एकैक प्रदेश उपर आठ कर्मकी अनंत अनंत कर्मवर्गणा, ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ सुखदुःखरूप वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नामकर्म ६ गोत्रकर्म ७ अंतरायकर्म ८ करके आच्छादित है. जैसें दर्पणके उपर छाया आ जाती है. जब ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षयोपशम होता है तब इंद्रिय और मनद्वारा आत्माको शब्द १ रूप २ रस ३ गंध ४ स्पर्श ५ तिनका ज्ञान और मानसी ज्ञान उत्पन्न होता है. कर्मोका क्षय और क्षयोपशमका स्वरूप देखना होवे तब कर्म प्रकृति और नंदिकी बृहत् टीकामेंसे जान लेना.

इस आत्माके एकैक प्रदेशमें अनंत अनंत शक्ति है. कोई ज्ञानरूप, कोई दर्शनरूप, कोई अव्याबाध सुखरूप, कोई चारित्र रूप, कोई थिररूप, कोइ अटल अवगाहनारूप, कोई अनंत शक्ति सामर्थ्यरूप, परंतु कर्मके आवरणमें सर्व शक्तिया लुप्त हो रहि है. जब सर्व कर्म आत्माके साधनद्वारा दुर होते है. तब यही आत्मा, परमात्मा, सर्वज्ञ, सिद्ध, बुद्ध, ईश, निरंजन, परम ब्रह्मादिरूप हो जाता है. तिसहीका नाम मुक्ति है. और जो कुछ आत्मामे नर, नारक, तिर्यग्, अमर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर

दुस्वर, उंच, नीच, रंक, राजा, धनी, निर्धन, दुःखी, सुखी जो जो अवस्था संसारमें जीवांकी पीछे हुई है, और अब हो रहि है, और आगेको होवेगी, सो सर्व कर्मोंके निमित्तसें है. वास्तवमें शुद्ध द्रव्यार्थिक नयके मतमें तो आत्मामें लोक १ तीनवेद २ थापना ३ उच्छेद मुख्य करके नहि ४ पाप नहि ५ पुन्य नहि ६ क्रिया नहि ७ कुच्छ करणीय नहि ८ राग नहि ९ द्वेष नहि १० बंध नहि ११ मोक्ष नहि १२ स्वामी नहि १३ दास नहि १४ पृथ्वीरूपी १५ अपरूप १६ तेजस्काय १७ वायुकाय १८ वनस्पति १९ बेंद्री २० तेंद्री २१ चौरंद्री २२ पंचेंद्री २३ कुलधर्मकी रीत नहि २४ शिष्य नहि २५ गुरु नहि २६ हार नहि २७ जीत नहि २८ सेव्य नहि २९ सेवक नहि ३० इत्यादि उपाधय्या नहि परंतु इस कथनको एकांतवादी वेदांतिओकी तरें माननेसें पुरुष अतिपरिणामी होके सत्स्वरूपसें भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि हो जाता है. इस वास्ते पुरुषको चाहिये, अंतरंग वृत्तिमेंतो शुद्ध द्रव्यार्थिक नयके मतको माने और व्यवहारमें जो साधन अढारह दूषण वर्जित परमेश्वरने कर्मोपाधि दूर करनेके वास्ते कहे है तिनमें प्रवर्त्ते. यह स्याद्वाद मतका सार है.

तथा यह जो आत्मा है सो शरीर मात्र व्यापक है. और गीणतीमें आत्मा भिन्न भिन्न अनंत है. परंतु स्वरूपमें सर्व चेतन स्वरूपादिक करके एक सरीखे है परंतु एकही आत्मा नहि, तथा सर्व व्यापीभी नहि. जो एक आत्माको सर्व व्यापी और एक मानते है वे प्रमाणके अनभिज्ञ है. क्योंकि ऐसे आत्माके माननेसें बंध मोक्ष क्रियादिका अभाव सिद्ध होता है तथा आत्माका यह लक्षण है.

यः कर्त्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च ।
संसर्त्ता परिनिर्वर्त्ता सआत्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥

अर्थः—जो शुज्जाशुज्ज कर्म ज्ञेदांका कर्त्ता है, और जो करे कर्मका फल ज्ञोगनेवाला है. और जो ज्रमण करनेवाला, और निर्वाण होता है सोइ आत्मा है. इनसेंसें एक वातज्ञी न मानीएतो सर्व शास्त्र जुठे ठहरेंगे, और शास्त्रांका कथन करनेवाला अज्ञानी सिद्ध होवेंगे. तथा पूर्वोक्त आत्माके साथ जेकर पुन्य पापका प्रवाहसें अनादि संबंध न मानीएतो बमे दूषण मतधारीओके मतमें आते है. वे ये है.

जेकर आत्माको पहिलां माने और पुन्य पापकी उत्पत्ति आत्मामें पीछे माने तबतो पुन्य पापसें रहित निर्मल आत्मा सिद्ध हुए १ निर्मल आत्मा संसारमें उत्पन्न नहि हो शकता है. २ विना करे पुन्यपापका फल ज्ञोगना असंज्ञव है ३ जेकर विना करे पुन्य पापका फल ज्ञोगनेमें आवे तबतो सिद्धमुक्तरूपज्ञी पुन्य पापके फल ज्ञोगेंगे ४ करेका नाश, विना करेका आगमन यह दूषण आवेगा ५ निर्मल आत्माके शरीर उत्पन्न नहि होवेगा ६ जेकर विना पुन्य पापके करे ईश्वर जीवकुं अच्छी बुरी शरीरादिककी सामग्री देवेगा तब ईश्वर अन्यायी, अज्ञानी, पूर्वापर विचार रहित, निर्दयी, पक्षपाती इत्यादि दूषण सहित सिद्ध होवेगा तब ईश्वर कायका ७ इत्यादि अनेक दूषण है. इस वास्ते प्रथम पक्ष असिद्ध है. १

डुसरा पक्ष कर्म पहिलें उत्पन्न हुए और जीव पीछे बना यहज्ञी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि जीवका उपादान कारण कोइ नहि १ अरूपी वस्तुके बनानेमें कर्त्ताका व्यापार नहि २ जीवने कर्म करे नहि इस वास्ते जीवकों फल न होना चा-

हिये ३ जीव कर्त्ताके विना कर्म उत्पन्न नहि हो शकते ४ जे कर कर्म ईश्वरने करे तब तो तिनका फलज्ञी ईश्वरको ज्ञोगना चाहिये. जब कर्म फल ज्ञोगेगा तब ईश्वर नहि ५ जेकर ईश्वर कर्म करके अन्य जीवांको लगावेगा तव निर्दय, अन्यायी, पक्षपाती, अज्ञानी, सिद्ध होवेगा. क्योंकि जब बुरे कर्म जीवके विना करे जीवको लगाये तबतो जो नरक गतिके दुःख तिर्यग् गतिके दुःख, दुर्ज्ञग, दुःस्वर, अयश, अकीर्त्ति, अनादेय, दुःखी, रोगी, ज्ञोगी, धनहीन, जूख, प्यास, शीतोष्णादि नाना प्रकारके दुःख जीवने ज्ञोगने ज्ञोगे है वे सर्व ईश्वरकी निर्दयतासें हुये १ विना अपराधके दुःख देनेसें अन्यायी २ एककुं सुखी करनेसे पक्षपाती ३ पीछे पुन्य पाप दूर करणेका उपदेश देनेसे अज्ञानी ४ इत्यादि अनेक दूषण होनेसे दूसरा पक्षज्ञी असिद्ध है.

तीसरा पक्ष जीव और कर्म एकही कालमें उत्पन्न हुए यह पक्षज्ञी मिथ्या है; क्योंकि जो वस्तु साथ उत्पन्न होती है तिनमें कर्त्ताकर्म नहि होते है. तिस कर्मका फल जीवकु न होना चाहिये. जीव और कर्मोका उपादान कारण नहि. जेकर एक ईश्वर जीव और कर्मोका उपादान कारण मानीए तो असिद्ध है, क्योंकि एक ईश्वर जमचेतनका उपादान कारण नहि हो शक्ता है. ईश्वरकुं जगत रचनेसें कुच्छ हानि नहि. जब जीव और जम नहि थे तब ईश्वर किसका था. जब कर्म स्वयमेव उत्पन्न नहि हो शक्ते है. इस वास्ते तिसरा पक्ष मिथ्या है.

चौथा पक्ष. जीवही सच्चिदानंदरूप एकला है. पुन्य पाप नहि. यहज्ञी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि विना पुन्य पाप जगतकी विचित्रता कदापि सिद्ध न होवेगी.

पांचमा पक्ष. जीव और पुन्य पापही नहि है. यहनी कहना मिथ्या है क्योंकि जब जीवही नहि तब यह ज्ञान किसकों हुआ कि कुच्छ है ही नहि है. इस वास्ते जीव और कर्मोंका संयोगसंबंध प्रवाहसे अनादि है. तथा यह जो आत्मा है सो कर्मोंके संबंधसें त्रस थावर रूप हो रहा है.

थावर पांच है. पृथ्वी १ जल २ अग्नि ३ पवन ४ वनस्पति ५. और त्रस चार तरेंके है. दो इंद्रिय १ तेंद्रिय २ चौरेंद्रिय ३ पंचेंद्रिय ४ तथा नारक १ तिर्यंच २ मनुष्य ३ देवता ४ तिनमें नरकवासीओके १४ नेद है. तिर्यंच गतिके ४८ नेद है. मनुष्य गतिके ३०३ नेद है. देव गतिके १९८ नेद है. ये सर्व ५६३ नेद जीवांकें है.

यह आत्मा कथंचित् रुपी और कथंचित् अरूपी है. जब तक संसारी आत्मा कर्म करी संयुक्त है तब तक कथंचित् रूपी है. और कर्म रहित शुद्ध आत्माकी विवक्षा करीए तब कथंचित् अरूपी है. जेकर आत्माकों एकांतरूप मानीए तब तो आत्मा जम सिद्ध होवेगा और कटनेसें कट जावेगा और जेकर आत्मा एकांत अरूपी मानीए तो आत्मा क्रिया रहित सिद्ध होवेगा तब तो बंध मोक्ष दोनोका अन्नाव होवेगा. जब बंध मोक्षका अन्नाव हुआ तब शास्त्र और शास्त्रकार जूठा ठहरेंगे, और दीक्षा दानादि सर्व निष्फल होवेंगे. इस वास्ते आत्मा कथंचित् रुपी कथंचित् अरूपी है. तथा तत्वालोकालंकार सूत्रमें आत्माका स्वरूप लिखा है.

" चैतन्य स्वरूपः परिणामी कर्त्ता साक्षाद्नोक्ता स्वदेह परिमाणः प्रतिक्षेत्रं निन्नः पौद्गलिकं दृष्टाश्चर्यमिति. " इस सूत्रका अर्थः

चैतन्य साकार, निराकार उपयोग स्वरूप जिसका सो चैतन्य स्वरूप १ परिणमन समय समय प्रति पर अपर पर्यायोमें गमन करना अर्थात् प्राप्त होना सो परिणामः सो नित्य है इसकें सो परिणामी २ कर्ता है अदृष्टादिकका सो कर्त्ता ३ साक्षात् उपचार रहित भोक्ता है सुखादिकका सो साक्षाद्भोक्ता ४ स्वदेह परिमाण अपणे ग्रहण करे शरीर मात्रमें व्यापक है ५ शरीर शरीर प्रति अलग रहे ६ अलग अलग अपने अपने करे कर्मोके आधीन है ७ इन स्वरूपोका खंमन मंमन देखना होवे तब तत्वालोकालंकारकी लघुवृत्ति देख लेनी. तथा ये आत्मा संख्यामें अनंतानंत है. जितने तिन कालके समय तथा आकाश के सर्व प्रदेश है तितने है. मुक्ति होनेसें कदापि सर्वथा संसार खाली नहि होवेगा—जैसें आकाशको मापनेसें कदापि अंत नहि आवेगा. तथा आत्मा अनंतानंत जिस लोकमें रहते है सो असंख्यासंख्य कोमाकोमि जोजन प्रमाण लांबा चोमा उंमा नीचा है. तथा इस आत्माके तीन भेद है बहिरात्मा १ अंतरात्मा २ परमात्मा ३ तहां जो जीव मिथ्यात्वके उदयसें तन, धन, स्त्री, पुत्र पुत्र्यादि परिवार, मंदिर, नगर, देश, शत्रु, मित्रादि इष्टानिष्ट वस्तुओमें रागद्वेषरूप बुद्धि धारण करता है सो बहिरात्मा है अर्थात् वो पुरुष भवाभिनंदी है. संसारिक वस्तुओमेंही आनंद मानता है. तथा स्त्री, धन, यौवन, विषय भोगादि जो असार वस्तु है तिन सर्वको सार पदार्थ समजता है, तब तकही पंडिताइसें वैराग्य रस घोटता है, और परम ब्रह्मका स्वरुप बनाता है, और संत महंत योगी रूपी बन रहे है जब तक सुंदर उद्भट यौवनवंती स्त्री नहि मिलती और धन नहि मिलता है. जब ये दोनों मिले तब तत्काल अद्वैत ब्रह्मका द्वैत

ब्रह्म हो जता है, और लोगोकुं कहने लगता है—नइयां हम जो स्त्री नोगते है, इंद्रियोंके रसमें मगन है, धन रखते है, डेरा बांधते है इत्यादि वो सर्व मायाका प्रपंच है. हम तो सदा अलिप्त है. ऐसे ऐसे ब्रह्मज्ञानियोंका मुह काला करके और गधेपर चढा के देशनिकाल करना चाहिये, क्योंकि ऐसे ऐसे भ्रष्टाचारी ब्रह्मज्ञानीओने कितनेक मूर्ख लोगोंकों ऐसा भ्रष्ट करा है कि उनका चित्त कदापि सन्मार्गमें नहि लग शकता है, और कितनीक कुलकी स्त्रियोंकों ऐसी बिगाडी है कि वे कुलमर्यादा लोकपर इन नंगी जंगी फकीरोंके साथ दुराचार करती है. और यह जो विषयके निखारी और धनके लोनी संत महंत नंगी जंगी ब्रह्मज्ञानी बन रहे है वे सर्व दुर्गतिके अधिकारी है, क्योंकि इनके मनमें स्त्री, धन, काम, नोग, सुंदर शय्या, आसन, स्नान, पानादि उपर अत्यंत राग है. दुखके आये हीन दीन होके विलाप करते है. जैसे कंगाल बनीआ धनवानोको देखते झूरता है तैसे यह पंडित संत महंत नंगी जंगी लोगोंकी सुंदर स्त्रीयां धनादि देखके झूरते है, मनमें चाहते है ये हमकुं मिल तो ठीक है. इस बातमें इनका मनही साक्षी है. तथा जो जीव बाह्य वस्तुकोंही तत्व समजता है तिसहीके नोगविलासमें आनंद मानता है सो प्रथम गुणस्थानवाला जीव बाह्यदृष्टि होनेसें बहिरात्मा कहा जाता है. १.

अब अंतरात्माका स्वरूप कहते है.

जे तत्वश्रद्धान करके युक्त होवे, कर्मबंधन निबंधनके स्वरूपकुं अच्छी तरेहसें समजाता होवे, अरु सदा चित्तमें ऐसा विचार करता होवे के- यह अपार संसारमें जीव जे जे अशुन्न कर्म उपार्जन करता है सो सो अंतमें उदय आनेसें आपसें आप

नोगता है, दुसरेका कर्म दुसरा नही नोगता है. धन कुटुंब अरु खजाना यह सबी पर वस्तु हे इसमें मेरा कुछ नही है–मेरा ज्ञानरुपी आत्मद्रव्य सदा अखंडित है इत्यादि अंतरनावनासें विचार करता होवे, अरु कदाच हीरा, ज्वाहरात, सुवर्ण आदि उत्तम वस्तुका लान होवे, तब ऐसा विचारेके यह पौद्गलीक वस्तुका मेरेसें संबंध हुवा है, इसमें मेरेकुं आनंदित न होना चाहिये. फिर वेदनीय कर्मका उदय होनेसें कदाच रोग, सोग, अरु कष्ट आ पडे तबनी समनावकुं धारन करे अरु अपने अंतरात्माकुं परनावसें अर्थात् विषयजन्य सुखोंसें जुदा समजे, चितमें परमात्माका ध्यान करे, अरु धर्म कृत्यमें विशेष करके उद्यम रखे, सो द्वादशनूमिकावर्ती अंतर दृष्टिवाला अंतरात्मा कहा जाता है.

अब परमात्मात्माकानी किंचित् स्वरूप लिखते है.

(यडुक्तं) श्रीमद्–हेमचंद्राचार्यपादैः महादेवस्तोत्रे ।

[अनुष्टुप् वृत्तम्]

परमात्मा सिद्धिसंप्राप्तो बाह्यात्मा च भवांतरे ।
अंतरात्मा भवेद्देह इत्येवं त्रिविधः शिवः ॥ १ ॥

जे आत्माका स्वनावकु प्रतिबंध करनेवाले अर्थात् अंतराय करनेवाले कर्मोका नाश करके निरुपम उत्तम केवलज्ञान आदि सिद्ध सुखकुं प्राप्त हुआ है, अरु जे करतलमें रहे हुवा मुक्ताफलकी तरेह समस्त विश्वकुं अपने ज्ञानके प्रनावसें जानता है. अरु जे सदा ज्ञान दर्शन चारित्ररुप सच्चिदानंद पूर्ण ब्रह्मकुं प्राप्त हुवा है, सो त्रयोदश नूमिकावर्ती देहधारी आत्मा अरु शुद्ध स्वरुपवान् निर्देही सिद्धात्मा यह दोनुंकुं परमात्मा कहा जाता है.

जिस जीवकुं याने आत्माकुं आत्मज्ञान हो गया होवे वो

प्राणी परम आनंद रसमें मग्न हुवा थका सांसारिक
अस्थिर सुखकुं कबीजी नहि चाहता है. क्युं के
होनेसें अतींद्रिय सुखमें मग्न है, सो अपना परम
आत्मसुखकुं छोडके विषयजन्य सांसारिक सुखमें क्युं लिपटा
यगा ? जेसें चक्षुमान पुरुष अंधकूपमें कबीजी पतन करना
नही इछता है, वेसे आत्मज्ञानीजी संसाररूप कूपमें पतन करना
कबीजी नही इछता है.

यहजी बात है के जिसकुं तात्पर्यज्ञान हो गया होवे
वो बाह्य वस्तुके संसर्ग करनेकी इछावाला कबीजी नही हो
का है, जिस प्राणीकुं अमृतका स्वाद मालूम हुवा होवे वो प्राणी
क्षार उदककी इच्छावाला केसे हो शके ? इत्यादि लक्षणोंसें
मात्माकी प्रतीति कीइ जाती है;

जिस प्राणीकुं आत्मबोध नही हुवा है सो प्राणी
मनुष्य देहवाला है तोजी तिसकुं शास्त्रकार ज्ञानी पु
शृंग पुछसें रहित पशुहीज कहेते है, क्युंके तिसकी आहार,
निद्रा, जय, अरु मैथुन आदि क्रिया पशुतुल्यही होती है, जि-
स प्राणीकुं तत्ववृत्तिसें आत्मबोध हो जाता है, तिस्सें सिद्धि
गति अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति दूर नही है. जब तलक आत्मबोध
नही होता है तब तलकही सांसारिक विषय सुखमें लीन र-
हेता है, जब सकल सुखका निधानरूप आत्मबोध हो जावे तब
प्राणी—सच्चिदानंद पूर्ण ब्रह्मस्व रूप—अनंतज्ञान—अनंत—दर्शन—अ-
नंत सुख—अरु अनंत शक्तिमान् हो जाता है, अरु मोक्ष मे-
हेलमें अतींद्रिय सुखका आस्वादन करता है.

इति किंचित् बहिरात्मा, अंतरात्मा परमात्मा स्वरूपम्.

अथ गुरुप्रशस्तिः

॥ अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

शासनं देवदेवस्य महावीरस्य सुंदरं ।
ज्ञवाब्धौ ज्ञयज्ञीतानां यानपात्रमखंडितं ॥ १ ॥
अनंतसुखसर्वस्वनिधानाख्यानबीजकं ।
अंगिनां सर्व सौख्याय जातं कल्पतरुसमं ॥ २ ॥
आद्यपट्टाधिपं श्रीमत् सुधर्म स्वामिनं मुदा ।
प्रणम्य लिख्यते किंचित् तपगच्छस्य सूचना ॥ ३ ॥
सुधर्मस्वामितो ह्यऽष्टपट्टपर्यंतमुच्चकैः ।
अस्मिन् गच्छे गुणोत्पन्नमज्जून्निर्ग्रंथ नामकं ॥ ४ ॥
ततोऽज्जूतां निधिपट्टे निधान इव संपदां ।
सुस्थितसुप्रतिबद्धौ सुधियौ गच्छनायकौ ॥ ५ ॥
सूरिमंत्रस्य रम्यस्य कोटिमानेन जापतः ।
कौटिकाख्यं ततो नाम लोके लब्धं गुणाकरं ॥ ६ ॥
ततो मनोरमे पंचदशमे पट्टपुष्करे ।
चंद्रमा इव यो ज्ञाति चंद्रसूरिर्यतीश्वरः ॥ ७ ॥
तदातत्सूरीणां रम्यगुणग्रामात्समुद्भवं ॥
गच्छस्यापि स्फुटं नाम जातं चंद्राज्जिधंवरं ॥ ८ ॥
ततः षोम्दशमे पट्टे सूरिःसामंतज्जद्रकः ॥
निस्पृहिकतया येन निर्जितं सकलं जगत् ॥ ९ ॥
निर्ममो निर्मदः सम्यक् सदाचारेण संयुतः ॥
वियोगः कारितो येन विद्याहंकारयोर्हृदि ॥ १० ॥
सूरेरस्य सदारम्ये वने वासं विलोक्य च ।
नामोक्तं वनवासिकं जैनः सर्वगुणास्पदं ॥ ११ ॥

षट्त्रिंशत्तमे पट्टे सूरिर्भूरिगुणान्वितः ।
सर्वदेवाभिधः सर्वमुनिवृंदाय सौख्यदः ॥ १२ ॥
वटवृक्षादधो भागे सूरिपट्टाभिषेकतः ।
वटगच्छेत्यभून्नाम लोके सत्वगुणोद्भवं ॥ १३ ॥
ततो रम्ये चतुश्चत्वारिंशतितमपट्टके ।
अभूत्सूरिर्जगच्चंद्रः पुष्करे चंद्रमा इव ॥ १४ ॥
अन्यदा विहरन्सूरिर्मेदपाटस्य मेदनौ !
आघाटपुरतो बाह्यं प्राप्तवान् स्थानमुत्तमं ॥ १५ ॥
ततस्तत्पुरभूपस्तु सूरिं दृष्ट्वा तपस्विनं ।
मंत्रिणं पृष्टवान् कोयं घोरेण तपसा कृशः ॥ १६ ॥
तन्मुखात्प्राप्तवृत्तान्तः भूपो भक्तिपरायणः ।
तपागच्छ इतिनाम यथातथ्यं मुदा ददौ ॥ १७ ॥
तत्पट्टे सूरिदेवेंद्रधर्मघोषादयः क्रमात् ।
श्रीमद्धीरविजयाद्याः संसेव्या अभवन्नृपैः ॥ १८ ॥
ततो वादिकुरंगाणां द्रावणे शार्दूलोपमः ।
अभूद्विजयसिंहाव्हः सूरिराड् विजितेंद्रियः ॥ १९ ॥
तस्य शिष्यः सुधीः सत्यविजयाख्यो मुनीश्वरः ।
सर्वोत्तमगुणैर्व्याप्तः नानाशास्त्रविशारदः ॥ २० ॥
कर्पूरविजयस्तस्य शिष्योऽभून्दूरिशिष्यकः ।
शास्त्रज्ञः सज्जनो धीमान् वादिकंदकुदालकः ॥२१॥
तस्य शिष्यः सदाचारी शासनोन्नतिकारकः ।
क्षमादिगुणसंपन्नः क्षमाविजय इत्यभूत् ॥ २२ ॥
तत्पट्टे कोविदः श्रीमान् विजयो जिनपूर्वकः ।
वादिवादेंद्रजालं यः जर्जरीकृतवान् क्षणात् ॥ २३ ॥
तत्पट्टे विजयी श्रीमदुत्तमविजयः सुधीः ।
अभूदिंद्रो यथा देवैः संसेव्यो मुनिपुंगवैः ॥ २४ ॥

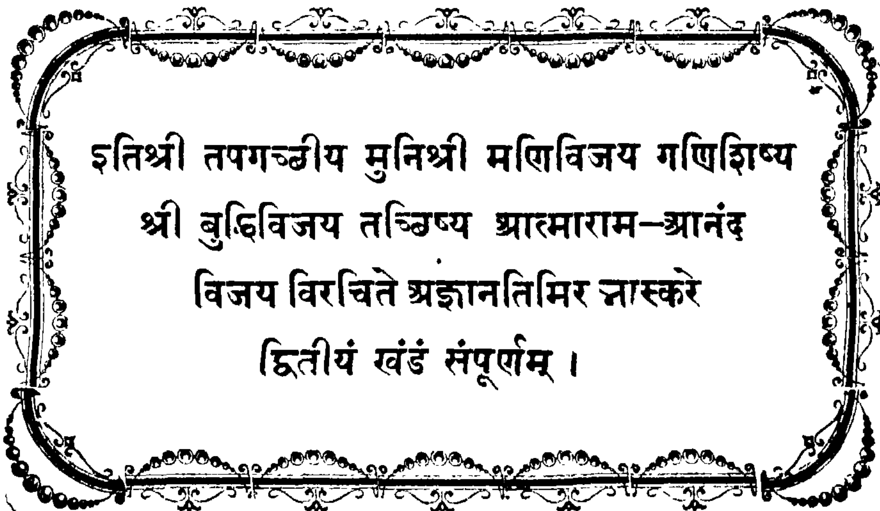
तच्छिष्यः पद्मविजयः सुदृढो धर्मकर्मणि ।
भूरिग्रंथाः कृता येन प्राणिनां बोधबीजदाः ॥ २५ ॥
श्रीमान् रूपविजयाख्यः तस्य पट्टांबरे विधुः ।
अभूत्सर्वसुधीवर्यः क्षांत्यादिगुणगुम्फितः ॥ २६ ॥
तत्पट्टे वादिवादस्य खंडनेऽयोग्रवत्सदा ।
नाम्ना कीर्तिविजयोऽभूत् शुद्धसत्वप्रदर्शकः ॥ २७ ॥
कस्तूरविजयस्तस्य कस्तूरीवेष्टगंधदः ।
निष्णातो जैनशास्त्रेषु मीनकेतननाशकः ॥ २८ ॥
तत्पट्टे तपसायुक्तः मणिविजय इत्यभूत् ।
मुत्तयाच यस्य चारित्रं निर्मलं शतपत्रवत् ॥ २९ ॥
तत्पट्टे बुद्धिविजयः निस्पृहो धीषणाकरः ।
निर्मलं मानसं यस्य ज्ञानध्याने स्थितं सदा ॥ ३० ॥
आनंदविजयस्तस्य आत्मारामापराभिधः ।
सत्यतत्वाभिलाषित्वात् जातोहमार्हते दृढः ॥ ३१ ॥
ग्रथोऽयं निर्मितोऽज्ञानतिमिरभास्करो मया ।
स्तंभनाधिष्ठिते रम्ये स्थित्वा खंभातपत्तने ॥ ३२ ॥
इमं ग्रंथं यदाकोऽपि समालोक्य सविस्तरं ।
दधाति मत्सरं तर्हि ग्रंथस्य किमु दूषणं ॥ ३३ ॥
मिष्टस्वादानभिज्ञश्चेत् शर्कासु करभो मुखं ।
वक्रीकुर्यात्ततस्तासां माधुर्यं क्वापि किं गतं ॥ ३४॥
लभ्यंते भूरिरत्नानि अनर्घाण्यपि हेलया ।
परं सम्यक् सुधायुक्तं तत्वज्ञानं तु दुर्लभं ॥ ३५ ॥
यद्यपि ज्वरितस्यार्तिं जंतोर्जनयते जलं ।
तथाप्युष्णीकृतं तस्य मुख्यपथ्यं तदेवहि ॥ ३६ ॥
अंबरे ज्योतिशां चक्रं यावद् भ्राम्यति विस्मृते ।
तावन्नंदतु ग्रंथोऽयं प्रतिपन्नो मनीषिभिः ॥ ३७ ॥

भावार्थ—श्री महावीरस्वामीका सुंदर शासन ओ संसाररूप समुद्रमें भवभीतकुं झांझ समान है. और अनंत सुखका सर्व स्वनिधानका बीज तथा सर्व प्राणीका सुखने वास्ते कल्पवृक्ष समान है. प्रथमपदका अधिपति श्री सुधर्मास्वामीकुं हर्षसें प्रणाम कर तपगच्छकी किंचित् सूचना लिखते है. सुधर्मास्वामी पीछे आठ पद पर्यंत तपगच्छमें निर्ग्रंथ नामे गुणोत्पन्न हूआ ते पीछे संपत्तिका निधान जैसां निधिपद्दमे सुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामे दो विद्वान् गच्छका नायक हूआ. तिसमें रम्यसूरिमंत्रका कोटी जाप करनेसें तिसका नाम लोकमें 'कौटिक' एसा हुआ त्यारपीछे पंदरमे पदे चंद्रजैसा चंद्रसूरिनामे यतीश्वर हुआ, त्यारबाद सोलमे पदे सामंतभद्र नामे सूरि हुआ जे सूरिने निःस्पृहपणासें सर्व जगत्को जितलियाथा निर्मम, मद रहित और सदाचार युक्त ऐसा जे सूरिने हृदयमें विद्या और अहंकार, ओ दोनुका वियोग बनवाया ओ सूरि सदाकाल वनमें वासकर रहेतेथे, ओ कारणसें ओ सर्व गुणका स्थानरूप सूरि विजयसिंह नामे जितेंद्रिय सूरींद्र हुवा उसका शिष्य सत्यविजय हुआ, सो सर्व उत्तम गुणोसें व्याप्त और विविध शास्त्रोमें प्रवीण हुवाथा. उसका शिष्य कपूरविजय हुवा सो बोहोत शिष्यवालेथा और शास्त्रकुं जाणनेवाला, सज्जन, बुद्धिमान् और वादीरूप कंदमे कुवाडारूपथा. उसका शिष्य क्षमाविजय नामे हुवा सो सदाचारी, शासनकी उन्नति करनेवाला और क्षमादि गुणोसें संपन्न हुवाथा. उसका पदमें श्रीमान् 'जिनविजय' नामे विद्वान् मुनि हुवा. सो मुनिने वादीओका वादरूप इंद्रजालको क्षणमें जर्जरकीयाथा. उसका पदमें सुबुद्धिमान् और विजयी हुवाथा, सो देवोकुं जैसा इंद्र सेव्य है ऐसा उत्तम मुनिओकुं सेव्य हुवाथा. उसका शिष्य पद्मविजय हुवा सो धर्मकर्ममें दृढ हुवाथा और उनोने प्राणि-

ओको बोधरूप बीजको देनेवाला बहोत ग्रंथ बनायाथा. उसका पटरूपकुं लोको वनबासी कहने लगे. ते पीछे उत्तीशमे पटमें सर्वदेव नामका एक बोहोत गुणवाले सूरि हुवा, सर्व मुनिवृंदको सुखदेनेवाला हुवा. ओ सूरिको वडकावृक्षनीचे पटका अभिषेक हुवा, ए कारणसें लोकमें उसकानाम 'वटगच्छ' एसासत्व गुणीनाम भया ते पीछे चोंवालीशमे सुंदर पटमें पुष्करमें चंद्रकी माफक जगच्चंद्रसूरि उत्पन्न हुवा. कोइ समयमें ओ सूरि मेवाडकी भूमिमें विहार करते करते आघाट नगरकी बाह्य भूमिका स्थानपर आया. तब ए नगरका राजाए तपस्वी मुनिको देखकर अपना मंत्रीसें पुछया के, तपसें दुर्बल एसा ओ कोन है? मंत्रीका मुखसें ओ मुनिका वृत्तांत जाणकर राजा उसका भक्त हुवा. और हर्षसें तिस समयमें 'तपागच्छ' एसा यथार्थ नाम दीया. ते पीछे उसका पदमें अनुक्रमे देवेंद्र सूरि और धर्मघोष तथा श्री हीरविजय प्रमुख राजा के सेव्य एसा सूरींद्र हुवा. त्यारपीछे वादिरुप हरणोकुं नशाम्ने में सिंह जैसा आकाशमें चंद्रसमान श्रीमान् रूपविजय नामे शिष्य हुवा, सो सर्वविद्वानोमें श्रेष्ठ और क्षमा प्रमुख गुणोको धारण करनेवाला था. उसका शिष्य कस्तूरविजय हुवा, सो कस्तूरीकी माफक इष्ट गंधको देनेवाला, जैनशास्त्रोका पारंगत और कामदेवका नाशक हुवाथा उसकी पाटे '*मणिविजय*' नामे तपस्वी मुनि हुवा, उसका चारित्र मुक्तिसें कमलकी माफक निर्मल था. उसकी पाटे बुद्धिविजय हुवा था, जिसकां निर्मल हृदय हरदम ज्ञान ध्यानमें रहेताथा. उसका शिष्य '*आनंदविजय*' हुवा, जिसका दुसरा नाम आत्माराम है. सो में सत्य तत्वका अभिलाषी होकर जैनमतमें दृढ हुवा हुं. में ओ 'अज्ञानतिमिरभास्कर' ग्रंथ स्तंभनतीर्थ खंभात-

मे रहे कर बनाया है. कोइ पुरुष जो इस ग्रंथको सविस्तर देखकर मत्सर देखे तो उसमें ग्रंथका दूषण क्या है? क्युंके मिष्टस्वादको नहि जाननेवाला गधेडा द्राखमें मुख झाले इससें द्राखका माधुर्य क्युं चला जाता है? बोहोत अमूल्यरत्न एक क्रीझामात्रसें मीलता है परंतु सम्यक्त्वरूप अमृतसें युक्त एसा तत्वज्ञान दुर्लभ है. यद्यपि बुखारवाले प्राणीके जल पीडा देनेवाले है, तथापि सोइ जल उष्ण करनेसें उसको पथ्यकारी होता है.

विस्तारवाले आकाशमें ज्योतिष–तारा चक्र जबतक फीरतरहै, तबलग बुद्धिमानोने प्रतिपादित एसो ओग्रंथ आबाद रहो.



शुद्धि पत्रम्.

पत्र.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५	१४	कुछक	कुढ
७	६	स्तिष्ट	स्विष्ट
१०	१९	वेदनें	वेदमें
१६	६	इस्वीमें	इस्वीसनमें
२१	५	वीतमय	वीतज्ञय
२७	११	धमंड	घमंड
१३	९	ठगा	ढगा
२५	१९	विवेश	विशेष
५६	२५	तो	तौ
६१	१६	बुद्धि	शुद्धि
६२	११	यक्त	यज्ञ
६२	२०	शिप्य	शिष्य
६६	३	इव	इन
७१	२४	खिप्याणां	शिष्याणां
८५	५	लीना,	
८७	२५	कुठज्ञी	कुढज्ञी
९३	१८	कितकेकतो	कितनेकतो
९४	२५	लर्व	सर्व
९५	१७	वखन	वखत
१००	२१	कियाकांममें	क्रियाकांडमें
१०४	१२	इम	इस
११५	७	विद्वान	विद्वान्
१२१	१४	ज्ञाप्य	ज्ञाष्य

१२२	२०	धांध	बाध
१२३	२०	रसाइ	रसोइ
१२५	१	आङिक	अह्निक
१२८	२२	रस्वनेका	रखनेका
१३५	१३	अर्हन	अर्हन्
१४२	१३	सक्ता	.
१५२	८	शिवप्रसाददके	शिवप्रसादके
१५७	२२	समझाग	समजाय
१५९	३	अपन्नी	अपनी
१५९	१४	हलवल	हलचल
१६२	८	नयसे	नयके
१६७	६	श्रीषन्नदेवकी	श्रीरूषन्नदेवकी
१६८	२३	कंठ	कंठ
१७०	१६	ङव्यसें	ड्व्यसें
१७२	१४	लिखना	लिखता
१७२	२६	राणीजींके	राणाजीके
१७६	९	पृष्ठमे	पृष्टमे
१७९	१९	सम-	समय-
१८३	१	कानसा	कोनसा
१८५	१७	जानाकर	जानाकार
१८६	१२	घुणा	घृणा
१८७	८	नूर्त्तिं	मूर्त्ति
१८९	१५	जयतकी	जगतकी
१९१	२३	रोक	रोकि
१९३	४	ज्ञाग	ज्ञोग
२००	१	इसीनें	इसी

२०१	१७	गुस्सेसें	गुस्सेमें
२०८	५	सुज्ञक्षिएय	सुदाक्षिएय
२१२	१८		ओरजोनिवृत्तिहे
२१९	१५	कारए	कारण
२२२	३	मुश	मुख
२२२	१८	कौपधी	ओषधी
२३०	३	लोमोकुं	लोगोकुं
२३०	१४	धर्सप्रयोजनके	धर्मप्रयोजनके
२३१	६	समजला	समजेला
२३१	१४	सुंदरसदू	सुंदरसद
२३२	७	करे	बार
२३६	८	अपते	अपने
२४०	१३	ऐवं	एवं
२४३	२१	गोमाया	गोयमा
२४४	३	गोंयमा	गोयमा
२४६	२२	निस्से	तिस्से
२४९	१२	पडिवन्नमसंग्रहं	पडिवन्नमसंग्गहं
२४९	१५	छोते	छोडे
२५३	६	शश्रूषा	शुश्रूषा
२६२	२५	जैनमतकों	०
२६३	१७	बा	०
२६४	९	शिष्योके	०
२६४	१३	वास्ते	वाते
२६६	२२	मानमें	मानने
२६९	२१	यढके	पढके
२७२	१५	दो	व

२७३	१७	ज्ञावी	ज्ञावकी
२८०	१८	श्रेवार्थी	श्रेयार्थी
२८२	१०	अग्रोयर	अग्गोयर
२८३	१७	चवता	चलता
२८३	२४	शस्त्रपरिज्ञाप्ययन	शस्त्रपरिज्ञाध्ययन
२८४	१८	उपवाल	उपवास
२८६	१९	पापी	पानी
२९०	२२	सेवंग	संवेग
२९१	८	प्रयंजुन	प्रयुंजन
२९२	१९	उकका	उणका
२९२	१९	एक उपर	०
२९४	२०	निपेधमी	निषेधज्ञी
२९५	१८	देखनामी	देखनाज्ञी
२९७	२५	विधमार्गके	विधिमार्गके
२९९	५	मेहा	मोह
३०३	१२	धर्म्नज्ञी	धर्मज्ञी
३०९	१७	स्तुवढ	रुतुवढ
३०९	२२	बैठना	बैठना
३१०	६	आधोयण	आलोयण
३१२	१६	पदंतु	परंतु
३१३	२५	गुरुसें	गुलसें

सूचना—पृष्ठ ७ में १६ पंक्तिमें नींचे प्रमाणे अर्थमें वधारा करके वांचना—

यज्ञका अवशेष भागकुं खाने वाले संतपुरुषो सर्व पापसें मूक्त होते है.